खण्ड २

एक बूंद : एक सागर

(आचार्य श्री तुलसी की वाणी/ग्रन्थों से चयनित)

संकलिका/संपादिका

समणी कुसुमप्रज्ञा

एक बूंद : एक सागर

प्रबोधाय विवेकाय हिताय प्रशमाय च ।
सम्यक्तत्त्वोपदेशाय सतां सूक्तिः प्रवर्तते ॥

समणी कुसुमप्रज्ञा

जैन विश्व भारती प्रकाशन

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

पूज्य स्व० पिताश्री सोहनलालजी व माताश्री जेठी देवी बांठिया, चूरू निवासी की पुण्य स्मृति में उनके पुत्र पूनमचंद व रावतमल बांठिया कलकत्ता एवं बम्बई के आर्थिक सौजन्य द्वारा प्रकाशित ।

प्रथम संस्करण : सन् १९९१ ई०

पृष्ठांक : ४२०

मूल्य : **५०.०० रुपये**

मुद्रक :
मित्र परिषद्, कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से स्थापित
जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं (राजस्थान)

सत्यम्

साहित्य का सृजन एक बात है, उसका मंथन दूसरी बात है। सृजन की चेतना स्वतंत्र विहार करती है। मन्थन करने वाला सृजन में अवगाहन करता है। दूध में नवनीत होता है, पर आलोड़न-विलोड़न के विना वह नहीं निकलता। साहित्य में कुछ सारपूर्ण वाक्य होते है। उन्हें वही खोज सकता है, जो उसमें अवगाहन करता है। श्रम मंथन करने वाले का होता है, पर नवनीत का उपयोग दूसरे भी करते है। इसी प्रकार साहित्य में अवगाहन कर वर्गीकृत विषयों का संकलन करने से साहित्य की एक नई विधा सामने आ जाती है, जो बहुत लोगों के लिए पठनीय वन सकती है।

समणी कुसुमप्रज्ञा ने 'एक बूद : एक सागर' मे मेरे गद्य-पद्य साहित्य का मन्थन कर चयनित विषयो को अकारादि क्रम से व्यवस्थित किया है। मेरे साहित्य मे विषयों की इतनी विविधता को देखकर मैं स्वयं विस्मित रह गया। संक्षिप्तरुचि एव शोधरुचि वाले लोगों के लिए ऐसी सामग्री सहज उपयोगी हो जाती है।

जैन-परम्परा के इतिहास में साध्वियों की सृजन-यात्रा नहीं के वरावर रही है। इधर के कुछ वर्षो में हमारी साध्वियों और समणियों ने अपनी साहित्यिक रुचि और प्रतिभा का उपयोग करना शुरू किया है। मै चाहता हूं कि इस दिशा में उनकी गति मे त्वरा आए। इससे उनकी क्षमताओं का विकास तो होगा ही, धर्मसंघ की गरिमा भी बढ़ेगी।

'एक बूद : एक सागर' पुस्तक के सम्पादन मे समणी कुसुमप्रज्ञा ने वहुत श्रम किया है, पर यह जनता के लिए उपयोगी हो गया है। इस यात्रा में उसे जिनका सहयोग, प्रोत्साहन और प्रेरणा मिली, वे सब उत्तरोत्तर गति करते रहें, यही मंगल भावना है।

आचार्य तुलसी

शिवम्

ज्ञान अनंत है पर अभिव्यक्ति सांत है। जितना जाना जाता है, उतना कहा नहीं जाता। जितना कहा जाता है, उतना ग्रहण नहीं किया जाता। आचार्यश्री तुलसी ने जो कहा, उसे ग्रहण करने के लिए उनके परिपार्श्व में जाना होता है। दूर खड़ा रहने वाला शब्दों को पकड़ सकता है, अर्थात्मा को नहीं पकड़ सकता। आचार्यश्री ने इन ५५ वर्षों में लगभग २५ हजार बार से अधिक प्रवचन किए हैं। हजारों बार वार्तालाप किया, शिक्षाएं दी और संदेश दिए। इन सबका यदि संकलन होता तो अभिव्यक्ति की राशि भी विशाल हो जाती। संकलन २५ प्रतिशत का भी नहीं हुआ है। फिर भी जो हुआ है, वह कम विशाल नहीं है। उस विशाल राशि से कुछ बूंदें प्रस्तुत हैं, ठीक वैसे ही जैसे सागर को गागर में भरने का प्रयत्न।

प्रत्येक बूंद का अपना महत्त्व है और इसीलिए कि वह अनुभूति के महासागर की बूंद है। वाणी का महत्त्व है पर वाणी केवल वाणी ही होती है। उसका मूल स्रोत अनुभव नहीं होता है तो उसका महत्त्व सामयिक, अल्पकालीन और अल्पमूल्य वाला होता है। अनुभव से उद्भूत वाणी त्रैकालिक और शाश्वत मूल्य वाली बन जाती है। आचार्यश्री की वाणी केवल वाणी ही नहीं है, वह शाश्वत का महास्वर है। उस स्वर ने हजारों-हजारों को प्रेरणा दी है, जागरण का संदेश दिया है और दी है स्वतंत्र चेतना की अनुभूति। उस वाणी से संकलित कुछ बूंदे बहुत उपयोगी होंगी जनता के लिए।

समणी कुसुमप्रज्ञा ने उन बूंदों को एकत्र कर एक प्रवाह बनाने मे जो श्रम किया है, वह सफल होगा, पाठक को कृतार्थता की अनुभूति होगी और उसे मिलेगा परम आनंद।

(युवाचार्य)

सुन्दरम्

महान् पुरुषों का एक-एक वचन प्रेरक होता है, उद्बोधक होता है, आह्लादक होता है। उनका एक भी वचन अन्तःकरण को छू जाए तो जीवनधारा वदल जाती है। उनके वचनों मे मन्त्र जैसी शक्ति होती है जो निराशा, अवसाद, अनुत्साह जैसे यक्षों को भी कीलित कर देती है।

युगप्रधान, अणुव्रत-अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी धर्म और दर्शन के महान् प्रवक्ता है। आपके प्रवचनो मे एक ओर दर्शन की गंभीरता है तो दूसरी ओर व्यवहार जगत् की समस्याओं के समाधान भी है। उस गभीरता को समझा जाए और समाधान की रोशनी में जीवन का पथ प्रशस्त किया जाए।

समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने आचार्यश्री के साहित्य का अवगाहन कर उसमें सन्निहित अनमोल रत्नो को चुनने का एक सार्थक प्रयास किया है। उनकी स्वाध्यायशीलता, गहरे अध्यवसाय और दृढ़ संकल्प की निष्पत्ति है—एक बूंद : एक सागर।

यह संकलन पाठको के जीवन की धरती पर अध्यात्म की पौध उगाने में निमित्त वनेगा और इसके द्वारा उन्हे नई दिशाएं उपलब्ध हो सकेंगी, ऐसा विश्वास है।

कनकप्रभा

(साध्वी प्रमुखा)

प्रकाशकीय

लगभग ४५ वर्ष पूर्व का प्रसङ्ग है। श्रद्धास्पद आचार्य श्री तुलसी सुजानगढ में प्रवास कर रहे थे। मैं प्रातःकालीन प्रवचन सुना करता। हर्ष विभोर हो उठता। वचन अमृत की घूंट से लगते। मौलिक चिन्तन, अनुभून प्रेरणा और गंभीर आध्यात्मिक चेतना से परिप्लुत वाणी अत्यन्त सरस लगती। उस समय की दुरूह धारण-प्रणाली के अनुसार यह संभव नहीं था कि कोई प्रवचन-स्थल पर उसी समय उसे लिख सके। एक दिन प्रवचन सुनकर घर पहुंचते ही मैंने प्रवचन को स्मृति के आधार पर लिख डाला। आचार्य श्री के दर्शन कर निवेदन किया—घर पर जाकर आपके आज के प्रवचन को मैंने लिखा है, वह इस प्रकार है। आचार्य श्री पढ़कर मुस्कराने लगे। बोले—प्रायः हूबहू है। मैंने निवेदन किया—ऐसी वाणी के संग्रह का प्रबन्ध न होने से मानवमात्र के लिए अमूल्य धरोहर बिखरी जा रही है।

सन् १९६० में मैंने आचार्यश्री के प्रवचनों के तीन ग्रंथ 'प्रवचन डायरी' शीर्षक से संपादित कर जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा कलकत्ता की ओर से प्रकाशित किये। डायरियां रसपूर्ण गर्म इमरतियों की तरह स्वागतार्ह हुईं।

सन् १९६६ में मैंने १९६५ के प्रवचनों के आधार पर चुने हुए विचारों का संग्रह संपादित कर 'जीवन-सूत्र'—शीर्षक से छपाना आरंभ किया। कुछ कारणों से वह रुक गया। नीचे मैं उसके दो पृष्ठ उद्धृत कर रहा हूं:—

- भोजन केवल शरीर को टिकाए रखने के लिए किया जाता है, स्वाद के लिए नही। वह न अधिक रूक्ष हो और न अति स्निग्ध। अति रूक्ष भोजन से क्रोध, चिड़चिड़ापन आदि की वृद्धि होती है और अति स्निग्ध भोजन से उत्तेजना बढ़ती है। (प्र० १-१-६५)
- अपनी भूख से आधा खाया जाए तो वह भोजन लाभप्रद हो सकता है। (प्र० १-१-६५)

- क्रोध या आवेग की अवस्था में भोजन नही करना चाहिए। ऐसी अवस्था में किया हुआ भोजन विषवत् परिणत होता है। (प्र० १-१-६५)
- जो भोज्य पदार्थ स्वादिष्ट, मधुर और स्वच्छ होते हुए भी आवश्यक न हो, तो अपथ्य है। जो आवश्यक हो, वह पथ्य है। (प्र० १-१-६५)
- साधु-सन्तों का पुनः-पुनः आगमन जनता के उत्कर्ष के लिए होता है। जिस सात्त्विक वातावरण को फैलाने में वर्षो लग जाते हैं, वह सन्तों के स्वल्पकालीन प्रवास में सहज सम्पादित हो जाता है। (प्र० २८-२-६५)
- पैसा साध्य नहीं, साधन है। रोगी रोग-मुक्ति के लिए औषध खाता है, पर वह भोजन की तरह जीवन-भर खुराक नहीं खाता। वैसे ही धन आवश्यक वस्तुओं के विनिमय का साधन मात्र है। (प्र० १-३-६५)
- भावी आशाओं का केन्द्र विद्यार्थी ही है। बुद्ध और महावीर इन बच्चों में ही थे। कौन जानता है कि कौन-सा बीज किस विराटता को धारण किये हुए है ? (प्र० २-३-६५)
- चरित्र के अभाव में कोई भी देश अपने को सबल बना सके, यह असम्भव है। (प्र० ३-३-६५)

प्रस्तुत ग्रन्थ 'एक बूंद : एक सागर' आचार्य तुलसी के वचनों का अनोखा संग्रह है, जो पांच खण्डों में प्रकाशित हो रहा है। समणी कुसुमप्रज्ञाजी के अदम्य उत्साह और अथक परिश्रम ने इसे साकार रूप दिया है। यह कृति न केवल आचार्यश्री के प्रवचन, ग्रंथ, लेख और समाचार पत्रों में प्रकाशित रिपोर्टों के आधार पर संगृहीत है, पर इसमें कुछ उदान भी है।

संकलन अकारादि क्रम से निर्धारित विषयों पर है और एक विषय पर कहीं एक, कहीं दो तो कहीं अनेकों वचनों का चयन है। कुल मिलाकर पांच खण्ड़ों में चार हजार से अधिक विषय और लगभग इक्कीस हजार अमूल्य वचनों का संग्रह है। वचन शीर्षक संगत तो है ही, पर साथ ही साथ वे इतने अर्थ-गौरव और चिन्तन-संदर्भ को लिए हुए है कि अधिकांशतः एक ही वचन दूसरे अनेक विषयों की सुन्दर, मार्मिक सूक्तियां उपस्थित करता है। उदाहरण

स्वरूप पांचों खण्डों की कतिपय सूक्तियां द्रष्टव्य हैं :—

खण्ड १

- आकृति को नही, अन्तःकरण को देखो; तभी जीवन का विकास संभव है।
- सारी अंधरूढियों का मूल शिक्षा की कमी ही है।
- विद्यार्थी यह नहीं देखते कि अध्यापक क्या कहते है ? वे यह देखते हैं कि ये क्या करते है ?
- मौत नहीं होती तो अहंकार का साम्राज्य छा जाता।
- प्रत्येक असंयमी व्यक्ति अणुबम की विस्फोट भूमि है।

खण्ड २

- अटकाव और भटकाव को गति में बदलना—यही जीवन है।
- वाद का पश्चात्ताप यदि पहले का विवेक बन जाए तो दुर्घटना टल जाती है।
- दृढ़ संकल्प वह बारूद है, जिसके विस्फोट से बड़ी से बड़ी बाधक चट्टान भी चूर-चूर हो जाती है।
- पुरुषार्थ की लौ असहिष्णुता के झोंकों से आहत होकर बुझ जाती है।
- कन्याओं का भविष्य शादी नहीं, शिक्षा है।

खण्ड ३

- पुरुष हृदय पाषाण भले ही हो सकता है।
  नारी हृदय न कोमलता को खो सकता है।
  पिघल-पिघल अपने अन्तर को धो सकता है।
  रो सकता है, किन्तु नहीं वह सो सकता है ॥
- सिर्फ अपनी बुद्धि को ही महत्त्व देने से व्यक्ति नास्तिक बनता है।
- तकलीफों को हंसते-हंसते सहते जाओ, जीवन में निखार आ जाएगा।
- माता के मन की ममता की थाह पाना उतना ही कठिन है, जितना कि सागर की थाह पाना।
- प्रगति किसी की प्रतीक्षा नहीं करती।
- निर्माण उसी का होता है, जो चोट सहन करता है।

खण्ड ४

- अविश्वास की चिनगारी सुलगते ही सत्ता से गरिमा के साथ अलग हट जाना लोकतंत्र का आदर्श है।
- विकास के लिए वदलाव और ठहराव दोनों जरूरी हैं।
- विद्यार्थी वने रहने में जो आनन्द है, वह आचार्य वनने मे नहीं।
- नमक विना सव भोज्य अलोने।
  विनय विना सारे गुण वौने॥
- वह हर प्राणी शस्त्र है, जो दूसरे के अस्तित्व पर प्रहार करता है।

खण्ड ५

- जो व्यक्ति हर पल दुःख का रोना रोता है, उसके द्वार पर खड़ा सुख वाहर से ही लौट जाता है।
- साम्प्रदायिक उन्माद इंसान को भी शैतान वना देता है।
- साहित्य ने जनमानस को जितना आन्दोलित किया है, उतना कोई भी जादू नहीं कर पाया।
- सुविधावाद एक प्रकार का नशा है जो प्रारम्भ में तो आनंद-दायक प्रतीत होता है, पर इसके परिणाम अच्छे नहीं निकलते।
- केवल स्वार्थ की पूजा करने वाले लोग अपना भाग्य परतंत्रता के हाथों सौंप देते हैं।

पांचों खण्डों मे ऐसी हजारों सूक्तियां हैं, जिनमें उद्घाटित सत्य, मानव-मात्र के लिये जीवन-सूत्र के रूप में पथ-प्रदर्शक सिद्ध हो सकता है।

सूक्ति-ग्रंथ अनेक हैं और विश्व की सभी भाषाओं में हैं, पर एक ही महापुरुष के लगभग इक्कीस हजार वचन, जो 'एक वूंद : एक सागर' की उपमा को चरितार्थ कर सकें, का संग्रह यह पहला ही है। कहा जा सकता है कि महात्मा गांधी के वाद दूसरे महापुरुष तुलसी ही हैं, जिन्होंने एक सम्प्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी संघ की परिधि से वाहर विश्व-मानव की मानवता को साकार किया है और विश्व वन्धुत्व की ओर उसे प्रेरित किया है।

एक ही व्यक्ति के विविध चिन्तनपरक वचनों का यह अनूठा और अद्वितीय संग्रह साहित्य-जगत् के लिए भी अभूतपूर्व उपलब्धि है, इसमें संदेह नहीं।

सूक्ति-संग्रहों में प्रायः अनेक मनीषियों के मार्मिक कथनों का संग्रह रहता है। हिन्दी भाषा में प्रकाशित संग्रह प्रायः इसी प्रकार के है। यह संग्रह उनसे भिन्न और विशिष्ट बन पड़ा है, ऐसा हमारा विश्वास है, परन्तु निर्णय तो पाठक ही कर पायेंगे।

यह हमारे लिए बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमें प्रत्येक खंड के लिए एक मूर्धन्य विद्वान् और समालोचक साहित्यकार का निष्पक्ष मूल्यांकन उपलब्ध हो पाया है, जो यथास्थान प्रकाशित है। इस खण्ड के लिए दिगम्बर समाज के प्रसिद्ध आचार्य श्री विद्यानदजी एवं प्रभावशाली लेखक डॉ. रामप्रसाद मिश्र की भूमिका उपलब्ध हुई हैं। आचार्यश्री द्वारा संस्थापित समणी वर्ग की अनेक-विध सेवाओं में उनकी साहित्यिक सेवाएं भी बहुमूल्य है। समणी कुसुमप्रज्ञा जी ने सम्पादक एवं सह-सम्पादक के रूप मे 'एकार्थक कोश' एवं 'देशी शब्द कोश' जैसे बहुश्रुत विद्वानों द्वारा प्रशंसित कृतियों के बाद "एक बूंद : एक सागर" जैसी अनुपम कृति को उपस्थित कर लोक-कल्याण की भावना को साकार किया है।

ग्रंथ अपनी यात्रा में अनेकों विद्वानों के हाथों से गुजरा है, जिनके सुझाव बहुत उपयोगी रहे हैं। सभी सहयोगी विद्वानों के प्रति हम हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करते है।

—श्रीचंद रामपुरिया

मंथन

आचार्यश्री तुलसी जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय के एकमात्र आचार्य हैं। वे अपने विशाल चतुर्विध संघ का संचालन अत्यन्त कुशलतापूर्वक करते हैं। उनके संघ का अनुशासन दर्शनीय है। उनके कर्मशील व्यक्तित्व ने संघस्थ साधु-साध्वियों में स्वाध्याय और साहित्य-सृजन की सहज अभिरुचि जागृत की है। परिणामतः साहित्य और संस्कृति की विविध विधाओं पर अभिनव साहित्य-सृजन की धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही है। लाडनूं में जैन विश्व भारती के रूप में जिस शोध-संस्थान की प्रतिष्ठा हुई है, वह आचार्य तुलसी की सृजनात्मक प्रतिभा का मूर्त मन्दिर है। जैन वाङ्मय का पर्यवेक्षण करके उन्होंने अणुव्रत के जिस महान् जीवन-दर्शन को नवीन परिवेश में सजाकर समाज को प्रदान किया है, वह विनाशकारी अणुबम का रचनात्मक विकल्प बनने की क्षमता रखता है।

यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि आचार्य तुलसी का व्यक्तित्व बहुआयामी है। जब जैन समाज के चारो सम्प्रदायों ने दिल्ली में भगवान् महावीर का २५००वां निर्वाण महोत्सव सम्मिलित रूप से मनाया था, उस अवसर पर हमने उन्हें निकटता से देखा और परखा था। उस आधार पर हम यह निःसंकोच कह सकते है कि आचार्य तुलसी एक भरोसेमन्द साथी और सहयोगी हो सकते है। उनके हृदय मे जैन समाज की एकता और जैन धर्म के प्रभाव-विस्तार की अदम्य लालसा है और इसके लिये युक्तिसंगत बात को स्वीकार करने की अद्भुत महानता भी है। महान लक्ष्य के लिये उनमें अहंता की जडता और ममता के आग्रह का विसर्जन करने की अद्भुत क्षमता है।

आचार्य तुलसी एक साधु पुरुष है। तेरापन्थ सम्प्रदाय की संरचना और संवर्धन में उनकी सक्रिय और निर्णायक भूमिका रही है। वे एक हैं, किन्तु उनके रूप अनेक हैं। वे अनुशास्ता हैं, संघ के आचार्य है, अनेक ग्रन्थों के लेखक हैं, प्रभावक वक्ता हैं, योग्य नेता हैं। उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख लिखे है, अनेक भेंट-वार्ताएं

दी हैं। उनके परिवार के शिष्य-शिष्याओं की संख्या हजारों में है। उनके अनुयायियों की संख्या लाखों में है। उनके प्रशंसकों की संख्या इससे भी अधिक है।

उन्होने अपनी रचनाओं में हिन्दी, राजस्थानी तथा संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है। इसलिये भाषा की दृष्टि से उनके साहित्य को तीन भागों में बांटा जा सकता है—हिन्दी साहित्य, राजस्थानी साहित्य और संस्कृत साहित्य। उनके साहित्य में सूक्तियों और सुभाषितों का बाहुल्य है। उन सूक्तियों और सुभाषित वचनों को अकारादिक्रम से संचयन करके पांच भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। इन सुभाषितों की सख्या लगभग इक्कीस हजार है। इन्हे लगभग चार हजार शीर्षकों में विभक्त किया गया है। संकलन के इस विशाल कार्य मे सकलनकर्त्री को लगभग पांच वर्ष का समय लगा है। इन वाक्यों का संचयन लगभग २०० पुस्तकों एवं सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं से किया गया है। प्रस्तुत ग्रंथ का यह दूसरा खंड है।

आचार्य तुलसी का यह विशाल साहित्य प्रत्येक पाठक को सुलभ होना संभव नही था। किन्तु संचयनकर्त्री ने इस विशाल साहित्य-सागर का मंथन करके सूक्तियों का अमृत निकाला है। यह सुभाषितामृत जीवन-निर्माण के लिये पुष्टिकारक है, तुष्टिकारक है। हम सचयनकर्त्री समणी कुसुमप्रज्ञा को उनकी सूझबूझ और सार्थक परिश्रम के लिये अपना शुभाशीर्वाद देते है। हमारी हार्दिक भावना है कि प्रबुद्ध पाठक 'एक बूद : एक सागर' के सुभाषित वाक्यों को जीवन-सूत्र समझकर अपनायेगे।

आचार्य विद्यानंद

कुन्दकुन्द भारती
दिल्ली १९९१

विराट् विचार यात्रा

आचार्य तुलसी (१९१४ ई०, लाडनूं, राजस्थान) जैन धर्म के तेरापंथी संप्रदाय के युगप्रधान, व्यापक अणुव्रत आंदोलन के प्रवत्तक एवं अनुशास्ता, मानवतावाद के प्रभावी प्रचारक प्रभृति रूपों में विश्वविख्यात हैं। उन्होंने अपने सम्प्रदाय में व्यापक समाज-सुधार किए हैं। वे एक प्रेरक कवि है; स्फीत लेखक एवं वक्ता भी। उन्होंने 'धर्म-सहिष्णुता', 'नवनिर्माण की पुकार', 'नैतिकता के नए चरण', 'पथ और पाथेय', 'विश्व-शांति और उसका मार्ग', 'सर्वधर्म-सद्भाव', 'अणुव्रत के आलोक में', 'प्रेक्षा-अनुप्रेक्षा', 'मुखड़ा क्या देखे दर्पण में', 'क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?', 'अतीत का विसर्जन : अनागत का स्वागत', 'लघुता से प्रभुता मिले' 'कुहासे मे उगता सूरज', जैसे सर्वोपयोगी ग्रंथ प्रस्तुत कर मानवता की महान् सेवा की है। 'अग्निपरीक्षा' (खण्ड-काव्य), 'अणुव्रत-गीत', 'पानी में मीन पियासी' प्रभृति के प्रभावी कवि के रूप में भी वे उल्लेख्य है। उन्होंने 'कालूयशोविलास', 'चदन की चुटकी भली', 'सोमरस', 'डालिम-चरित्र', 'मगनचरित्र', 'मां वदना', 'श्रद्धेय के प्रति' जैसे राजस्थानी एवं 'जैनसिद्धान्तदीपिका', 'मनोनुशासनम्' जैसे संस्कृत-ग्रंथ रचकर विविध भाषाओं पर अधिकार का परिचय दिया है। उन पर युवाचार्य महाप्रज्ञ कृत 'धर्मचक्र का प्रवर्तन', सीताशरण कृत 'आचार्य श्री तुलसी : जैसा मैंने समझा', मुनि श्रीचंद 'कमल' कृत 'बढ़ते चरण', साध्वी कल्पलता कृत 'संस्मरणों का वातायन' जैसे अनेक ग्रंथ उपलब्ध है। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, मुनि सुखलाल, मुनि गुलाबचंद तथा मुनि दुलहराज इत्यादि ने भी प्रभूत लेखन किया है। आचार्य श्री तुलसी के सम्मान मे 'आचार्य तुलसी अभिनंदन-ग्रंथ' भी निकला है। प्रधानमंत्रियो, राष्ट्रपतियों इत्यादि से लेकर सामान्य जन तक तथा विदेशों में भी उनका विशद सम्मान हुआ है। उनका जन्मस्थान लाडनूं (जनपद नागौर, राजस्थान) एक तीर्थ बन चुका है। प्राच्य विद्या शिक्षण-प्रशिक्षण, शोध, सेवा और साधना के प्रतिष्ठान जैन विश्व भारती के कारण लाडनूं धर्मनगर के साथ विद्यानगर भी हो गया है।

ऐसे पुण्यश्लोक महापुरुष की सूक्तियों को स्फीत ५ खण्डों (प्रति खण्ड प्राय: ४५० पृष्ठ) 'एक बूंद : एक सागर' शीर्षक ग्रंथ में संपादित कर विदुषी समणी कुसुमप्रज्ञा ने एक स्मरणीय एवं प्रशस्य कार्य किया है। लगभग २०० ग्रंथों का अवगाहन कर ४००० शीर्षकों

में २१००० सूक्तियों का संकलन समणी कुसुमप्रज्ञा के अप्रतिम अध्यवसाय एवं प्रशस्य समर्पणभाव का द्योतक है। प्रस्तुत द्वितीय खण्ड भी उनके महान् अध्यवसाय की साक्षी देने में सक्षम है। 'इंद्रिय', 'इंद्रिय और मन', 'इंसान', 'इंसानियत', 'इच्छा', 'इच्छा-नियंत्रण', 'इतिहास', 'ईमान', 'ईशभक्ति', 'ईश्वर', 'उच्च-नीच', 'एकत्व', 'एकरूपता', 'ओज', 'ओम्', 'कमजोरी', 'कर्तव्यनिष्ठा', 'कर्म', 'कामना', 'क्रांति', 'क्रियाशीलता', 'क्षण', 'गर्व', 'चरित्र', 'चार्वाक', 'चिंतन', 'छिद्रान्वेषण', 'छुआछूत', 'जागृत धर्म', 'जीभ', 'जीवन', 'जुआ', 'जैन', 'ज्ञान', 'ज्ञान और क्रिया', 'झगड़ा', 'झमेला', 'झुंझलाहट', 'झूठ', 'टकराहट', 'टूटन', 'ठगाई', 'डंडा', 'डर', 'तंत्र', 'तटस्थता', 'तड़प', 'तत्त्वज्ञान', 'तन', 'तप', 'तंबाकू', 'तरुण', 'तर्क', 'तलाक', 'तादात्म्य', 'तीर्थ', 'तृष्णा', 'तेरापंथ', 'त्याग', 'थकान', 'दंभ', 'दंड', 'दमन', 'दया', 'दरिद्र', 'दर्शन', 'दहेज', 'दान', 'दानव', 'दास', दीक्षा', 'दुःख', 'दृष्टि', 'देश', 'दोष', 'द्वंद्व', 'धन', 'धन और धर्म', 'धनी', 'धर्म', 'ध्वंस', 'ध्वंस और निर्माण' इत्यादि शीर्षक आ० तुलसी की विराट् विचार-यात्रा के द्योतक हैं। किंतु इसका ऊहापोह भी निस्संदेह विराट् एवं प्रणम्य है। अनेक बिंदुओं पर मतभेद स्वाभाविक है। किंतु आ० तुलसी का मूल मानवतावाद नितांत स्पष्ट है। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने 'धर्मचक्र का प्रवर्तन' में आचार्यश्री की अंतर्बाह्य क्षेत्रगत आलोचना पर जो प्रकाश डाला है, उससे वह और अधिक स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने बोधगया-संग्रहालय की शिव-वक्ष पर बुद्ध-चरण वाली मूर्ति के दृष्टिकोण का प्रत्याख्यान किया था। आचार्य श्री तुलसी का विराट् जीवन-विश्लेषण एवं जीवन-संश्लेषण विस्मय एवं श्रद्धा उपजाता है।

समणी कुसुमप्रज्ञा ने प्रत्येक सूक्ति-सुमन का प्रज्ञा-संपृक्त चयन किया है। मैंने लघु से गुरु तक, एकखंडीय से बहुखंडीय तक अनेक सूक्तिकोश देखे हैं तथा निस्संकोच रूप से यह कह सकता हूं कि 'एक बूंद : एक सागर' उनमें से किसीसे भी न्यून नहीं है। मैं तो इसे 'समग्र जीवन : शंकाएं और समाधान' मानता हूं। यह ग्रंथरत्न प्रत्येक पुस्तकालय, प्रत्येक घर, प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी, पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय है।

१४ सहयोग अपार्टमेन्टस्
दिल्ली

डॉ. रामप्रसाद मिश्र

स्वकीयम्

साहित्य की अनेकानेक विधाओं में सूक्तिविधा अपनी सूक्ष्मता, भावप्रवणता, प्रभावोत्पादकता और सहजग्राहिता के लिए इतिहास प्रसिद्ध है। "देखन में छोटन लगें, घाव करें गम्भीर"—की कहावत को शत-प्रतिशत चरितार्थ करने वाली यह विधा अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक उपयोगी दृष्टिगोचर होती है। यदि साहित्य में सूक्ति विधा न हो तो उसमें रस और सौन्दर्य की कोई स्थिति नहीं रह सकती। वेदों, उपनिषदों, विविध-आगमों, दर्शनग्रंथों तथा संस्कृत साहित्य से यात्रायित यह विधा आधुनिक साहित्य मनीपियों के मस्तिष्कीय तूणीरों से निर्गत दिव्यास्त्रों की भांति जनकल्याण का अनुपमेय साधन बन रही है। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि व्यावसायिक लाभ दिलाने की अक्षमता ने इस विधा के स्वतंत्र लेखन पर कुठाराघात किया है, जिससे साहित्य जगत् में यह एक समृद्ध विधा के रूप में उभर नहीं सकी। इस विधा को अपनाए बिना किसी भी कवि, साहित्यकार और लेखक की साहित्य-यात्रा की पूर्णाहुति नहीं हो सकती, फिर भी इसे एक स्वतंत्र विधा का रूप नहीं मिल सका, इससे बढ़कर चिन्तनीय स्थिति और क्या हो सकती है ?

प्राचीन ग्रंथों में ऐसी अनेक पौराणिक घटनाएं पढ़ने को मिलती है कि एक सूक्ति से बड़े से बड़ा अनर्थ और दुर्घटना रुक गई तथा व्यक्ति का आमूलचूल परिवर्तन हो गया। इतना ही नही, एक-एक सूक्ति को सवा-सवा लाख मुद्राओं में बेचने का उल्लेख भी ग्रन्थो में मिलता है। अतः सूक्तियों के सार्वकालिक और सार्वजनीन महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। यदि यह कहा जाए तो अनुपयुक्त नही होगा कि सत्यं, शिवं, सुन्दरं का वास्तविक समन्वय सूक्तियों के माध्यम से ही सम्भव है।

कभी-कभी किसी ग्रंथ के सैकड़ों पृष्ठ या कुशल वक्ता का घंटों का व्याख्यान भी इतना प्रभाव नही डाल सकता जितना गहरा प्रभाव जीवन में एक सूक्ति का पड़ सकता है। डॉ० श्यामबहादुर वर्मा के अनुसार "सूक्तियां ज्ञान के केप्सूल जैसी, प्रेरणा के इंजेक्शन जैसी और मनीषियों के आनन्ददायक साक्षात्कार जैसी होती हैं।"

अनुभव और प्रज्ञा की कसौटी पर तपे-तपाए व्यक्तित्व के मुख से निकली हुई जो वाणी मानव के हृदय-परिवर्तन का मुख्य हेतु वनती है, वह सहज रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है। धर्म और दर्शन का अवलम्बन पाकर तो वह अपने अस्तित्व को और अधिक सार्थकता प्रदान कर सकती है।

आचार्य श्री तुलसी महान् साहित्यकार है। साहित्य की गुरुता को समझते हुए उन्होने अपने साहित्य में शिव के साथ सत्य और सौन्दर्य का सामंजस्य किया है। उनकी लेखनी और वाणी किसी एक विषय पर न रुक कर विविधता लिए हुए है तथा एक विषय को भी अनेक दृष्टियों से व्याख्यायित करने की अद्‌भुत क्षमता उन्हें प्राप्त है। उनके साहित्य में उन सव वातों का जीवन्त विवरण है, जिन्हें हम देखते हैं, अनुभव करते है, सोचते है और समझते है। उनके साहित्य में वह आत्मा छिपी हुई है जो समस्त भारतीयता की प्रतीक है। आचार्यश्री ने अपने अनुभव, प्रवचन और लेखन से साहित्य की लगभग सभी विधाओं का स्पर्श किया है, उन्हें परिपुष्ट किया है। निस्संदेह सत्यता, प्रसन्नता और शांति की त्रिधारा में अवगाहन करते आचार्य श्री तुलसी का साहित्यिक रूप हमारे समक्ष आत्मा की वाणी के रूप में प्रस्फुटित होता है।

यद्यपि आचार्य तुलसी ने सूक्तियों का स्वतंत्र लेखन वहुत कम किया है किन्तु महापुरुषों के तपःपूत जीवन से निःसृत प्रत्येक वाक्य दिशा-निर्देशक और प्रेरक होता है। इसलिए आचार्यश्री की स्वाभाविक एवं सहज अभिव्यक्ति में अनेक वाक्यों ने सूक्तियों और सुभाषितों का स्थान ले लिया है।

संकलन की प्रेरणा और प्रक्रिया

वाल्यकाल से ही स्वाध्याय मेरी अभिरुचि का विषय रहा है। जव मैंने आचार्यश्री के साहित्य में अवगाहन किया तो महसूस हुआ कि सहज, सरल भाषा में निवद्ध यह साहित्य व्यक्ति की सुप्त चेतना को झंकृत करने में समर्थ है तथा मानव-कल्याण की भावना उसके पृष्ठ-पृष्ठ पर अंकित है। उनका साहित्य वर्तमान जीवन के 'तुमुल', 'कोलाहल' और 'कलह' से आक्रान्त और आच्छन्न नहीं, प्रत्युत विराट् जीवन को सर्वोपरि मानते हुए हमें आदर्श जीवन-मूल्यों की ओर प्रवृत्त करता है। अतः उनकी साहित्य-स्रोतस्विनी में

उन्मज्जन-निमज्जन करते हुए मेरे मन में एक संकल्प उठा कि जिन प्रभावोत्पादक वाक्यों ने मेरे जीवन में बदलाव लाने में अहम भूमिका निभाई है, उनका जनमानस के कल्याणार्थ एकत्रीकरण आवश्यक है। मैंने संकलन करने का प्रयास किया और उसका एक ग्रंथ के रूप में प्रणयन हो गया—यह आचार्यश्री की कृपा का ही प्रसाद है।

इस ग्रंथ का सम्पादन इतना सरल नहीं था, क्योंकि एक ओर आचार्य श्री तुलसी का विशाल साहित्य था तो दूसरी ओर उनकी आध्यात्मिक उत्तुंगता थी। एक ही व्यक्ति के विचारों का संकलन होने से इस ग्रंथ के सम्पादन का सबसे अधिक श्रमसाध्य कार्य था—एक ही भाव की अनेक सूक्तियों में से एक का चयन। दूसरी कठिनाई यह थी कि आचार्यश्री का एक ही लेख अनेक स्थलों पर प्रकाशित होने से एक ही उक्ति के अनेक कार्ड बन गये। उन कार्डों पर शीर्षकों का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न समय मे हुआ। अतः अनेक स्थलों पर दो विषयों पर प्रकाश डालने वाले एक ही वाक्य पर दो भिन्न-भिन्न शीर्षक लग गए। उन सबका पृथक्करण श्रमसाध्य और स्मृतिसाध्य कार्य था। इसके लिए बार-बार कार्डो का निरीक्षण करना पड़ा।

यद्यपि पुनरुक्ति दोष से बचने का हर संभव प्रयास किया गया है, फिर भी यह संकलन एक धर्मनेता और प्रवचनकार के गणि-पिटक से किया गया है, अतः कुछ बातें अनेक विषयों में एक जैसी प्रतीत हो सकती हैं। उनका समावेश इस संकलन मे सलक्ष्य किया गया है क्योंकि इतने गम्भीर ग्रन्थ को कोई भी पाठक एक उपन्यास की भांति पूरा नहीं पढ़ सकता। जब भी किसी विषय पर बोलने, लिखने या जानने की जिज्ञासा होगी, पाठक उसी विषय को पढ़ेगा, अतः एक भाव वाली कुछ सूक्तियां भी, यदि उनका शीर्षक भिन्न है तो उनका समावेश इस संकलन में किया गया है।

इस प्रकार लगभग ८० हजार से अधिक संकलित सुन्दर सूक्तियों और वाक्यावलियों में से प्रेरक, उपयोगी, आकर्षक और मर्मभेदी २१ हजार सूक्तियों तथा वाक्यांशों को ही "एक बूंद : एक सागर" में समेटा गया है।

नामकरण

इस संकलन के 'अमृत बूंद', 'बूंदों में सिमटा सागर', 'तुलसी

वाङ्मय' आदि अनेक नाम सोचे गए किन्तु अन्त में प्रज्ञापुरुष युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी द्वारा कल्पित "एक बूंद : एक सागर" नाम ही समीचीन और सार्थक लगा।

ग्रंथ-परिचय

यह ग्रन्थ पांच खंडों में विभक्त है। लगभग ४ हजार शीर्षकों में २१ हजार सूक्तियों का संकलन है। इसको समृद्ध बनाने में आचार्यश्री की तथा उनके बारे में लिखने वाले लेखकों की लगभग दो सौ पुस्तकों, यात्राग्रंथों तथा हजारों पत्र-पत्रिकाओं का उपयोग किया गया है। इस संग्रह में तीन भाषाओं का समावेश है—हिन्दी, राजस्थानी और संस्कृत। पाठकों की सुविधा के लिए संस्कृत सूक्तियों का हिन्दी में अनुवाद भी दे दिया गया है। प्रत्येक खण्ड के प्रारम्भ में विषयानुक्रम है तथा उसके सामने उन पर्यायवाची शब्दों का भी कोष्ठक में उल्लेख कर दिया गया है, जिन पर उस खंड में सूक्तियां है। जैसे—अकर्मण्यता (दे० आलस्य), अभिमान (दे० अहंकार) आदि।

इस सग्रह के पांचवें खंड में **'आत्मदीप'** शीर्षक के अन्तर्गत एक परिशिष्ट का समावेश भी किया गया है। उसमें आचार्यश्री के वैयक्तिक जीवन की अनुभूतियां और विश्वास उन्हीं के शब्दों में संकलित है। यद्यपि उनके व्यक्तिगत जीवन की अनेक ऐसी अनुभूतियां हैं, जिन्हें सूक्ति रूप में प्रस्तुत किया जा सकता था पर विषय का वर्गीकरण होने के कारण उन्हें इसमें स्थान नही दिया गया है। **'आत्मदीप'** में जिन वाक्यों का संकलन है, वे लगभग स्वान्तः सुखाय या आत्म-प्रेरणाएं है, पर वह अनुभवपूत वाणी हर व्यक्ति की अन्तश्चेतना को झंकृत करने में समर्थ है। उदाहरण के रूप में निम्न वाक्यों को देखा जा सकता है—

एकता और समन्वय के लिए यदि मुझे न्यायोचित बलिदान भी करना पड़े तो मै सहर्ष तैयार हूं।

विरोध को सहते-सहते इतनी परिपक्वता आ गई है कि कभी नींद उड़ती ही नहीं।

मैं जानता हूं, मेरे पास न रेडियो, न अखबार और न ही आज के प्रचार योग्य वैज्ञानिक साधन है और न मैं इन सबका उपयोग ही करता हूं। लेकिन मेरी वाणी में आत्मबल है, आत्मा की तीव्र

शक्ति है और मुझे अपने संदेश के प्रति आत्म-विश्वास है। फिर कोई कारण नहीं कि मेरी यह आवाज जनता के कानों से न टकराए।

मैं कहूंगा कि मै राम नहीं, कृष्ण नही, बुद्ध नही, महावीर नही, मिट्टी के दीए की भांति छोटा दीया हूं। मैं जलूंगा और अंधकार को मिटाने का प्रयास करूंगा, यह मेरा संकल्प है।

मैं कभी कभी क्लान्त होता हूं, कभी कभी उदास या निराश भी होता हूं। इसका मूल कारण मेरी अपनी दुर्बलता ही है।

लोग मुझे महात्मा कहते है। मै नहीं जानता कि मैं महात्मा हूं या नहीं। अपनी मान्यता में मै आत्मा हूं, परमात्मा बनना चाहता हूं।

इन वाक्यों में उनकी सन्तता तो झलक ही रही है, साथ ही अपने आपको सच्चाई के साथ प्रकट करने का अद्भुत साहस भी पाठक इन वाक्यों में यत्र-तत्र देखेंगे। आत्मदीप के अन्तर्गत कहीं-कहीं उनकी अंतर्-पीड़ा भी मार्मिक शब्दों में अभिव्यक्त हुई है—

- मै युवकों का मेरे पास न आना सह सकता हूं, पर वे कर्त्तव्यहीन और पुरुषार्थहीन हो जाएं, यह सहन नहीं कर सकता।
- जब मै धार्मिकों की रूढ पूजा और उपासना देखता हूं तो बहुत पीड़ा होती है।

अन्तिम खंड में पांचों खण्डों का विपयक्रम तथा उसके सामने कोष्ठक में अन्य सभी शीर्षकों का एक साथ उल्लेख कर दिया गया है, जिससे अध्येताओं को सुविधा हो सके। जैसे, नारी विषयक शोधकर्त्ता सहज ही 'अबला' 'महिला' और 'स्त्री' शीर्षक भी देख सकेगा। क्रोध के बारे में जानकारी प्राप्त करने वाला 'आवेश', 'उत्तेजना' 'गुस्सा' 'कोप' 'रोष', आदि विषयक सूक्तियों को भी पढ़ सकेगा। प्रत्येक खंड के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत प्रयुक्त पुस्तकों एवं पत्रिकाओं की सूची और प्रकाशन का विवरण भी दे दिया गया है।

एक ही शीर्षक में कहीं-कहीं सूक्तियों तथा वाक्यावलियों में विषय-प्रतिपादन में विरोधाभास-सा दिखाई पड़ सकता है। किन्तु विषय के विविध पहलुओं को उजागर करने की दृष्टि से यह विरोधाभास असंगत नहीं है क्योंकि एक ही शब्द के अनेक अर्थ एवं अनेक व्याख्याएं हो सकती है। उदाहरणार्थ—देखें—विज्ञान, संघर्ष आदि विषय।

इस संकलन में कुछ उक्तियां परिभाषात्मक है किन्तु चमत्कार-पूर्ण होने से उनका भी संकलन किया गया है। उदाहरणार्थ—अध्यात्म जैसे गहन शब्द की परिभाषा बहुत कम शब्दों में कुशलतापूर्वक संदृब्ध है—

- अपने लिये अपने द्वारा अपना नियन्त्रण; यही है—अध्यात्म।
- अध्यात्म अर्थात् मन की, अन्त.करण की समस्या को सुलझाने वाला तत्त्व।

कुछ सूक्त विश्लेषणात्मक होने के कारण आकार में वड़े हो गये है, लेकिन भावों की विशिष्ट अभिव्यक्ति के कारण उनको भी इस संग्रह में संगृहीत किया गया है। जैसे—'भोग से सुख नही मिला, तब त्याग आया। दूसरे जीते नही गए, तब अपनी विजय की ओर ध्यान खिचा। हुकूमत बुराइयां नही मिटा सकीं, तव अपने पर अपनी हुकूमत का पाठ पढ़ाया गया। आग से आग नही बुझी, तव प्रेम से बुझाने की बात सूझी। ये वे सूझें है, जिनमें चैतन्य है, जीवन है और दो को एक में मिलाने की क्षमता है।'

सैद्धान्तिक तथा दार्शनिक विषयों को सरसता के साथ प्रस्तुति देने की विलक्षण क्षमता आचार्यश्री की लेखनी में है। इसलिए सिद्धान्त और दर्शन के गहन विषयों को भी उन्होंने इतनी सरसता के साथ प्रस्तुत किया है कि अनेक सिद्धान्त विषयक वाक्यों ने सूक्तियों का रूप ले लिया है। जैसे—अनेकान्त, अकर्म, आस्तिक, स्याद्वाद, भावक्रिया, चार्वाक आदि।

कुछ सूक्तियां इतनी हृदयस्पर्शी है कि पढ़ते ही व्यक्ति आत्मविभोर होकर ऐसा महसूस करता है, मानो प्रत्येक बूंद सागर को अपने में समेटे हुए है, जैसे—

- अनुशासन का अस्वीकार जीवन की पहली हार है।
- सत्य का सूर्य उदित होते ही अफवाहों के बादल छंट जाते है।
- जो खुली आंखों से देखे, ठंडे दिमाग से सोचे और पूर्णनिष्ठा से कार्यक्षेत्र में उतरे, वह कभी असफल नहीं हो सकता।

कही-कहीं इन सूक्तियों की भाषा बहुत सीधी और सरल दिखाई पडती है, किन्तु भाषा में व्यंजकता का अभाव नहीं है।

इस संकलन में यह दावा तो नहीं किया जा सकता कि सभी वाक्य सूक्ति रूप हैं पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इन

वाक्यों में आत्ममंथन और अनुभूति को झंकृत करने की अद्भुत क्षमता है। इनमें एक ऐसी ज्योति सन्निहित है, जिसके प्रकाश में बुद्धि और हृदय—दोनों एक साथ आलोकित होते हैं। सफल प्रवचनकार के उद्धरण होने के कारण इन वाक्यावलियों मे अनेक स्थलों पर शिक्षा और उपदेश का पुट भी मिलता है। प्रसिद्ध साहित्यकार कन्हैयालाल मिश्र ने आचार्यश्री के एक वाक्य पर अपनी टिप्पणी करते हुए लिखा है—"अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक सन्त तुलसी ने दो शब्दों मे विकृति प्राप्त सुख को न लेना और अप्राप्त की सतत चाह रखने का जो चित्र दिया है, उसे हजार विद्वान् हजार-हजार पृष्ठों की हजार पुस्तकों में भी नही दे सकते। संत की वाणी है—आज मनुष्य को पद, यश और स्वार्थ की भूख नही, व्याधि लग गई है, जो बहुत कुछ बटोर लेने पर भी शांत नही होती।"[1] ऐसे मर्मस्पर्शी और शाश्वत सत्य को प्रकट करने वाले वाक्य तभी लिखे जा सकते है, जब साधक चिंतन की भूमिका से हटकर अनुभव के स्तर पर जीने लगता है।

आगम, त्रिपिटक, वेद, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन धर्मग्रंथों से भी सूक्ति-संकलन का कार्य समय-समय पर होता रहा है। इसी प्रकार भारतीय महर्षि एवं विचारक कबीर, तुलसी, रहीम, नानक, रवीन्द्र, गांधी, विवेकानन्द, राधाकृष्णन तथा विदेशी विद्वान् सुकरात, प्लेटो, रूसो, अरस्तू, कन्फ्यूशियस, बेकन, शोपेनहावर, वर्जिल, गेटे, एमर्सन, आईंस्टीन, लिंकन आदि के विचार भी प्रभावशाली रहे है। इन विचारकों के विचारों के सम्मिलित चयन के प्रयास भी यदा-कदा हुए हैं। पर किसी एक व्यक्ति का इतना बड़ा सूक्ति-संग्रह देखने को नहीं मिलता। हाल ही में प्रकाशित विश्वसूक्ति संग्रह में सोलह हजार सूक्तियों का संचयन है, जिसमे सतरह सौ लेखक एवं लगभग १८ सौ संदर्भ ग्रंथों का प्रयोग किया गया है।

आचार्यश्री तुलसी की प्रकाशित-अप्रकाशित शताधिक रचनाएं हैं। एक विशाल गरिमापूर्ण और ज्ञानसम्पन्न धर्मसंघ का नेतृत्व करते हुए लाखों अनुयायियों को धर्म-प्रेरणा देते हुए आचार्यश्री तुलसी साहित्य-रचना के क्षेत्र में शलाकापुरुष माने जा सकते है। उनकी विविध विधाओं की रचनाओं के पारायण से जो बिन्दु संगृहीत हुए हैं, वे अनेक प्रतिभाओं को आचार्यश्री के साहित्य पर शोध करने

१. जैन भारती, फरवरी ५९।

के लिये प्रेरित कर सकेंगे—यह इस संग्रह का मूल्यवान् पक्ष है।

इस कार्य के दौरान अनेक बार निराशा ने भी घेरा, अनेक प्रतिक्रियाएं भी सुनने को मिली पर मेरी संकल्प-शक्ति को आचार्य श्री की कृपादृष्टि ने आश्चर्यजनक ऊर्जा प्रदान कर मुझे इस असंभव दीखने वाले कार्य मे भी अनवरत लगाए रखा। यद्यपि इस कार्य का प्रारम्भ पांच वर्ष पूर्व ही कर दिया था किन्तु आगमों के शोध और सम्पादन कार्य में संलग्न रहने के कारण इस कार्य में अधिक समय नही लगा सकी। किन्तु इस वर्ष कार्य के साथ मेरी इतनी तन्मयता और एकात्मकता जुड़ गई कि फिर पीछे मुड़कर देखने को अवकाश ही नही मिला।

कार्य के दौरान अनेक बार यह सुझाव सामने आया कि सग्रह इतना बड़ा न होकर छोटा होना चाहिए, पर मेरे मस्तिष्क में संत ज्ञानेश्वर की ये पंक्तियां घूम रही थी—'अमृत को कोई अधिकाधिक परोसता जाए तो क्या कही कोई यह कहता है कि अब और नहीं चाहिये ?' इस प्रेरणा से यह संग्रह इतना विशाल हो गया।

पाठक इन सूक्तियों के माध्यम से आचार्यश्री को कहीं वैज्ञानिक के रूप में पढेगे, कहीं कुशल मनश्चिकित्सक के रूप में, कही धार्मिक नेता के रूप मे, कही विलक्षण राजनीतिवेत्ता के रूप में, कहीं नीतिकार के रूप में, कही प्रबुद्ध साहित्यकार के रूप में, कहीं कुशल कवि के रूप में, कही प्रकाण्ड संस्कृतवेत्ता के रूप में, कही विचक्षण शिक्षाविद् के रूप मे तो कहीं प्रौढ़ दार्शनिक के रूप में।

सूक्तियों के इस सग्रहदीप को मैं सुधीजनों के लिये मुण्डेर पर रख रही हूं ताकि जीवन-पथ के अंधेरों मे भटका व्यक्ति मार्गदर्शन प्राप्त कर सके। यह प्रयास तभी सार्थक होगा, जब जन-जन के हृदय-वारिधि में ज्ञान की उत्ताल तरगें हिलोरें लेने लगेंगी और मानव के संतमसमय मस्तिष्क का आलोड़न-विलोड़न कर सूक्ति के प्रकाश से उस संतमस को प्रकाश किरणों में रूपान्तरित कर देगी। यदि एक सूक्ति भी जीवन के संकटपूर्ण क्षणों में समस्या को सुलझाने की सूझ दे सकी तथा स्थिति-परिवर्तन मे सहयोगी बन सकी तो यह प्रयास और श्रम सार्थक हो सकेगा।

शिष्य गुरु के चरणों में जो कुछ अर्पित करता है, उसमें कृतज्ञता का सागर भरा होता है, अहोभाव की अनुभूतियां होती है, उसका हृदय उसमें उंडेला हुआ होता है। इस दृष्टि से लघु वस्तु भी

विराट्रूप ले लेती है। मेरा यह प्रयास भी और कुछ नहीं, मेरी आस्था, श्रद्धा और भावना की अभिव्यक्ति मात्र है। इस कार्य की सम्पन्नता में परमाराध्य आचार्यदेव, युवाचार्यवर एव महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाश्रीजी का आशीर्वाद और मार्गदर्शन तो मिलता ही रहा और भी अनेक व्यक्तियों ने मुक्तभाव से सहयोग दिया। जैन विश्व भारती के कुलाधिपति ने इस ग्रंथ को रमणीयता प्रदान करने के सुझाव तो दिए ही, साथ ही प्रकाशन की सारी जिम्मेवारी भी अपने ऊपर ले ली। संघ-परामर्शक मुनि श्री मधुकरजी एवं मुनि श्री दुलहराजजी का सहयोग एवं मार्गदर्शन भी स्मरणीय रहेगा। साहित्यप्रेमी श्रीमान् कन्हैयालालजी फूलफगर के सुझाव भी समय-समय पर मिलते रहे है।

साध्वीश्री सिद्धप्रज्ञाजी के सहयोग को भी भुलाया नहीं जा सकता जिन्होंने आद्योपान्त प्रूफरीडिंग कर अपने अनेक सुझावों से मुझे लाभान्वित किया है। प्रेस कापी का पुर्ननिरीक्षण करने में जैन विश्व भारती के प्रवक्ता बच्छराजजी दूगड़ के आत्मीय सहयोग को विस्मृत नहीं किया जा सकता। नियोजिकाजी एवं समस्त समणी परिवार का आत्मीय व्यवहार भी इस कार्य की संपूर्ति में हेतुभूत वना है।

आचार्यश्री की अधिकांश पुस्तकें आदर्श साहित्य संघ से प्रकाशित है। अतः पुस्तक-प्राप्ति में भाई कमलेश चतुर्वेदी का, जैनभारती, अणुव्रत आदि पत्र-पत्रिकाओं की प्राप्ति में गंगाशहर निवासी श्रीमान् जयचन्दलालजी बैद तथा जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा का उदारतापूर्ण सहयोग मिला है।

इस खण्ड के लिए दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रभावशाली आचार्य श्री विद्यानंदजी एवं हिंदी साहित्य के यशस्वी समालोचक डॉ. रामप्रसाद मिश्र की भूमिका उपलब्ध हुई है। मैं उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूं। अंत में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सभी शुभेच्छुओं और सहयोगियों के प्रति मंगलभावना।

समणी कुसुमप्रज्ञा

अनुक्रम

ऊ

ऋ

ख

इंद्रिय

१ हमारी आत्मा असत् की ओर जाती है, उसमें मुख्य हेतु हमारी इन्द्रियां बनती हैं।

२ इंद्रियों का विषयों में आसक्त होने का मुख्य कारण उनका अधिक संपोषण है।

३ इन्द्रियों को जितना भोगों को भोगने के लिए खुला छोडा जाएगा, उनकी भोगलिप्सा व लालसा उतनी ही अधिक बढ़ती जाएगी, वे उतनी ही ज्यादा उच्छृंखल बनेंगी।

४ जो इन्द्रिय-लोलुप होता है, उसका जीवन विकारों से घिरा रहता है।

५ प्रतिनियतविषयग्राहि इंद्रियम्।

(जिसके द्वारा अपने अपने नियत विषय—शब्दादि का ज्ञान होता है, वह इंद्रिय है)।

इंद्रिय और मन

६ मन स्वस्थ, प्रसन्न या निर्मल तब होता है, जब उसकी सहगामिनी इन्द्रियां प्रसन्न होती है।

७ इन्द्रिय और मन की शक्ति तभी विकसित हो सकती है, जब वे प्रशिक्षण के द्वारा अनुशासित हों।

८ इन्द्रियों और मन को निगृहीत करने की बात कठिन अवश्य है, पर इससे बड़ा कोई और सुख संसार में नही है।

९ इंद्रिय और मन बलप्रयोग से वशवर्ती नहीं किए जा सकते। हठ से उन्हें नियंत्रित करने का प्रयत्न करने पर वे कुंठित हो जाते है।

१० इंद्रिय और मन की शक्ति अंतरंग आकर्षण की ओर मुड़ जाए तो आंतरिक शक्ति का स्रोत खुल जाता है।

इंद्रिय-दासता

११ इंद्रियों की दासता वास्तविक दासता है और इस दासता से मुक्त होना ही वास्तविक स्वतंत्रता है।

१२ इन्द्रिय-विषय-दासता थांरी, भारी होसी हार।
बूढापो आवै जद जावै जोवन करत जुहार॥

१३ दूसरों की परतंत्रता से मुक्त होना सहज है पर अपनी इन्द्रियों की दासता से मुक्त होना टेढी खीर है।

१४ इंद्रियों का गुलाम बनने वाला अपना निर्माण और उत्थान नहीं कर सकता।

१५ इन्द्रिय-विषय-दासता दर-दर, घर-घर कलह करार।
अपणै-अपणै मन री ताणै, नहिं मानै कोइ कार॥

इंद्रिय-निग्रह

१६ जो व्यक्ति इन्द्रियों पर काबू रख सकता है, वही शिक्षा के काबिल है।

१७ किसी भी देश पर आक्रमण करते समय जैसे अपने देश की सुदृढ़ता आवश्यक है, ठीक वैसे ही बाहरी वृत्तियों को सुधारने के लिए पहले इन्द्रिय-निग्रह की जरूरत है।

इंद्रिय-विजय

१८ दूसरों पर विजय प्राप्त कर व्यक्ति खुशी मनाता है, किन्तु अपनी इंद्रियों जितना दुर्जेय दूसरा कोई नहीं है।

१९ इंद्रियों को जीतने से आत्मा में सुख की लावण्यमयी लहर उमड़ पड़ेगी।

इंसान

२० आदमी जन्म से इंसान ही होता है। जाति या कुल—ये ऊपरी बातें हैं।

२१ इंसान बचेगा तो सम्प्रदाय बचेगा, इंसान ही नहीं रहा तो सम्प्रदाय कहां रहेगा ?

२२ खुश-किस्मती से है मिली इन्सानी जिन्दगी,
आने न दो तुम इसमें बुराई की गंदगी।

२३ इंसान को पैदा करने का अर्थ उसे जन्म देने से नहीं, नया जीवन-दर्शन देने से है।

२४ अच्छा इंसान बनने के तीन नुस्खे है—१. खान-पान की शुद्धता २. रहन-सहन की पवित्रता ३. विचारों में निर्मलता।

२५ डाक्टर, अध्यापक, वकील बनना आसान है, परन्तु अच्छा इन्सान बनना बहुत कठिन है।

२६ इंसान को भुलाकर भगवान् को प्राप्त करना कठिन ही है।

२७ जो व्यक्ति धन के लिए अपनी नैतिकता को खो देता है, वह इंसान कहलाने का अधिकारी कैसे हो सकता है ?

इंसानियत

२८ इंसानियत की उपेक्षा कर केवल पूजा-पाठ या क्रियाकाण्ड के सहारे धार्मिकता का मुखौटा पहनने वाले व्यक्ति कभी धर्म का स्वाद चख सकेंगे, ऐसा संभव नहीं है।

२९ फटे-पुराने कपड़ों से कभी इन्सान का मोल नहीं आंका जा सकता। इंसान का मोल इंसानियत से होता है।

३० इंसानियत मजहब से बहुत ऊंचा तत्त्व है।

३१ विडम्बना इस बात की है कि मनुष्य तिजोरियों की चाबी को ही पूंजी मानने लगा है, इन्सानियत को नहीं। वह चाहता है कि उसकी तिजोरियां मालोमाल रहें, इन्सानियत रहे या न रहे। पर इंसानियत के बिना तिजोरियां कब तक भरी रह सकती हैं ?

३२ इन्सानियत सत्य की एक किरण है, धर्म की बुनियाद है।

३३ खुद की रुहानी ताकतें खुद से आजाद हों।
इन्सानियत आबाद हो ऐसा जिहाद हो ॥

३४ आज अन्न की कमी है, वस्त्र की कमी है, किन्तु मैं कहता हूं कमी है—इन्सानियत की और मानवता की।

३५ इन्सानियत को सामने रखकर काम करने से स्वयं नेता का ही नहीं, समाज और राष्ट्र का मस्तक भी ऊंचा होगा।

इक्कीसवीं सदी

३६ जब तक नई पीढ़ी को चरित्र का सिंचन नही मिलेगा, युवा-पीढ़ी को चरित्र की शिक्षा नहीं मिलेगी, और बुजुर्ग पीढ़ी चारित्रिक आस्था से भरी हुई नहीं होगी, तब तक अमन और चैन से भरी हुई इक्कीसवीं सदी का साक्षात्कार कैसे हो सकेगा ?

इच्छा

३७ इच्छा के आकाश में असंख्य तारे झिलमिल जगमगाते हैं जो कभी तो अपनी झलक देकर प्रसन्न कर देते हैं और कभी अन्धकार मे विलीन होकर हमारी आंखों के समक्ष अन्धकार की कालिमा फेर देते हैं।

३८ इच्छाओं का अल्पीकरण विलासिता को समाप्त करने के लिए है, न कि देश की अर्थ-व्यवस्था का अवमूल्यन करने के लिए।

३९ इच्छा स्वल्प होती है, तब हिंसा अपने आप स्वल्प हो जाती है।

४० निस्सीम इच्छाएं व्यक्ति को आनन्दोपलब्धि से विपरीत दिशा में ले जाती हैं।

४१ जहां इच्छा का विसर्जन होता है, वहां व्यक्ति का अहम् टूटता है। जहां कुछ टूटता है, वहां कुछ नया निष्पन्न भी होता है।

४२ जिस कार्य में इच्छा का साथ न हो, वहां व्यक्ति एक कदम भी चलना भार अनुभव करता है।

४३ मन री प्यास बुझै न भले ही सागर रो जल शोष ।
'इच्छा ज्यूं आकाश अनंती', वीरवचन निर्दोष ।।

४४ वह व्यक्ति अपना नाथ बनता है, जिसकी सारी इच्छाएं समाप्त हो जाती है ।

४५ इच्छाओं का परिष्कार ही समाज-विकास या जीवन-विकास है ।

४६ ज्यो-ज्यों इच्छाओ के दास बनोगे, तुम्हारा जीवन असन्तुलित होता चला जाएगा ।

४७ इच्छाओं की गहन झाड़ियों मे भटके मनुष्य को रास्ता मिलना बहुत कठिन हो जाता है ।

४८ समस्या और दुःख का मूल तनाव या थकान नही, उसका मूल है—इच्छा ।

इच्छा-नियंत्रण

४९ जिस प्रकार घोड़े की लगाम खुली छोड़ देने पर वह अनिष्ट कर बैठता है, उसी प्रकार इच्छाए भी निरंकुश बनकर चेतना पर हावी होने लगती है ।

५० असीम इच्छाएं मानव को क्षण भर भी शाति से नही जीने देतीं । इच्छाएं सीमित हो जाएंगी, तो दुःख स्वयं उत्क्रांत हो जाएगा ।

५१ वामन व्यक्ति उद्‌बाहु होने पर भी ऊंचे वृक्ष पर लगे फल को नहीं तोड़ सकता । कोई भी व्यक्ति भुजाओं मे आकाश को नही बांध सकता, इसी प्रकार अनन्त इच्छाओं की पूर्ति संभव नहीं है ।

५२ जो इच्छा पर विजय नही पा सका, वह चाहे सांसारिक दृष्टि से हो अथवा अध्यात्मिक दृष्टि से, जीवन की सफलता से दूर ही रहेगा ।

५३ इच्छा-नियंत्रण की वेदी पर सब संघर्ष स्वाहा हो जाते है ।

५४ परिग्रह का नियन्त्रण सामाजिक नियम से हो सकता है किंतु इससे इच्छा का नियंत्रण नहीं होता।

इच्छा-परिमाण

५५ संसारी व्यक्ति भौतिक सुखों से सर्वथा विमुख बन जाए, यह आकाशकुसुम जैसी कल्पना है। फिर भी अनंत आसक्ति और असीम दौड़धूप से बचा जा सकता है।

५६ इच्छा-परिमाण का अर्थ यह नहीं कि मनुष्य गरीब हो जाये किंतु उसका सही अर्थ है—पूंजी-संग्रह के प्रति मनुष्य में आकर्षण न रहे।

इच्छाशक्ति

५७ इच्छाशक्ति के सामने श्रान्ति और क्लान्ति टिक ही नहीं सकती।

५८ पुरुषार्थ के सही नियोजन और लक्ष्य-प्राप्ति की भावना का मूल्य इच्छाशक्ति की प्रबलता पर ही निर्भर है।

५९ मनुष्य जो कुछ बनता है, अपनी संकल्पशक्ति और इच्छाशक्ति से बनता है।

६० दुर्बल इच्छाशक्ति वाले व्यक्ति चलते-चलते स्खलित हो जाते हैं और आचार के प्रशस्त राजमार्ग को छोड़कर इधर-उधर भटक जाते है।

६१ जिस व्यक्ति की इच्छाशक्ति प्रबल होती है, वह जैसा सोचता है, वैसा बन जाता है। उसके लिए कोई भी काम कठिन नहीं होता। वह अपने आपको या अपने परिवार को ही नहीं, एक समूचे युग को अपनी इच्छा के सांचे में ढाल सकता है।

६२ जिस व्यक्ति की इच्छाशक्ति दुर्बल होती है, वह अवसरवादी होता है। उसके मन में अपने लक्ष्य के प्रति गहरी निष्ठा नही होती, इसलिए वह हवा के रुख के साथ बदल जाता है, अपने लक्ष्य को बदल लेता है।

६३ 'इस युग में नैतिकता के आधार पर जीवन-यापन संभव नहीं है'—ऐसा चिन्तन दुर्बल इच्छाशक्ति का सूचक है।

इज्जत

६४ चरित्र-भ्रष्ट होना अपनी इज्जत को बेचना है।

६५ खो इज्जत, विश्वास, आबरू इण भव में दुख पावो।
ऊपरलो पानो नहिं आवै, पग पग पर पिछतावो॥

६६ व्यक्ति की इज्जत तो उसी क्षण कम हो जाती है, जब वह गलती करता है।

इतिहास

६७ इतिहास वह नही होता, जो अक्षरों में लिखा जाता है, पाषाणों में उकेरा जाता है, कथाओं में पिरोया जाता है और कल्पनाओं में संजोया जाता है। इतिहास उन क्षणों की दृश्य, श्रव्य या पाठ्य अभिव्यक्ति है, जो किसी व्यक्ति, समाज या देश द्वारा जिए गए हैं।

६८ जो क्षण हाथ से छूट जाता है, वह लौटकर नहीं आता, किंतु इतिहास एक ऐसी विधा है, जो अतीत के क्षणों को सहेजकर रख सकती है।

६९ जो व्यक्ति अपना इतिहास नहीं जानता, वह पढ़ा-लिखा मूर्ख है।

७० मानव-जाति का इतिहास जितना प्राचीन है, हिंसा और अहिंसा का द्वन्द्व भी उतना ही प्राचीन है।

७१ कुछ पाने और खोने का इतिहास मनुष्य ही लिख सकता है। जब-जब वह यादों के वातायन से अपने अतीत में झांकता है, उसके जीवन का हर क्षण एक नये इतिहास को जोड़ता हुआ दिखाई देता है। निर्माण और ध्वंस दोनों का इतिहास मनुष्य के हाथों ने ही लिखा है।

७२ इतिहास हमारी बहुत बड़ी थाती है।

७३ संसार की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का इतिहास कठिनाइयों एवं बाधाओं का इतिहास है।

७४ इतिहास समाज का दर्पण है, जिसमें अतीत का देखकर प्रेरणा मिलती है और भावी पीढ़ी की प्रगति के लिए दिशा-दर्शन प्राप्त होता है।

७५ जो इतिहास से अनजान हैं, उन्हे परिवर्तन अखरता है।

७६ समय पर लिया गया सही निर्णय और समय पर किया गया सही काम इतिहास का दुर्लभ दस्तावेज वन जाता है।

७७ यथार्थ को प्रस्तुत करने का दृष्टिकोण ही इतिहास को एक निष्कलंक दर्पण बना सकता है, जिसमें अतीत की प्रत्येक आकृति का सही रूपांकन संभव है।

७८ जो लोग नव-सृजन का इतिहास गढ़ना चाहते है, उन्हें सबसे पहले अपने संकल्प को इतना दृढ़ बनाना चाहिए कि चाहे कठिनाइयो का पहाड़ भी क्यों न टूट पड़े, मौत के साथ भी क्यों न खेलना पड़े, हम स्वीकृत पथ से एक चरण भी पीछे नही हटेंगे।

७९ इतिहास का मूल्य भो होता है और उपयोग भी, पर उसका मूल्यांकन करने वाले व्यक्ति कम होते हैं।

८० यशस्वी इतिहास का होना दुर्लभ है और उसका सुरक्षित रहना अति दुर्लभ।

८१ शक्ति के साथ जब भी अह का योग होता है, रक्तरंजित इतिहास की पुनरावृत्ति हो जाती है।

८२ स्वर्णिम इतिहास का स्रष्टा मनुष्य ही होता है।

८३ इतिहास ही संसार के आश्चर्यों की सुरक्षा करता है।

८४ इतिहास में समाज का गौरव सुरक्षित रहता है।

८५ जन्म और मृत्यु की शृंखला के मध्य से गुजरता व्यक्ति जिन क्षणों को स्थायित्व दे जाता है, वे ही इतिहास की धरोहर बन जाते हैं।

८६ इतिहास में शक्ति को ही सफलता का मूल स्रोत प्राप्त है।

८७ जो लोग सामयिक बातों को लेकर हिंसा को प्रोत्साहित करते है, वे इतिहास के पृष्ठों पर काले धब्बे छोड़ जाते है।

८८ कोई भी दिवस ऐसा नही, जिसका अपना इतिहास न हो।

८९ इतिहास का सबसे दुर्भाग्यपूर्ण दिन वह होगा, जिस दिन धर्म संसार से खत्म हो जाएगा।

इमारत

९० इमारत का स्थायित्व उसकी मजबूत नीव पर निर्भर करता है, सुदरता पर नहीं।

इल्म

९१ इल्म है तो धन-दौलत कभी भी और कही भी कमा सकते है।

इष्ट

९२ हमारा इष्ट कोई व्यक्ति नही, हमारी मंजिल है।

इहलोक

९३ वर्तमान जीवन की शुद्धि के अभाव में परलोक सुधार के रंगीन सपने मन को कब तक आश्वस्त करते रहेंगे ?
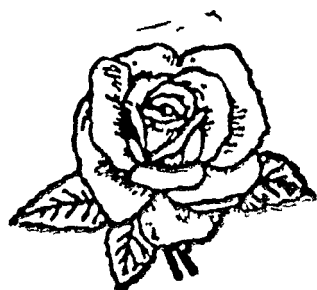
ईमान

१ पैसे के लिए ईमान को बेचना नासमझी है।

२ जो ईमान को बेचकर बुद्धिमान कहलाता है, वह वस्तु-सत्य को आच्छादित करने की चेष्टा करता है।

ईमानदार

३ मेरा यह निश्चित विश्वास है कि जिस राष्ट्र, समाज और संगठन के शीर्ष में बैठे व्यक्ति कर्त्तव्य-परायण व ईमानदार होंगे, वहां के लोग अपने नैतिक धरातल को पाताल में नही बिठा सकते।

४ ईमानदार व्यक्ति ही सही अर्थ मे धार्मिक बनने की परिधि में आता है।

५ जो मनुष्य अपने प्रति ईमानदार होता है, वही दूसरों के प्रति ईमानदार रह सकता है।

६ जो ईमानदार नही, वह कहने भर को मनुष्य है, परन्तु वस्तुत: मानवीय भौतिक पिंड है।

७ ईमानदार व्यक्ति की सत्यवादिता के आगे कभी कोई प्रश्नचिह्न नही लग सकता।

८ यदि व्यक्ति की मानसिकता ईमानदार रहने की है, तो कठिन से कठिन परिस्थिति में भी उसका त्याग नही कर सकता।

९ ईमानदार व्यक्ति धोखा खा सकता है, किन्तु किसी को धोखा देना उसके वश की बात नहीं होती।

१० ईमानदार होने के लिए बेईमानी को समझना उतना ही जरूरी है, जितना ईमान को।

ईमानदारी

११ ईमानदारी घर में शांतिकेन्द्र, व्यापार में ख्यातिकेन्द्र, राष्ट्र में शक्तिकेन्द्र और जनमानस में विश्वासकेन्द्र है।

१२ ईमानदारी मनुष्य की मूलभूत पूंजी है।

१३ ईमानदारी व्यक्तित्व का एक अभिन्न गुण है, जो सामाजिक विश्वास का आधार बनता है। इसके बिना सामाजिक जीवन सफल नहीं हो सकता।

१४ व्यापार में अनैतिकता बरतने वाले इस बात को भूल जाते है कि ईमानदारी से व्यापार अपेक्षाकृत अधिक ठीक चल सकता है।

१५ यदि आप दूसरों से ईमानदारी की आशा रखते है तो स्वयं भी बेईमान न बनें।

१६ ईमानदारी के बिना अभय नही आ सकता।

१७ सत्य-निष्ठा के बिना ईमानदारी की कल्पना करना भी कठिन है।

१८ जब पूरा समाज ही ईमानदारी को ताक पर रख दे तो नैतिक मूल्यों को उजागर कौन करेगा ?

१९ ईमानदारी कोई क्रय-विक्रय की वस्तु नही है, उसका आयात-निर्यात नही किया जा सकता।

२० 'काम पूरी ईमानदारी के साथ किया है तो उसका दुष्परिणाम क्यों आएगा ?'—ऐसा सोचने वाला ही अपने पौरुष की लौ को प्रज्वलित रखता है।

ईश-भक्ति

२१ 'अपने बुरे कार्यों का फल मुझे अवश्य भोगना पड़ेगा'—इस ज्ञान के बिना व्यक्ति ईश्वर से प्रेम नही कर सकता।

२२ मोक्ष के लिए जिस ईश्वर की भक्ति की जाती है, उसी ईश्वर या खुदा की सहायता धोखा देने के समय मांगे, क्या यह उचित है ?

ईश्वर

२३ ग्रंथिमुक्त मनुष्य ईश्वर बन जाता है ।

२४ ईश्वर चूने, ईंट और पत्थरों के मंदिर में नही, मन-मंदिर में विराजमान रहते हैं ।

२५ नियंत्रण-शक्ति ही ईश्वर है, जो हमारे भीतर मे प्रकट होती है ।

२६ ईश्वर सुख-दुःख का कर्ता नहीं—वह तो वीतराग है और समभावो के आदर्श का प्रतीक है, जिससे हम प्रेरणा पाते है ।

२७ समस्याओं के समाधान के लिए हमें स्वयं ईश्वर बनना पड़ेगा ।

२८ ईश्वर हमारे लिए आदर्श हो सकता है, किन्तु उस आदर्श को पाने के लिए हमें अपने ही पुरुषार्थ से आगे बढ़ना होगा ।

२९ ईश्वर का अस्वीकार अपना अस्वीकार है, अपने विकास का अस्वीकार है, अपनी क्षमताओं का अस्वीकार है और अपनी आस्था का अस्वीकार है ।

ईश्वर-कर्तृत्व

३० ईश्वर राग-द्वेष मुक्त होता है, अतः ईश्वर-कर्तृत्व का सिद्धांत बुद्धि-गम्य नही होता ।

३१ ईश्वर-कर्तृत्व मानने का अर्थ है—श्रम पर प्रहार ।

३२ ईश्वर के हाथ की कठपुतली बनने वाले लोग स्वयं यंत्र बन जाते हैं ।

३३ सुनना केवल सुनने तक ही सीमित रहे और उससे कल्याण होना मान लिया जाये, यह तो एक प्रकार से ईश्वर-कर्तृत्व का ही सिद्धांत हो जाता है ।

ईश्वर-पूजा

३४ ईश्वर की पूजा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है—उनके बताए मार्ग पर चलना ।

ईश्वर-स्मरण

३५ यदि हम किसी प्राप्ति के लिए ईश्वर का स्मरण करते हैं, तब तो फिर अप्राप्ति पर हमें उस पर क्षोभ हुए बिना नहीं रहेगा ।

३६ सुख-दुःख दोनों स्थितियों में यदि ईश्वर का स्मरण किया जाए तो दुःख आएगा ही नही ।

३७ जिस प्रकार मेढी बैलों को अपने चारों ओर घुमाने में सहायक है पर चलाती नहीं, उसी प्रकार हमारा चंचल मन स्थिरता प्राप्त कर सके, यही ईश्वर-स्मरण का रहस्य है ।

३८ यदि कुछ लेन-देन की भावना से व्यक्ति भगवान् का स्मरण करता है तो मैं समझता हूं कि वह अपनी क्रिया को निष्क्रिय बनाने का प्रयास करता है ।

३९ और क्रिया जो सझै न पूरी, तो सुमरण न विसारो ।
साचै मन कर भजन प्रभु रो, 'तुलसी' जन्म सुधारो ।।

ईर्ष्या

४० ईर्ष्या एक ऐसी बीमारी है, जिसका किसी के पास कोई इलाज नहीं है ।

४१ जिस मनुष्य के मन में ईर्ष्या घर कर जाती है, वह उन चीजो का आनंद नही उठा पाता, जो उसके पास मौजूद हैं ।

४२ ईर्ष्या या जलन सद्‌गुणों को जलाने वाली भट्टी है।

४३ स्पर्द्धा-प्रतिस्पर्द्धा बुरी नहीं होती, बुरा होता है उसके साथ बढ़ने वाला ईर्ष्या का भाव।

४४ ईर्ष्या एक प्रकार की मानसिक उत्तेजना है, जो शरीर पर भी अपना दुष्प्रभाव डालती है।

४५ परधन-लिप्सा, निंदा, खिंसा।
मत्सर ईर्ष्या हैं सब हिंसा॥

४६ ईर्ष्या और विरोध जीवन को नीरस बनाने वाले तत्त्व है।

४७ परविभुता से दुर्बल होते।
वे अपने गौरव को खोते॥

४८ यों फूलों की चाह में बोते हाय! बबूल।
किंतु मिलेंगे अंत में, तीक्ष्ण नुकीले शूल॥

४९ ईर्ष्या के वश हुआ मानव दानव बन जाता है।

ईर्ष्यालु

५० 'अमुक सेठ की भैंस इतनी मोटी-ताजी क्यों? उसका पेट क्यों नही फट जाता'—यह ईर्ष्यालु मनोवृत्ति का एक हलका-सा चित्र है।

५१ ईर्ष्यालु मनुष्य कई बार ऐसे निंदनीय कार्य कर बैठता है, जो मानवता और इन्सानियत से कोसों दूर होते है।
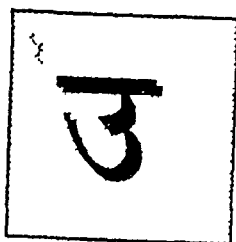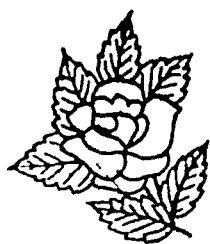
उच्च

१ ऊंचे पद पर आसीन होने से आदमी ऊंचा नहीं होता। ऊंचा वह होता है, जो विचारों में शालीनता और आचरण में प्रामाणिकता एवं सादगी को स्थान देता है।

२ जो मनुष्य अभिमान को छोड़कर, जीवन में नम्रता को स्थान दे, वह महान् है, उच्च है।

३ विपुल धन-राशि, गगनचुम्बी अट्टालिकाएं तथा आज्ञा-पालन के लिए सन्नद्ध सेवकों की भीड़—यह कोई उच्चता को निशानी नहीं है। वास्तव में उच्च वह है, जिसने आत्म-शुद्धि के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए अपने आपको संयम से जोड़ लिया है।

उच्चता

४ एक दूसरे की करो, हरदम ऊंची बात।
अपने दिल की उच्चता, होगी सहसा ज्ञात॥

५ उच्च कहे जाने वाले कुल में जन्म लेकर यदि कोई निंदित या बुरे कर्मों में ही लगा रहे, तो उसमें उच्चता कैसी ?

उच्च-नीच

६ उच्च-नीच की कसौटी है, आचार और विचार की विशुद्धता और उज्ज्वलता।

७ यदि किसी ने अपने जीवन में भलाइयों और गुणों का संचय किया तो वह ऊंचा, नहीं तो नीचा।

८ अगर किसी के मानने मात्र से कोई नीचा हो जाए तो दुनिया में कोई भी व्यक्ति ऊंचा हो ही नहीं सकता।

९ व्यक्ति ऊंचा बनता है चरित्र को विकसित कर और नीचा बनता है चरित्र को गंवाकर।

उच्छृंखल

१० जो जितना अधिक उच्छृंखल होता है, उसके आसपास उतना ही अधिक मर्यादा और अनुशासन का जाल बुना जाता है।

११ भावना और प्रेम से नियंत्रित व्यक्ति उच्छृंखल नहीं हो सकता।

१२ कोई अशिक्षित उच्छृंखल हो सकता है पर शिक्षित कहलाने वाला उच्छृंखल या उद्दंड हो, यह आश्चर्य की बात है।

उच्छृंखलता

१३ उच्छृंखलता या स्वच्छन्दता जहां प्रवेश पा लेती है, वहां से अनुशासन, व्यवस्था आदि तत्त्वों का पलायन हो जाता है।

१४ अनुशासनहीनता और उच्छृंखलता ही किसी भी देश में व्याप्त भ्रष्टाचार और आपाधापी का मूल कारण बनती है।

१५ समाज का अतिनियंत्रण भी उच्छृंखल मनोवृत्ति का सृजन करता है।

१६ उच्छृंखलता व्यक्तित्व-विकास में सबसे बड़ी बाधा है।

१७ जहां अध्यात्मशून्य स्वतंत्रता होती है, वहां उच्छृंखलता बढ़ती है। यदि वातावरण स्वनियमन से प्रभावित हो जाए तो बढ़ती हुई उच्छृंखलता की रीढ़ टूट सकती है।

१८ विवेक और संयम का विकास होने पर ही उच्छृंखलता को नियन्त्रित किया जा सकता है।

उजाला

१९ हर व्यक्ति अपने दामन को उजालों से भरना चाहता है किन्तु भोगवादी और पदार्थवादी बदलियों की ओट में वह उजाला कैद हो गया है।

२० हमें अपने भविष्य की थोड़ी भी चिन्ता है तो वर्तमान को उजालों से भरना होगा।

२१ किरण ढूंढने वालों को उजालों की कमी नहीं होती।

२२ स्वस्थ चिन्तन, उदात्त चरित्र और प्रशस्त व्यवहार के उजाले कदम-कदम पर बिछ जाएं तो कोई भी शक्ति देश के उजले भविष्य को उससे छीन नहीं सकती।

उज्ज्वल चरित्र

२३ निष्कलंक चरित्र से बढ़कर संसार में कोई दूसरा तत्त्व नही है।

२४ यदि चरित्र उज्ज्वल नहीं है तो चाहे जितने गहने, कपड़े पहनो, सब शृंगार बेकार हैं।

२५ जब तक मनुष्य का चरित्र उज्ज्वल और उन्नत नही होगा, संसार की बढ़ती हुई समस्याओं का समाधान नही होगा।

२६ मेरा विश्वास है कि उज्ज्वल चरित्र की बुनियाद पर ही विकास की मंजिलें खड़ी हो सकती हैं।

२७ उज्ज्वल चरित्र जीवन का आधारभूत तत्त्व है, पवित्रता का सेतु है।

२८ जिसने चरित्र को पवित्र और उज्ज्वल बनाने की कला का विज्ञान नही सीखा, उसका सारा जीवन व्यर्थ हो जाएगा।

२९ उज्ज्वल चरित्र वाले व्यक्ति ही देश और समाज के गौरव हो सकते हैं।

उतार-चढ़ाव

३० मनुष्य का जीवन समत्व की धरती पर नहीं चलता। उसे कहीं चढना पड़ता है, कहीं उतरना पड़ता है। जीवन के कुछ मोड़ उजालों से भरे रहते है, तो कुछ मोड़ सघन अंधकार में डूबे रहते है। जीवन के कुछ क्षण अनुकूलताओं से भरे होते हैं तो कुछ क्षणों में प्रतिकूलताओं में कमी ही नही होती।

३१ उतार-चढ़ाव की स्थिति में भी आध्यात्मिक और शारीरिक स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा जा सकता है।

उत्क्रांति

३२ अहिंसा, सत्य और आत्मओज से युक्त बलिदान जीवन में एक अभिनव उत्क्रांति पैदा करता है।

उत्तप्त

३३ उत्तप्त व्यक्ति का विवेक समाप्त हो जाता है और शक्ति क्षीण हो जाती है।

३४ उत्तप्त व्यक्ति क्षण भर भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। उसका अन्तःकरण क्रोधाग्नि में प्रतिक्षण जलता रहता है।

उत्तप्तता

३५ उत्तप्तता की स्थिति मनुष्य को आपे से बाहर कर देती है और आपे से या अपने स्थान से बाहर रखी हुई चीज कभी अच्छी नहीं होती।

३६ एक क्षण की उत्तप्तता भी आत्मा का बहुत बड़ा अहित कर सकती है।

३७ उत्तप्तता मुक्ति के मार्ग में मूलभूत बाधक तत्त्व है।

उत्तम पुरुष

३८ उत्तम पुरुष वे ही हैं, जो अपने गुणों से विख्यात हैं।

३९ अपनी कर्तृत्व-शक्ति का प्रस्फोटन करने वाले पुरुष ही उत्तम पुरुष होते हैं।

४० आचार-विचार की शुद्धता ही उत्तम पुरुष की पहचान है।

उत्तरदायित्व

४१ उत्तरदायित्व को न निभाना भी एक दृष्टि से अनैतिकता है, पाप है।

४२ जो व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व को नहीं समझता, वह किसी भी कार्य में सफल नहीं हो सकता।

उत्तरदायी

४३ अपने भले-बुरे, हित-अहित का उत्तरदायी स्वयं व्यक्ति है, कोई दूसरा नही।

उत्तेजना

४४ उत्तेजना पराजय का चिह्न है।

४५ आग को अगर इंधन नही मिलता है तो वह स्वयं बुझ जाती है। उत्तेजना को भी अगर निमित्त न मिले तो वह शांत हो जाती है।

४६ उत्तेजना जीवन में कटुता घोल देती है।

४७ बात-बात में उत्तेजित होने वाला व्यक्ति साधना कैसे कर सकता है?

४८ उत्तेजना व्यक्ति को उन्मत्त और पागल बना देती है।

४९ उत्तेजना जिस आत्मा या शरीर में उत्पन्न होती है, उसी को जलाती है।

५० उत्तेजनायुक्त पुरुष को काम-वासनाएं वैसे ही घेर लेती है, जैसे स्वादु और रस भरे फलों से भरे-पूरे वृक्ष को पक्षी।

५१ हजारों मन दारु को एक दियासलाई जलाकर नष्ट कर देती है, वैसे ही दीर्घकालिक तप को क्रोध और उत्तेजना एक क्षण में नष्ट कर देती है।

५२ उत्तेजना मे व्यक्ति को कभी भी अपनी भूल की अनुभूति नहीं होती।

५३ उत्तेजना वही छोड़ सकता है, जो अपने आपमें रहना सीख जाता है।

५४ उत्तेजना अपने आपमें हिंसा है।

५५ उत्तेजना व्यक्ति को विवेकहीन बना देती है।

उत्थान

५६ उत्थान अमीरी और गरीबी में नही, वह तो जीवन के व्यवहार से सम्बन्ध रखता है।

५७ उत्थान तब होता है, जब वृत्तियां परिष्कृत होती हैं, दृष्टि अन्तर्मुखी बनती है।

५८ संयम, दया और लज्जा ये तीनों तत्त्व विशेष।
हो जाता उत्थान, एक भी रह जाए यदि शेष ॥

५९ यदि उत्थान करना है तो स्वयं को प्रयत्नशील बनना होगा। पक्षाघात से पीडित व्यक्ति दूसरे के सहारे उठकर भी टिक नही सकता।

६० केवल पद-प्राप्ति ही उत्थान नही है। चरित्र-सम्पन्नता के बिना उच्चपद जीवन के लिए भारभूत है।

६१ व्यक्ति बहुत समय तक जीवित रहकर भी जीवन का उत्थान नही कर सकता और क्षण भर में मरकर भी अपना कल्याण कर सकता है।

६२ उठाने वाला सचेष्ट हो और उठने वाला चेष्टाहीन हो तो उत्थान नही हो सकता। यदि उठने वाला पुरुषार्थी है तो उठाने वाले के बिना भी वह उत्थान कर सकता है।

उत्थान : पतन

६३ आता पतन चरम सीमा पर, तब होता उत्थान।
प्राय: मानव-मानस का यह, सरल मनोविज्ञान ॥

६४ चढ़ते-चढते प्रगति शिखर से, गिरना है आसान।
किन्तु गिरकर पुनः संभलना कितनी टेढी तान !

६५ उत्थान-पतन, सुख-दुःख—सब पुरुषार्थ-सापेक्ष हैं।

६६ दान, शील, तप, भाव प्रयोग, कर-कर तर्‌या हजारां लोग।
हिंसा, कलह, कुटिलता धार, बह्या हजारां ही मझधार ॥

६७ नीचे की ओर जाने में कठिनाई नही होती, बिना ताकत लगाए जाया जा सकता है, पर ऊपर उठने में, ऊंचा चढ़ने में कठिनाई होती है।

६८ मनुष्य को डूबने के और पतन के अवसर पग-पग पर मिलते रहते है किन्तु उबरने या पार उतरने के अवसर दुर्लभ होते हैं।

६९ उत्थान और पतन दोनों का उपादान कारण व्यक्ति स्वय ही है। दूसरे तो निमित्त मात्र बनते है।

उत्पथगामी

७० जिस व्यक्ति की दृष्टि सही होती है और आचरण प्रशस्त होता है, वह किसी भी परिस्थिति में उत्पथगामी नही बनता।

उत्पीड़न

७१ उत्पीड़न और शोषण का कारण भोगलिप्सा है, भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति होने वाली आसक्ति है।

उत्सर्ग

७२ उत्सर्ग की भावना विकसित किए बिना जीवन का वास्तविक अंकन नही किया जा सकता।

७३ दूसरे के लिए उत्सर्ग किए बिना कोई भी उसके हृदय को नही छू सकता।

उत्सव

७४ मानव उत्सवप्रिय प्राणी है। वह उल्लसित रहना चाहता है, इसलिए उत्सव मनाता है। वह जीवन में बदलाव चाहता है, इसलिए उत्सव मनाता है। वह संस्कृति की सुरक्षा चाहता है, इसलिए उत्सव मनाता है।

७५ धर्म में जीना उत्सव है, मरना उत्सव है, सोना, जागना, चलना, बोलना और मौन रहना भी उत्सव है।

७६ उत्सव की सफलता का सबसे बड़ा मानक है—मानसिक-प्रसन्नता।

७७ रूढ़ होने के बाद उत्सव मनाने की रस्म तो पूरी होती है, पर वह व्यक्ति को उल्लसित नहीं कर सकता।

उत्साह

७८ यदि उत्साह है, शक्ति है, तो व्यक्ति एक साथ कई नए कार्य कर सकता है।

७९ जिनका उत्साह मंद होता है, वे प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना नही कर सकते।

८० जो व्यक्ति लक्ष्य तक पहुंचने से पहले ही अपने उत्साह को मंद कर दे, वह सफल नही हो सकता। उत्साह के साथ आगे बढ़ेगे तो मजिल अवश्य चरण चूमेगी।

८१ उत्साह का दीप निरन्तर जलकर ही निराशा के सघन तिमिर को हटा सकता है।

८२ मेरी दृष्टि में उत्साह और उल्लास की सफलता इसी में है कि व्यक्ति अपने जीवन को त्याग एवं संयम की साधना में लगाए।

८३ कार्यसिद्धि में सबसे बड़ी बाधा है—उत्साह का ठण्डा पड़ना।

उत्सुकता

८४ उत्सुकता जिज्ञासा को जन्म देती है।

८५ वार्ता व्यक्ति विशेष से, सुगुरु करे एकान्त।
श्रवणोत्सुकता छोड़कर, दूर रहो बन शान्त॥

८६ अधिक उत्सुकता असंयम की जननी है।

उदय

८७ वह उदय उदय नही, जिसमें अपना उदय और दूसरों का तिरोभाव हो। वह उदय भी उदय नहीं, जिसमें अपना उदय भूलकर दूसरों के ही उदय की कल्पना हो।

८८ सबका उदय अहिंसा से ही संभव है।

उदार

८९ जो व्यक्ति सबके लिए सुलभ होता है, वह सबका दिल जीत लेता है। जिसकी सीमाएं जितनी संकीर्ण होती हैं, वह उतना ही सीमित रह जाता है।

९० उदार बनेंगे पायेंगे, संकुचित बनेंगे खोयेंगे।

उदारता

९१ मन को किसी एक विचार से बांध देने से घर छोटा हो जाता है। उसे सत्य से बांधने का अर्थ है—घर को बड़ा बनाना।

९२ उदारता व्यक्ति को सहनशील बनाती है।

९३ उदार विचारों से ही व्यक्ति महान् बनता है।

९४ उदारता अहिंसा के बिना फलित नहीं हो सकती।

९५ उदारता के लिए खुला दिल, असंकीर्ण दिमाग एवं विशाल हृदय चाहिए।

९६ जब तक हृदय उदार नहीं होगा, हममें दूसरों की बात सुनने या समझने की शक्ति नहीं आ सकती।

९७ विशाल सड़कों को देखकर मैं कई बार सोचा करता हूं कि यदि लोग इन विशाल सड़कों की तरह अपने संकीर्ण हृदय और दिमाग को विशाल बनाते तो कितना अच्छा होता!

९८ व्यक्ति के विचारों में जितनी उदारता होती है, उसके व्यवहारों में जितनी पवित्रता होती है, वह धर्म की उतनी ही निकट सन्निधि पा सकता है।

९९ इतनी उदारता तो व्यक्ति में होनी ही चाहिए कि जैसे मैं अपने विचारों और सिद्धांतों पर दृढ़ हूं, वैसे ही दूसरे भी हों।

१०० उदार दृष्टिकोण को अपनाकर ही हम किसी को अपना बना सकते हैं।

१०१ यदि दिल में जगह न हो तो बड़ी जगह भी छोटी बन जाती है।

उदास

१०२ हर समय उदास रहने वाले व्यक्ति के मन में कभी-न-कभी विषण्णता अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर ही लेती है।

उदासीनता

१०३ जब तक दिशा में उदासीनता रहेगी, उसमें आलस्य अवश्य आएगा।

उदाहरण

१०४ जो व्यक्ति परिस्थिति की खुली चुनौतियों का आगे बढ़कर स्वागत करते हैं, वे व्यक्ति ही दूसरों के लिए उदाहरण बन सकते हैं।

उद्दंड

१०५ जो व्यक्ति उद्दंड होता है, वह सहिष्णु नहीं हो सकता।

१०६ उद्दंड व्यक्ति ऐसी पगडंडियों पर चल पड़ते हैं, जो आगे जाकर गुम हो जाती हैं।

उद्दंडता

१०७ उद्दंडता से व्यक्ति बहुत नीचे स्तर पर चला जाता है।

१०८ उद्दंड मनोभाव संयम की आवश्यकता का बोध नहीं कर पाते, पर ऐसा हुए बिना विश्वशांति की बात व्यवहार्य नहीं बन सकती।

उद्देश्य

१०९ उद्देश्य की स्थिरता और तदनुरूप साधनों का समायोजन होने से ही व्यक्ति आगे बढ़ सकता है।

११० जिस व्यक्ति का उद्देश्य जितना पवित्र और ऊंचा होगा, उसकी प्रवृत्तियां उतनी ही उन्नत होंगी।

१११ महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो कष्ट होता है, वह कष्ट नहीं, किन्तु बहुत बड़ा सुख है।

११२ येन-केन प्रकारेण पैसा संगृहीत करना, धनकुबेर बनना जीवन का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य नही है। जीवन का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है—सुख और शांति से जीना।

११३ व्यक्ति के जन्म का कोई उद्देश्य नही भी हो सकता क्योंकि जन्म परवश है, पर जीवन उद्देश्यपूर्ण होना ही चाहिए। निरुद्देश्य जीवन की कोई कीमत नही होती।

११४ उद्देश्य जितना ऊंचा होता है, वह उतनी ही ऊंचाई तक पहुंचकर फलित होता है।

११५ नाम की भूख न रखते हुए काम में जुटे रहना ही परम उद्देश्य है।

११६ सोद्देश्य किया गया सामान्य कार्य भी अभीष्ट लक्ष्य तक पहुंचा देता है।

११७ जब तक उद्देश्यपूर्ति का संकल्प सुदृढ़ नहीं होता, मानसिक प्यास प्रबल नही होती या मन में तड़प नही जागती, तब तक उद्देश्य की सिद्धि नही होती।

उद्देश्यहीन

११८ उद्देश्यहीन व्यक्ति का समय इधर-उधर घूमने में अथवा आलोचना-प्रत्यालोचना में बीतता है।

११९ उद्देश्यहीन जीवन में पुरुषार्थ की लौ नही जलती।

उद्धार

१२० नहिं हित रो उपदेश सुणै, नहिं पोतै अकल उतार।
धरम-मरम समझण नहिं प्रयतन, कियां हुवै निस्तार?

१२१ व्यक्ति सुख और दुःख दोनों में सम रह जाए तो उसका उद्धार हो सकता है।

उद्धारक

१२२ डूबते को धक्का देने वालों की संसार में कोई कमी नहीं है, पर उसे हाथ पकड़कर सम्हालने वाले विरले ही होते हैं।

१२३ उद्धारक उठाता नही, केवल पुरुपार्थ जगाता है।

उद्‌बुद्ध

१२४ जो व्यक्ति क्षण-क्षण जागरूक रहता है, प्रमाद में विश्वास नही करता और न ही वैसे परिवेश को प्रश्रय देता है, वह व्यक्ति उद्‌बुद्ध हो सकता है।

उद्‌बोधन

१२५ उद्‌बोधक, उद्‌बोधन और उद्‌बोधव्य—ये तीन पृथक्-पृथक् बिदु है। जब तक इन बिदुओ मे तादात्म्य स्थापित नही होता, उद्‌बोधन का उद्देश्य फलित नही होता।

उद्‌भ्रान्त

१२६ अरे सरल है मोहकर्मवश, हो जाना उद्‌भ्रान्त।
पर दुष्कर है पुनः धर्म में, स्थिर होना एकान्त॥

उद्यम

१२७ मनुष्य का अपना उद्यम ही भाग्य का निर्माण करता है और उसका अनुभव शास्त्र का निर्माण करता है। भाग्य और शास्त्र व्यक्ति के अधीन है, व्यक्ति भाग्य और शास्त्र के अधीन नहीं।

१२८ उद्यम द्वारा हर व्यक्ति अपना चरम विकास कर सकता है।

उद्यमी

१२९ यदि व्यक्ति उद्यमी है तो स्वतः दूसरों का सहयोग प्राप्त होता है, अन्यथा सहयोग देने वाले भी पीछे हट जाते है।

१३० उद्यमी मनुष्य के सम्मुख सब समस्याएं नगण्य हैं।

उद्योग

१३१ लक्ष्य प्राप्ति हेतु सम्यग् उद्योग अभी और इसी क्षण जरूरी है, अन्यथा केवल स्वप्निल कहानी का अर्थ ही क्या है ? एक-एक सीढ़ी आगे बढ़ने से ही तो मंजिल मिलेगी।

१३२ गलत कार्यों में किया गया उद्योग जीवन को बिगाड़ देता है।

१३३ सही दिशा में यदि सही उद्योग होगा तो अन्तिम विजय हमारी है।

उद्योगशील

१३४ जीवन के प्रभात में जो व्यक्ति उद्योगशील और जागृत रहेगा, वही अपने प्रभात को सुप्रभात बना सकेगा।

उद्वेग

१३५ उद्वेग की उपस्थिति में शांति सांस ही नही ले सकती।

उन्नति

१३६ जादू में नही, श्रम में विश्वास करना सीखे, श्रम को प्रतिष्ठा देना सीखे, उन्नति स्वतः आपका स्वागत करने को तैयार खडी मिलेगी।

१३७ जीवन की हर क्रिय में सतत जागरूकता और अनासक्ति—ये दो ऐसे गुण है, जो जीवन को उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा देते है।

१३८ ज्ञान के बिना उन्नति की केवल रट लगाई जा सकती है, पर वास्तविक उन्नति नहीं होती।

१३९ जनबल, धनबल एव तनबल से मानव की प्रगति नही हो सकती। मानव समाज की उन्नति होगी– सयम द्वारा, सत्य और अहिंसा द्वारा, अपरिग्रह और समता द्वारा।

१४० विवेक जागते ही उन्नति का द्वार स्वतः खुल जाता है।

१४१ उन्नति सरल है, कोई भी व्यक्ति उन्नति कर सकता है, पर ऊंची स्थिति में पहुंच कर उसे अन्त तक निभाना कठिन है ।

१४२ उन्नति और समृद्धि का मानदण्ड बड़े-बड़े भवन, मिलें, कारखाने या लम्बो-चौड़ी सड़कें नहीं होतीं, उसका मानक है-- नीति और संस्कृति से भरा लोक-जोवन।

१४३ मन के घात-प्रत्याघात उन्नति में बाधक हैं ।

१४४ स्वाभाविक गति से जीवन-उत्थान की राह पर आगे बढ़ते जाना ही सही माने में उन्नति है ।

१४५ उन्नति का मूल मंत्र है—उन्नत आचार और मधुर व्यवहार ।

१४६ उन्नति तो अन्त:करण में सोई पड़ी है, उसे जगाने की आवश्यकता है ।

१४७ दूसरों की उन्नति केवल बातों या स्कीमों से साकार व सफल नही होती; इसके लिए अपना जीवन झोंकना पड़ता है, सर्वस्व बलिदान करना पड़ता है, तब कही दूसरों का जीवन उन्नत बनता है ।

१४८ निराशा में उन्नति संभव नहीं ।

उन्मत्त

१४९ हाथी अपने बांधने के रस्से को झटके से तोड़ डालता है, उसी प्रकार उन्मत्त मानव सन्मति के रस्से को टुकड़े-टुकड़े कर डालता है ।

१५० निर्लक्ष्य गमन, भाषण, चिन्तन उन्मत्त के ही हो सकते हैं, विवेकशील के नही ।

१५१ मद्यपान से व्यक्ति उन्मत्त बनता है, पर मानसिक भ्रांति भी व्यक्ति को उन्मत्त बना देती है ।

उन्माद

१५२ उन्माद असंयम की उपज है। उसे मिटाये बिना विश्व का भला होने वाला नही है।

१५३ शांति का बाधक तत्त्व उन्माद या व्यामोह है।

१५४ सत्ता और वैभव का एकाधिकार उन्माद पैदा करता है। उस उन्माद की छाया में मनुष्य अपनी मनुष्यता को विस्मृत कर देता है।

१५५ उन्माद उसी को सूझता है, जिसके पास अधिक अवकाश हो।

१५६ एक राष्ट्र की प्रजा भाषा-भेद के कारण आपस में संदेहशील रहे, एक दूसरे को कुचलना या गिराना चाहे, यह भाषायी उन्माद है।

१५७ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करता है, उसके काम का अनुचित लाभ उठाना चाहता है, दूसरों को हीन समझ उन्हे तिरस्कृत करता है--यह वैयक्तिक उन्माद है।

१५८ एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को दबाये रखना चाहता है, हड़प जाना चाहता है, यह राष्ट्रीय उन्माद है।

१५९ नये प्रान्तों की रचना के प्रश्नों को लेकर परस्पर लड़ना, तुच्छ स्वार्थ के लिये देश के महान् हित में बाधक बनना, यह प्रादेशिक उन्माद है।

१६० सभ्य, सुसंस्कृत और शिक्षित लोग जाति और रंग की भेद-रेखाएं खीच, मनुष्यों को अपना शत्रु मान रहे है, यह जाति का उन्माद है।

उन्मादी

१६१ ठीक ही कहा है—"यदि कोई व्यक्ति ज्ञानी बनकर भी उन्मादी बन जाता है तो उसका चिकित्सक कौन हो सकता है ?"

१६२ उन्मादी मानव उचित-अनुचित का विचार किए विना केवल अपने 'मैं' को ही कायम रखना चाहता है।

उन्मुख

१६३ उन्मुख पथिक लक्ष्य से कितनी ही दूर क्यों न हो, यदि ठीक दिशा में चल रहा है तो लक्ष्य के समीप आएगा ही किन्तु विमुख मनुष्य लक्ष्य के कितने ही समीप चलना आरम्भ करे, वह तो दूर ही होता जाएगा।

उपकार

१६४ किसी के दुर्गुण को छुड़ा देना, हृदय बदल कर उसे बुराइयों से बचा देना ही सच्चा उपकार है।

१६५ माता, स्वामी और गुरु के उपकार से सहजतया उऋण होना संभव नहीं है।

१६६ एक जीव दूसरे के प्रति उपकार और सहानुभूति की भावना से भरा रहता है तो वह उसके हितों को विघटित नहीं कर सकता।

१६७ किसी को उपकृत करने के लिए साधक सेवा नही करता, वह उसकी अपनी साधना है। सामने वाला स्वयं अपने आपको उपकृत अनुभव करता है।

१६८ मां-पिता का पुत्र पर उपकार अपरम्पार है,
नि:स्व सेवक पर महर्धिक का अथक आभार है।
शिष्य-शिर पर सदा गुरु की अमित उपकृति भार है,
करो सेवा क्यों न कितनी, किंतु दुष्प्रतिकार है॥

उपकारी

१६९ जो संकट में सहायक बने, वही उपकारी है।

उपचार

१७० उपचार हम अन्यत्र चला सकते हैं पर धर्म के क्षेत्र में उपचार नही चल सकता।

१७१ बालक की सर्वप्रियता का सबसे बड़ा राज है—उपचारहीनता।

उपदेश

१७२ उपदेशरूप पानी को जीवनरूप पात्र में टिकाकर रखने के लिए उसे निश्छिद्र बनाना जरूरी है।

१७३ केवल उपदेश के अश्व की सवारी करके लक्ष्य को नही पाया जा सकता।

१७४ जब तक क्रियान्विति और आचरण की बात प्रायोगिक रूप नही लेती, तब तक किसी भी महापुरुष का उपदेश लोक-जीवन में प्रभावी नहीं हो सकेगा।

१७५ वह वास्तविक कथा या उपदेश नहीं, जहां उसके नाम पर दुकानदारी, स्वार्थपोषण और दम्भचर्या चलती हो।

१७६ नोपदेशो बहुः कार्यः, निर्देशालम्बनं सृजेत्।
उपदेशो मनः स्थूलं, प्रभावयति निश्चितम्॥

(उपदेश अधिक न करे किंतु सुझाव दे, क्योंकि उपदेश केवल स्थूल मन को प्रभावित करता है।)

१७७ जहां अपराधियों की बहुलता हो वही उपदेश की अधिक आवश्यकता होती है।

१७८ जो ज्ञाता-द्रष्टा बन जाता है, उसके लिए उपदेश की आवश्यकता नही रहती।

१७९ मधुरता से दिया गया उपदेश निश्चय ही अपना प्रभाव दिखाता है।

१८० जब तक परिवर्तन का दृष्टिकोण नहीं बनता, तब तक उपदेश अकिंचित्कर ही रहता है।

१८१ जो व्यक्ति जिस बात का आचरण नही करता, जिस पथ का अनुसरण नहीं करता, वह उस बात का उपदेश देने का अधिकारी भी नही हो सकता।

१८२ उपदेश सुनकर आनंद लेने वाले बहुत है पर जीवन मे उतारने वाले विरले है।

उपदेश-श्रवण

१८३ उपदेश के द्वारा यदि विरक्ति न बढ़े, चरित्र-शुद्धि की भावना जागृत न हो, तब फिर उसे सुनने का अर्थ ही क्या है?

उपदेष्टा

१८४ उपदेष्टा उपदेश दे सकता है, मार्ग बता सकता है, पर किसी को बलात् धार्मिक नही बना सकता।

१८५ शाब्दिक उपदेश तभी असरकारी होता है, जब वह उपदेष्टा के जीवन-व्यवहार एवं आचरण से स्नात होकर बाहर आता है। अन्यथा वह मात्र वाग् विलोड़न ही रहता है।

१८६ मूर्च्छित चेतना को जागरण का मंत्र देने के लिए उपदेष्टा की अपेक्षा रहती है।

उपभोग

१८७ वस्तुओं के उपभोग की सीमा या संयम नहीं हुआ तो उत्पादन कितना ही क्यों न बढ़ा लिया जाए, कमी बनी ही रहेगी।

उपयोग

१८८ जब भीतर अनंत शक्ति है तो उसका उपयोग करने में पीछे क्यों रहे ?

१८९ सूर्य का आतप जितना दिन में 'उपयोगी होता है, चन्द्र की शीतलता भी रात में उतनी ही उपयोगी होती है। इस संसार में अपने-अपने क्षेत्र मे सबका उपयोग है। व्यर्थ कोई नही है।

१९० मनुष्य को बुद्धि मिली, विवेक मिला, चिंतन मिला, हिताहित को समझने की क्षमता मिली पर खेद है कि मनुष्य इनका सम्यक् उपयोग नहीं कर रहा है।

१९१ जो बीत गया, उसका भार ढोने की जरूरत नही है। जो बचा हुआ है, उसका उपयोग करना है।

१९२ अच्छी से अच्छी वस्तु भी गलत उपयोग से मनुष्य के लिए अहितकारी सिद्ध हो सकती है।

१९३ मोटर के सब पार्ट्स उपयोगी हैं, उसी प्रकार समाज के लिए छोटे-बड़े हर व्यक्ति का उपयोग है।

उपयोगिता

१९४ किसी भी शक्ति का मुल्य उसके उपयोग के आधार पर होता है। उपयोगिता के अभाव में शक्ति का अक्षय भंडार भी अकिंचित्कर रहता है।

१९५ जो है, वह अस्तित्व का बोधक है। उपयोगिता का सम्बन्ध उसके प्रयोग से है।

१९६ यदि किसी व्यक्ति और उसके विचार में बदलाव नही होता है तो कालांतर में उसकी उपयोगिता के आगे प्रश्नचिह्न टंग जाता है।

उपलब्धि

१९७ किसी भी उपलब्धि के लिए दूसरों के भरोसे मत बैठो, स्वयं प्रयत्न करो, क्योंकि बिना श्रम की उपलब्धि महान् होते हुए भी अभिशाप बन जाती है।

१९८ शांति, संतुष्टि, पवित्रता और आनंद—जीवन की महान् उपलब्धियां हैं।

१९९ अभाव और अतिभाव के नियमन से अनैतिकता से नैतिकता की ओर अगर जरा भी बढ़ा जा सके तो वह बड़ी उपलब्धि होगी।

२०० अपने आप में रहना जीवन की बड़ी उपलब्धि है।

२०१ संसार की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि नाना प्रकार की मुसीबतों एवं बाधाओं को पार करने के बाद ही इंसान उपलब्धियों तक पहुंचता है।

२०२ संतों के द्वार पर जाकर भी खाली हाथ लौट आये, तो उपलब्धि का दूसरा रास्ता ही कौन-सा है ?

२०३ लाभ-अलाभ, सुख-दु ख, निंदा-प्रशंसा, मान-अपमान, जीवन-मरण, अनुकूलता-प्रतिकूलता—ये जितने द्वन्द्व है, उनमें सम रहने का अभ्यास जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है।

२०४ जिस व्यवस्था में हिंसा, अति-नियंत्रण, तनाव आदि को अवकाश नहीं मिलता तथा समता और समानता को पनपने का अवसर मिलता है, वह अपने आप में एक आध्यात्मिक उपलब्धि है।

२०५ जीवन की सबसे बडो उपलब्धि है—उदात्त-चरित्र।

२०६ आसक्ति और प्रदर्शन की भावना किसी भी महान् उपलब्धि में बाधक है।

उपवास

२०७ उपवाम देह-दमन नही है। चित्त और आत्मा का शरीर के साथ जो सहयोग है, वही उपवास है।

२०८ जिसकी पृष्ठभूमि में अध्यात्म की भावना रहती है, आत्म-शोधन या प्रायश्चित्त का मनोभाव होना है और संकल्पपूर्वक भोजन नही किया जाता, वह उपवास है।

२०९ उपवास शारीरिक सुख नहीं देता, किंतु उपवास में जो आत्मिक आनद आता है, वह आनन्द खाने में नही मिलता।

२१० उपवास का अर्थ भूखे मरना नहीं, अपितु आत्मा के सन्निकट रहना है।

२११ चित्तशुद्धि के विचार से शून्य, केवल दबाव से किया गया आहारत्याग उपवास नहीं हो सकता।

२१२ उपवास आत्मशक्ति का प्रतीक है।

२१३ जब तक उपवास मे रस नही आता, खान-पान से विरक्ति नहीं हो सकती।

२१४ उपवास आध्यात्मिक संपदा है, अहिंसात्मक प्रयोग है।

२१५ स्वाध्याय और जप के साथ किया जाने वाला उपवास अधिक उपयोगी है।

२१६ आध्यात्मिक अर्थ में उपवास का अर्थ केवल भोजन छोड़ना ही नही अपितु कषाय, विषय, शृंगार आदि का प्रत्याख्यान भी है।

२१७ जो साधक उपवास नही कर सकता या आहार-संयम नहीं कर सकता, वह ध्यान का अधिकारी भी नही हो सकता।

२१८ अन्न बचाने के लिए उपवास हो, यह अधूरापन है। उपवास जीवनशुद्धि के लिए हो, अन्न की बचत तो स्वत: हो जाती है।

उपवास और लंघन

२१९ लंघन और उपवास में बहुत बड़ा अंतर है। लंघन का संबंध मात्र भोजन-निवृत्ति से है, जबकि उपवास के साथ सब प्रकार की वासनाएं क्षीण हो जाती है।

उपशम

२२० जिस प्रकार बिना अनुपान के दवा काम नहीं करती, उसी प्रकार बिना उपशम के लम्बी-लम्बी साधना भी अधिक लाभ-दायक नहीं होती।

२२१ बाहरी मुसीबतों से सीधी टक्कर होती है, पर भीतरी मुसीबतें अप्रत्याशित रूप से आक्रमण करती है। उस आक्रमण को विफल करने के दो उपाय है—उपशम और क्षय।

उपशांत

२२२ उपशांत होने का फलित है—वैराग्य की तरंगों का अंत:करण में स्वत: तरंगित होना।

२२३ उपशांत व्यक्ति के जीवन में अशांति का कोई निमित्त नहीं मिलता।

उपसंपदा के सूत्र

२२४ मितभोजन, मितभाषिता, मैत्री का आधार।
प्रतिक्रिया से शून्य हो, क्रिया स्वयं निर्भार॥
सदा साधना में रहे, भावक्रिया उदार।
पांचों ही ये सूत्र है, सच्चे पहरेदार॥

उपहास

२२५ उपहास की भूमिका पर ही जो लड़खड़ा जाता है, वह समाप्त हो जाता है, कमजोर पड़ जाता है।

२२६ चोरी के पाप से बचने के लिए कोई दान देता है और उससे अपने अहं का पोषण करता हुआ सेवाभावी कहलाना चाहता है, क्या वह उपहास का पात्र नहीं बनता ?

उपादान

२२७ उपादान के रहते हुए साधारण निमित्त भी असाधारण बन जाता है।

२२८ जैसा उपादान होता है, वैसा ही व्यक्तित्व बनता है।

उपादेय

२२९ जागृत-प्रज्ञा वाले व्यक्ति जिस परम्परा या पद्धति को प्रतिष्ठित करते हैं, वह सहज ही सबके लिए उपादेय बन जाती है।

२३० अच्छी बात ग्राह्य है, चाहे वह नई हो या पुरानी। इसी प्रकार बुरी बात त्याज्य है, चाहे वह नई हो अथवा पुरानी।

२३१ अहिंसा और सत्य जैसे त्रैकालिक तत्त्व है, वैसे ही हिंसा और असत्य भी त्रैकालिक है। त्रैकालिक होने मात्र से कोई तत्त्व उपादेय नहीं हो सकता।

उपाधि

२३२ यदि जीवन नहीं बना, उसमें सद्वृत्ति और सद्गुण नहीं आए तो प्राप्त की हुई बहुत-सी उपाधियों से क्या होगा ?

२३३ बाह्य उपाधियां अस्थायी होती हैं, अंतर से जो उपाधि आविर्भूत होती है, उसे न कोई व्यक्ति मिटा सकता है और न समय की परतें ही उसे आच्छादित कर सकती हैं।

२३४ जितनी उपाधियां हैं, उतनी ही व्याधियां हैं।

उपाध्याय

२३५ द्वादशांगी के प्रवक्ता ज्ञान-गरिमा-पुंज है,
साधना के शान्त उपवन में सुरम्य निकुंज है।
सूत्र के स्वाध्याय में संलग्न रहते है सदा,
उपाध्याय महान् श्रुतधर धर्म-शासन सम्पदा ॥

२३६ है उपाध्याय अविकारी,
गणिपिटका रा भंडारी।

२३७ श्रुत, चिंता, शुभ-भावना, त्रिविध ज्ञान रो स्रोत।
णमो उवज्झायाण मम, संसाराम्बुधि पोत ॥

उपासक

२३८ व्यक्ति मंदिर मे जाए या नही, संतों के पास बैठे या नही, किंतु यदि आचरण पवित्र है, जीवन विशुद्ध है, तो वह सच्चा उपासक है।

२३९ मैने क्या किया, मुझे क्या करना है और वह क्या कार्य है जो मैं कर सकता हूं पर नही कर रहा हू—इस विशाल दृष्टि से जो देखता है, वही चक्षुष्मान् उपासक है।

२४० जब तक आत्मसामीप्य नहीं सधता, तब तक चाहे आप धर्मस्थान में सबसे आगे बैठ जाएं, आष सही अर्थ में उपासक नहीं कहला सकते।

२४१ संयम, नियमानुवर्तिता, सात्त्विकता, सद्भावना और मैत्री उपासक के सहज गुण हैं। यदि ये गुण नहीं आए तो उपासना केवल नाममात्र की उपासना है।

२४२ जो भगवान् के बताए हुए मार्ग पर चलता है, वही सच्चा उपासक है।

२४३ जो उपासक केवल दूसरों के बारे में सोचता है, वह दूसरों की उपासना करता है, अपनी नहीं।

२४४ धर्म की हत्या अधर्म से नहीं होती, किंतु उसकी हत्या उसके उन उपासकों से होती है, जो अपने सम्प्रदाय के हितों के लिए दूसरे सम्प्रदायों के हितों को कुचलने का यत्न करते है।

२४५ उपासना करने वाले का चित्त यदि वैराग्य से ओत:प्रोत नही है तो यह अपने आप मे एक छलावा है ।

उपासना

२४६ जो उपास्य है, वह भी प्रकाश-पुञ्ज है । जो उपासक है, वह भी प्रकाश-पुञ्ज है। दीये से दीया जल जाये, प्रकाश से प्रकाश जगमगा उठे—यही उपासना है ।

२४७ उपास्य कोई और हो, उपासक कोई और, उपास्य कहीं दूसरी जगह हो और उपासक कही दूसरी जगह, यह कैसी उपासना ? उपास्य और उपासक का द्वैत मिट जाए—यही है उपासना ।

२४८ जब वृत्ति, मन और इन्द्रियां अन्तश्चैतन्य में विलीन हो जाते हैं, तब उपासना पूर्ण होती है ।

२४९ उपासना करो या न करो परन्तु जीवन-व्यवहार में विकृति नही रहनी चाहिए अन्यथा लाख उपासना-विधियां किसी काम की नही ।

२५० जिसके रात और दिन बिना उपासना के बीतते है, वह श्वास तो लेता है किंतु जीता नही ।

२५१ उपासना स्वयं को कृतार्थ करने के लिए होनी चाहिए। इसका उद्देश्य यह न हो कि उससे दूसरे कृतार्थ हों ।

२५२ ऐसी उपासना की कोई कीमत नही, जो तत्काल शांति का अनुभव नही करा सकती ।

२५३ उपासना कोई परिधान नही है, जिसे सुबह-शाम आरती के समय पहन लिया जाए और फिर तह करके अलमारी में रख दिया जाए ।

२५४ उपासना का संबंध व्यक्ति की पवित्र और ऊंची मनोवृत्ति से है, न कि जाति और वर्ण से ।

२५५ उपासना तो स्वयं की साधना है, जो कही भी की जा सकती है ।

२५६ आचार और विचार से शून्य उपासना व्यक्ति को जड बना देती है।

२५७ जहां उपासना के नाम पर कोरे क्रियाकाण्ड चलते है हिंसा होती है, धोखा और स्वार्थ चलता है, वह उपासना भी जहर का काम करती है।

२५८ दिन भर पाप किया और शाम को मंदिर में जाकर उपासना की—पाप साफ हो गया। इन दिखावों ने उपासना का महत्त्व घटा दिया।

२५९ वही उपासना महत्त्वपूर्ण है, जो हमारी भावधारा को बदल दे।

२६० उपासना जीवन का वह सस्कार है, जिससे जीवन-शैली में परिष्कार होता है और सोच मे बदलाव आता है।

२६१ जीवन यदि वासना से भरा है तो उपासना कहां रहेगी ?

२६२ मात्र उपासना के धरातल पर टिका हुआ धर्म, जीवन को रूपान्तरण की स्थिति मे नही ला सकता।

२६३ उपासना के प्रतिकूल व्यवहार करने से व्यक्ति उपास्य और उपासना का महत्त्व कम कर देता है।

२६४ अपनी उपासना से किसी दूसरे को क्लेश होता है तो वह उपासना ही क्या ?

२६५ मंदिर में जाकर मनुष्य प्रह्लाद से भी अधिक भक्त बन जाए और दुकान, दफ्तर, घर या कार्यक्षेत्र में आकर हिरण्यकशिपु से भी अधिक निर्दय और नृशस बन जाए—क्या इसे भक्ति और उपासना कहा जाएगा ?

२६६ उपासना अदृश्य भी हो सकती है पर आपका आचार-व्यवहार सबको दीखता है।

२६७ मनुष्य उपासना-गृह में जाप इसलिए करता है कि उसके इष्ट कार्य मे बाधा न आये। किंतु परमात्मा की उपासना, पूजा और स्मृति करनी चाहिए, सौदा नही।

२६८ उपासना धर्म का अंग हो सकती है, किन्तु उपासना ही धर्म है—ऐसा मानना भूल है।

उपासना और चरित्र

२६९ चरित्र-शुद्धि के विना उपासना अपूर्ण है। सही वात तो यह है कि उपासना भी हो और चरित्र भी।

२७० उपासना की पद्धति में भेद हो सकता है, पर चरित्र का कहीं विभाजन नहीं होता।

उपास्य

२७१ आत्मा ही अपना उपास्य है।

उपेक्षा

२७२ अस्तित्व की उपेक्षा कर्तृत्व की उपेक्षा है।

२७३ वड़े छोटों की उपेक्षा, नही करते है कभी।
कार्य होता वही जिसमें, पूर्ण सहमत हों सभी।।

२७४ उपेक्षा सन्देह उत्पन्न करती है।

२७५ कोई आदमी कितना ही वड़ा क्यों न हो, वह अगर किसी की उपेक्षा करके चलता है, तो जीवन-यात्रा में सफल नही हो सकता।

२७६ दैनिक जीवन में सत्य, अहिंसा और सदाचार को भुला देने से बढ़कर वर्तमान की उपेक्षा और क्या हो सकती है?

२७७ जो छोटी-छोटी वातों की उपेक्षा करता है, वह आगे नही बढ़ सकता।

२७८ स्वास्थ्य की उपेक्षा जीवन की उपेक्षा है।

उपेक्षित

२७९ उपेक्षित व्यक्ति कितना ही सक्षम और प्रतिभा-सम्पन्न क्यों न हो, उसमें आत्मविश्वास की कमी हो ही जाती है।

उफान

२८० मानसिक दुर्बलता के रहते तात्कालिक उफान किसी को भी आ सकता है लेकिन वह उतना खतरनाक नही होता, जितनी कि भीतर सुलगती हुई आग।

उमंग

२८१ शक्ति होने पर भी उत्साह और उमंग के अभाव में उसका सही उपयोग नहीं होता।

२८२ लक्ष्य की सिद्धि के लिए जिसमें मृत्यु को वरण करने की उमंग हो, वह जीता है और उसकी निष्ठा भी जीती है।

उम्मीदवारी

२८३ जब तक सत्ता के लिए उम्मीदवारी की प्रथा समाप्त नही हो जाती, यशलोलुपता और पदलोलुपता का भूत संसार के सिर से नहीं उतरेगा।

उर्वरता

२८४ उर्वरा धरती पर पानी पड़ता है तो उसका उपयोग होता है। पत्थरों पर कितना ही पानी बरस जाए, वहां खेती नही हो सकती।

उलझन

२८५ तुम उलझनों के सामने अडिग रहोगे तो उलझनें भी सुलझनें बनकर प्रस्तुत हो जाएंगी।

२८६ जहां विधान की भावना न समझकर भाषा को पकड़ा जाता है, बाल की खाल उतारी जाती है, वहां उलझने खड़ी होती ही जाती है।

२८७ संघर्ष, विध्वंस या विप्लव के द्वारा समस्याओं को सुलझाने का जो उपक्रम है, वह वास्तविक सुलझाव नही बल्कि उलझाव है।

२८८ छोटी-छोटी बातों में उलझने वाला व्यक्ति आत्मा के स्वरूप को नही समझ सकता।

२८९ जिस व्यक्ति को उलझने में ही आनंद आता है, उसे कोई समाधान नही दे सकता।

२९० जो लोग शाश्वत सत्य और सामयिक सत्य का विवेक नहीं कर पाते, वे उलझ जाते है।

२९१ उलझन से मुक्त होने का सीधा रास्ता यही है कि व्यक्ति न स्वयं भ्रान्त हो, न भ्रान्ति फैलाए और न भ्रान्त-तथ्यों को किसी प्रकार का प्रोत्साहन दे।

उल्लास

२९२ जहां उल्लास अठखेलियां करे, वहां बुढ़ापा कैसे आए? वह युवा भी बूढ़ा होता है, जिसमें उल्लास नहीं होता।

२९३ कुछ-न-कुछ करते रहना ही जिन्दगी है। जिस दिन कर्म छूट गया, उस दिन जीने का उल्लास भी छूट गया।

२९४ साधना स्वयं उल्लास है।
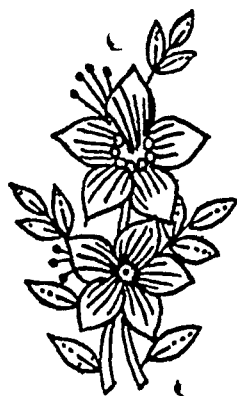
ऊंचापन

१ ऊंचेपन की कसौटी अर्थ नहीं, अपितु सत्य, प्रामाणिकता और चरित्रशीलता है।

ऊर्जा

२ ऊर्जा का संवर्धन हुए बिना साधना की अग्रिम भूमिकाओं पर आरोहण दुरूह हो जाता है।

ऊर्ध्वारोहण

३ कोई भी मनुष्य निषेधात्मक भावों की वैशाखी के सहारे ऊर्ध्वारोहण नहीं कर सकता।

४ मन स्वस्थ और प्रशस्त है तो चेतना का ऊर्ध्वारोहण सहज हो सकता है।

५ जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म उतर आता है, वह ऊर्ध्वारोहण की क्षमता पा लेता है।

६ बहिर्मुखता चेतना के ऊर्ध्वारोहण में सबसे बड़ी बाधा है।

७ साधना के द्वारा जो ऊर्ध्वारोहण होता है, वह आंतरिक भारहीनता में सहयोगी बनता है।
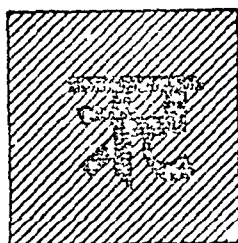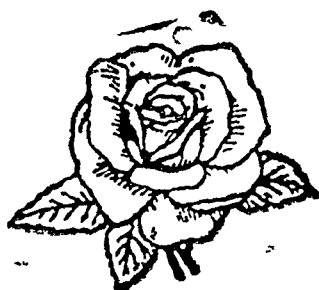
ऋजु

१ आत्मालोचन वही कर सकता है, जो ऋजु होता है। ऋजुता के अभाव में आत्मालोचन की बात वाग्विडम्बना मात्र बनकर रह जाती है।

२ ऋजुता-सम्पन्न व्यक्ति सहज शुद्ध होता है—निर्मल होता है।

३ ऋजु व्यक्ति धोखा खा तो सकता है, पर किसी को धोखा दे नहीं सकता।

ऋजुता

४ जीवन की सफलता का स्वर्णसूत्र है—ऋजुता।

५ दृष्टिकोण का मिथ्यात्व प्रमाणित होते ही उस विचार-शृंखला से स्वयं को सर्वथा मुक्त कर लेना ही सच्ची ऋजुता है।

६ बाहिर भीतर एक सरीखो, अपणो हृदय बणावो।
ऋजुता गुण में रमता 'तुलसी', जीवन ज्योति जगावो।।

७ धार्मिकता का प्रवेश आत्मा की ऋजुता मे है।

८ पवित्रता और शांति ऋजुता के बिना प्राप्त नही हो सकती।

९ ऋजुता के बिना सत्य को जानने, समझने और स्वीकार करने का मनोभाव निर्मित नहीं होता।

१० ऋजुता अपने आपको पहचानने की एक दृष्टि है।

११ ऋजुता के साथ प्राज्ञता हो तो व्यक्ति कही असफल नहीं होता।

१२ भूल होती है तो उसका परिष्कार भी होता है, पर वह होता है—ऋजुता का विकास होने से ।

१३ ऋजुता के दर्पण मे ही अच्छे और बुरे कर्मो का सही प्रतिबिंब पड़ सकता है ।

१४ जहां ऋजुता होती है, वहां साधना सहज फलित होती है ।

१५ ऋजुता के बिना विद्या फल नही लाती ।

१६ ऋजुता का परिपाक होने पर अतीत प्रत्यक्ष हो जाता है । उस समय हर मनुष्य देख सकता है कि मैंने क्या खोया है और क्या पाया है ?

ऋजुता-मृदुता

१७ ऋजुता और मृदुता के जल से अभिस्नात साधक शरीर और मन दोनों ओर से स्वच्छता और हल्कापन महसूस करता है ।

१८ भीतर कषाय की ज्वाला प्रज्वलित है, तब तक ऋजुता और मृदुता की फसल सुरक्षित नहीं रह सकती ।

ऋण

१९ व्यवहार में सबसे अधिक दबा हुआ वह है, जो ऋण लेता है ।

ऋणमुक्ति

२० मिट्टी के ढेले को जिसने श्रम से घडा बनाया ।
कुम्भकार का ऋण बोलो कैसे जा सके चुकाया ?

२१ ऋण-मुक्त सुगुरु की उपकृति से, होने का एकमात्र साधन,
जब नियतियोग से आत्मधर्म से हो जाए विचलित गुरुमन ।
देकर प्रतिबोध पुनः पावन संयम से सत्पथ पर लाए,
संस्थापित कर धार्मिकता में गुरु-ऋण से शिष्य मुक्ति पाए ।।

ऋतु

२२ रुत रुत री रचना नई, रोज बदलतो रूप ।
कब ही असुहाणी लगे, कभी सुहाणी धूप ॥

ऋषि

२३ ऋषि वह बनता है, जिसका अनुभव उद्‌घाटित हो जाता है, हृदय खुल जाता है तथा जो अन्तरात्मा को पहचान लेता है ।
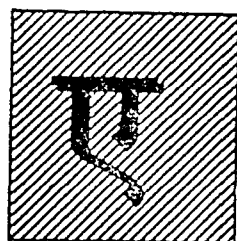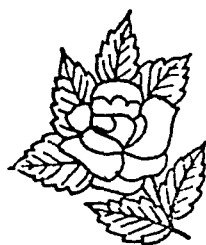
एक

१ यदि एक नहीं है, तो कि .नी ही बिंदियां क्यों न हों, कोई कीमत नही।

२ लक्ष्य एक हो, भले ही राह एक न हो।

एकतंत्र

३ एक का तंत्र इसलिए विकृत बना कि उसमें आत्मानुशासन नहीं रहा।

४ एकतत्र की सफलता तभी है, जबकि नेता निःस्वार्थ और मृदु हो।

५ सामूहिक हितों को कुचलने की दुश्चेष्टा एकतंत्र का अभिशाप है।

६ जहां एक ही व्यक्ति समग्र शासन-व्यवस्था का सूत्रधार होता है, वह एकतन्त्र कहलाता है। यह तानाशाही का तन्त्र है।

एकता

७ क्या हीनता और उच्चता की ऊबड़-खाबड़ भूमि पर एकता के रथ को ले जाया जा सकता है?

८ एकता का अर्थ यह नहीं कि हम पांचों अंगुलियों को एक कर हाथ की कार्यक्षमता को ही समाप्त कर दें अपितु उसका अर्थ है—पांचों अंगुलियां अलग-अलग रहती हुई भी परस्पर सापेक्ष रहें।

९ सत्य की अस्वीकृति एकता में विघटन कर देती है।

१० एकता का अर्थ है—भिन्न-भिन्न अस्तित्वों का स्वीकरण, सौहार्द और समन्वय का विकास।

११ एकता से अपनत्व का भाव पनपता है।

१२ जिन लोगों के मन में देश-प्रेम नहीं, उनसे एकता की आशा रखना व्यर्थ है।

१३ विभिन्न जाति, सम्प्रदाय, वर्ग एवं आकृतियों में विभक्त होने के बाद भी मनुष्य की दृष्टि से सभी एक है।

१४ संगठन, एकता और परस्पर सहयोग में जो शक्ति है, उसके द्वारा कोई भी काम असंभव नहीं।

१५ एकता का अर्थ है—अपने-अपने संप्रदायों के हित-संवर्धन के लिए अन्य संप्रदायों पर आक्षेप-प्रत्याक्षेप न करना, विवादास्पद विषयों को एक साथ बैठकर चिन्तनपूर्वक सुलझाना, परस्पर प्रमोद-भावना का विकास करना, एक-दूसरे के प्रति जमी हुई गलत धारणाओं का निराकरण करना।

१६ एकता की चेतना में ही सुख, शांति, प्रेम, समता और विश्व-बंधुत्व की भावना विकसित हो सकती है।

१७ देश, वेश, वय, वर्ण, जातियां, वर्ग, कार्य असमान।
पण मानव मनुजत्व अपेक्षा, सगला एक समान॥

१८ एकता अक्षुण्ण रखने के लिए प्राणों का बलिदान भी करना पड़े तो कम है।

१९ एकता की भूमिका है—सह-अस्तित्व, अविरोध, सद्भावना, सहिष्णुता और समन्वय।

२० देश की अखंडता और एकता के लिए आवश्यकता है कि सत्ता से अलिप्त कोई ऐसा पराक्रम जागे, जो राष्ट्र का मार्ग-दर्शन कर सके।

२१ जहां चारित्र की असमानता होगी, वहां एकता हो ही कैसे सकती है?

२२ श्रद्धा, निष्ठा और एकता से उलझी गुत्थियां भी सुलझ सकती हैं।

२३ बिना एकता के केवल संगठन खड़ा करना बालू की नींव पर मकान खड़ा करने जैसा है।

२४ वाद-विवाद के विस्फोटों में एकता के विकास की कल्पना भी कैसे की जा सकती है ?

२५ मैं एकता के लिए स्वभाव-परिवर्तन को अधिक महत्त्व देता हूं।

२६ अनेकता के दुष्परिणाम और एकता के सुपरिणाम जब संस्कारगत होते हैं, तभी एकता का विकास होता है और अनेकता का ध्वंस।

२७ कोई भी एकता—अनेकता से मुक्त नहीं हो सकती।

२८ जब तक भीतर से मन नही मिलते, तब तक एकता कैसे संभव हो सकती है ?

२९ किसी भी स्वार्थ, प्रलोभन या अहं के बिना सधने वाली एकता ही एकता है।

३० समन्वय का पाठ न सीख कर एकता के लिए केवल डीग हांकना निरर्थक है।

३१ एकता समाज-सुरक्षा का आधार है।

३२ एकता का महल त्याग की नींव पर खडा होता है।

३३ आचार और विचारों की एकता के विना संगठन स्थायी नही रह सकता।

३४ एकता पुरुषार्थ से होती है।

३५ हिंदुस्तान सम्प्रदाय-निरपेक्ष होकर अपनी एकता वनाए रख सकता है किंतु धर्महीन होकर अपनी एकता को सुरक्षित नही रख सकता।

३६ व्यवस्था की दृष्टि से राज्यों का एकीकरण संभव नहीं लगता पर भाषा के आधार पर राष्ट्र की एकता को तोड़ना बुद्धिमत्ता नही है।

३७ जिन तिनकों को एकत्रित करके झाड बनाकर हम कचरा निकालना चाहते हैं, वे तिनके जब स्वयं ही विखरकर अलग हो जाएंगे तो क्या कचरा नहीं यन जाएंगे ?

३८ भेद में अभेद को मूल्य देने की बात व्यावहारिक बनेगी, उसी दिन एकता की सम्यक् परिणति हो सकेगी।

३९ सुव्यवस्था का मूल है—एकता।

४० शाखाओं-प्रशाखाओं से वृक्ष का सौन्दर्य बढ़ता है, विस्तार बढ़ता है, क्षमता बढ़ती है। पर क्या मूलगत एकता के बिना यह संभव है? सौन्दर्य के लिए अनेकता का होना जरूरी है और दृढता के लिए एकता आवश्यक है।

एकत्व

४१ विचार, मार्ग और सिद्धान्त अनंत हैं, उनकी इतिश्री नहीं हो सकती। पर वैविध्य में एकत्व स्थापित हो सकता है।

४२ धर्म जब जीवन-व्यवहार में अवतरित होता है, तो विचारों में सहज एकत्व आने लगता है।

४३ वस्त्र के तंतुओं में जब तक एकत्व है, तभी तक अस्तित्व है। तार अलग-अलग हुए कि उलझकर स्वयं का अस्तित्व गंवा देते हैं।

४४ एकत्व के अभाव में शक्तिहीनता का अहसास होता है।

४५ एकत्व-बुद्धि के बिना अहिंसा की वास्तविक सीमा तक हम नही पहुंच सकते।

४६ एकत्व की शृंखला द्वैत में अद्वैत का अनुभव कराने वाली है।

४७ मैं समझता हूं कि सहयोग का मतलब ही एकत्व है। यदि एकत्व का अर्थ यह किया जाए कि आपस में मिलकर सब एक हो जाएं तो यह ठीक नहीं।

एकत्व-भावना

४८ रहणो अपणै आपमें भाई! ज्यूं जंगल रो कैर।
ना कोई स्यूं मित्रता है, ना कोई स्यूं वैर॥

४९ 'मेरा कोई नहीं और मैं किसी का नहीं'—यह एकत्व-चिंतन भय-मुक्ति का मंत्र है।

५० 'बीमारी, बुढापा या मृत्यु से त्राण देने वाला दूसरा कोई नही है। मैं ही अपना त्राण और शरण हूं'—यह भाव जब तक जागृत नही होगा, बदलाव का पथ प्रशस्त नहीं होगा।

५१ जिस व्यक्ति का जब तक जिससे स्वार्थ सधता है, तब तक वह उसका आत्मीय है। स्वार्थ का विघटन होते ही अपना भी पराया हो जाता है। इसलिए किसी को अपना मानना एक भ्रान्ति है।

५२ मनुष्य यह सोचकर प्रसन्न होता है कि मैं सबका हूं, पर क्या वह कभी यह भी सोचता है कि संसार में मेरा कौन है?

५३ खाली हाथां आयो है तू, जासी खाली हाथां।
लारै रहसी इण दुनिया में, जस अपजस री बातां॥

५४ विषय-वासना सर्व सुलभ है,
दर्शन, ज्ञान, चरण दुर्लभ है।
मरणो निश्चित ही जब-तब है,
कुण किण नै जग में वल्लभ है?

एकरूपता

५५ विविधता के बिना केवल एकरूपता पुराने व्यञ्जन की तरह बेस्वाद और पुराने वस्त्र की भांति बेआब होती है।

५६ कथनी और करनी की एकरूपता ही वह मार्ग है, जिससे आत्मा परमात्मा और नर नारायण बनता है।

५७ मन, वाणी और कर्म की एकरूपता में हर व्यक्ति स्वस्थ और जागरूक जीवन जी सकता है।

५८ एकरूपता बाध्यता की स्थिति में असंभव है, विचार-भिन्नता इसे निष्पन्न नहीं कर सकती।

एकसूत्रता

५९ एकसूत्रता में चलने वाला संगठन संस्कृति और परम्परा को विरासत में पाता है और अपनी भावी पीढ़ी मे भी उसे संक्रान्त कर देता है।

६० एकसूत्रता का मूल बीज आस्था है।

६१ जिस परिवार, समाज या राष्ट्र में एकसूत्रता नही होती, उसकी सांस्कृतिक चेतना धूमिल हो जाती है और परम्परा विस्मृत हो जाती है।

६२ बिखरी हुई शक्तियां जब एकसूत्रता में बंधती हैं, तभी प्रगति के नए आयाम उद्घाटित होते हैं।

एकांगी चिंतन

६३ कभी विकास, कभी ह्रास, कभी सम्मान, कभी अपमान—इन स्थितियों में एक ही दृष्टि से चिंतन करने वाला व्यक्ति टूट जाता है, मस्तिष्क तनावों से भरा रहता है और वह स्वस्थ जीवन नहीं जी सकता।

६४ एकांगी चिंतन सदा अधूरा होता है, फिर चाहे उसके द्वारा किसी वस्तु का समर्थन करें या खण्डन।

एकाकी

६५ जो बाहरी दुनिया की चमक-दमक से अप्रभावित रहता है, वही एकाकी हो सकता है।

६६ मूल सकल संघर्ष रो है, द्वैत-भाव अवलोय।
'नमि ज्यूं एकाकी भलो' कोई दोय मिल्यां दुख होय।।

६७ एकाकीपन आनन्द भरा।
रहता है आत्मोद्यान हरा।।

एकाग्र चिंतन

६८ एकाग्र चिंतन अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। जिस प्रकार चूहे और कबूतर के लिए बिल्ली का एकाग्र चिंतन, भूख मिटाने के लिए चीते का एकाग्र चिंतन और शिकार के लिए शिकारी का एकाग्र चिंतन बुरा है, उसी प्रकार आत्मविकास और जीवन-शुद्धि के लिए—बिना किसी कामना और आसक्ति के—जो एकाग्र-चिंतन किया जाता है, वह मंगलमय है।

एकाग्रता

६९ एक प्रवाह में जो शक्ति होती है, वह विभक्त प्रवाहों में नहीं हो सकती। सूर्य की बिखरी रश्मियों में वह शक्ति नहीं होती, जो केन्द्रित किरणों में होती है।

७० चित्त की एकाग्रता वही साध सकता है, जिसके मन, वचन और काया समाहित होते हैं।

७१ मानसिक एकाग्रता जब एक सीमा तक सध जाती है, तब ध्यान में प्रवेश करने में विशेष कठिनाई नही होती।

७२ एकाग्रता से शक्ति पैदा होती है। उस शक्ति के सहारे मनुष्य बड़े से बड़ा वैज्ञानिक, डाक्टर और इंजीनियर भी बन सकता है और महान् आत्मज्ञानी भी।

७३ एक व्यक्ति एक साथ दो दिशाओं में चलना चाहे, इससे बड़ी भूल और क्या हो सकती है?

७४ लोकरंजन के लिए जितनी एकाग्रता होती है, उतनी अध्यात्म के प्रति हो तो आत्मविकास का स्रोत फूट पड़ता है।

७५ एकाग्रता मानसिक पवित्रता पर निर्भर है।

७६ एकाग्रता से ग्रहण की हुई बातें भूली नही जाती। उनके संस्कार अमिट होते है।

७७ चित्त की निर्मलता या प्रसन्नता के साथ जो एकाग्रता आती है, वही व्यक्ति को उसकी मंजिल तक पहुंचाती है।

७८ एकाग्रता के बिना स्वभाव-परिवर्तन नही सधता।

७९ जो एकाग्रता चैतन्य या अपने अस्तित्व के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करती है, वही एकाग्रता साधना की दृष्टि से बहुमूल्य है।

८० एकाग्रता की शक्ति उपलब्ध होने पर ही इच्छा-शक्ति संकल्प-शक्ति में बदल सकती है।

८१ मन को एक केन्द्र पर केन्द्रित करने पर जो तोष मिलता है, वह करोड़ों उपलब्धियों में भी नहीं मिल सकता।

एकात्मकता

८२ जहां कला, कलाकार और कला-उपासक में एकात्मकता नही होती, वहां 'कला' कला नही रहती और 'कलाकार' कलाकार नही रहता।

८३ सोचने और करने मे जब तक एकात्मकता नहीं होती, तब तक न आत्मसाक्षात्कार हो सकता है और न ही कोई दूसरा काम सिद्ध हो सकता है।

एकान्त

८४ जो आदमी सदा लोगों के बीच रहा, जिसने कभी एकान्त का अनुभव नही किया, वह नही समझ सकता कि एकान्त का क्या आनंद होता है ?

८५ जब तक मन में एकान्त नही होता, व्यक्ति जंगल में जाकर भी भीड़ से घिरा रहता है।

एकान्तदृष्टि

८६ जो व्यक्ति किसी भी घटना को एक ही कोण से देखता है; वह कभी सत्य के निकट नहीं पहुंच सकता।

८७ एकान्त की ओर झुकने वाली दृष्टि हिंसक बन जाती है।

८८ जहां भी एकान्तदृष्टि है, वहां झगड़ा है, द्वेष है, कलह है, चिनगारियां है।

८९ एक ही दृष्टि से किसी वस्तु या व्यक्ति का मूल्यांकन नही हो सकता।

एकान्तवास

९० विचारो की भीड़ से मुक्त होना ही एकान्तवास है।
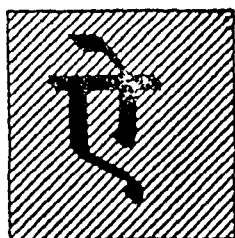
ऐकान्तिक आग्रह

१ मनुष्य के विचारों में कभी-कभी कोई ऐसा ऐकान्तिक आग्रह पनपता है, जो भयंकर विग्रह को जन्म दे देता है।

२ परिवर्तन होना ही चाहिए अथवा नही ही होना चाहिए—ऐसे एकांगी आग्रह में किसी प्रकार के लाभ की सम्भावना नहीं है।

३ ऐकान्तिक आग्रह किसी भी बात का हो, वह निराशा को जन्म देता है।

४ जब मेरा मन ऐकान्तिक आग्रह से भरा होता है, तब धर्म केवल मेरा अपना बन जाता है, सत्य से विच्छिन्न हो जाता है, कट जाता है।

५ अमुक भाषा ही बोली जाए अथवा अमुक भाषा बोली ही न जाए, ऐसा ऐकान्तिक आग्रह निरपेक्षता की स्थिति में ही जन्म लेता है।

६ जहां कही भी भय या द्वैध बढ़ता है, उसका कारण ऐकान्तिक आग्रह ही है।

७ एक ही रास्ते पर सबको चलने के लिए मजबूर करना, चाहे वह कितने ही खूबसूरत तरीकों से किया जाए—अशांति पैदा करता है।

८ सत्य को ऐकान्तिक आग्रह में कैद कर दे तो वह सत्य नहीं रहेगा।

ऐश्वर्य

९ कोठी, कार, टी. वी., वीडिओ, रेडियो आदि उपकरण व्यक्ति के ऐश्वर्य को प्रदर्शित कर सकते है, पर भीतरी खोखलेपन को नही भर सकते ।

१० ऐश्वर्यशाली लोग गरीबों को सदा तुच्छ दृष्टि से देखते हैं, यह ऐश्वर्य का मद है और हिंसा को उभारने वाली हिंसा है ।

११ ऐश्वर्य का प्रदर्शन नशा ही है, जो व्यक्ति को प्रायः बहका देता है ।
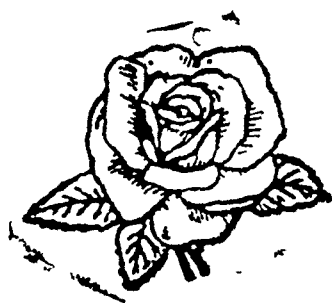
ओज

१ भीतर का ओज बाहर तभी प्रकट होता है, जब साधना का गहरा अभ्यास हो।

ओजस्विता

२ असंतुलित वातावरण में भी जो अपने आपको संतुलित रख सकता है, वही सही माने में अपनी ओजस्विता को कायम रख सकता है।

ओजस्वी

३ ओजस्वी व्यक्ति की वाणी ही मानवता को एक धागे में पिरो सकती है।

ओम्

४ ओंकार पंच-परमेष्ठी का प्रतीक है।

५ साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए, आध्यात्मिक यात्रा को निर्बाध करने के लिए, तथा अन्तर्जगत् में प्रवेश करने के लिए ओम् का जप अच्छा उपक्रम है।

६ ओंकार का जप स्थूल से सूक्ष्म तथा व्यक्त से अव्यक्त जगत् में जाने का प्रयत्न है।
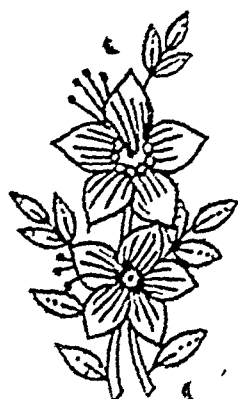
औकात

१ आकस्मिक जो कान में, आए नूतन बात।
करें नही चर्चा कही, परखें निज औकात ॥

औचित्य

२ दूध लेते समय व्यक्ति अच्छे-बुरे का ध्यान करे—इसमें तो औचित्य है, पर गाय का रंग पूछे—यह कुछ विचित्र-सा है।

३ प्रत्येक दर्शन का अधिकारी अपना-अपना दृष्टिकोण प्रकाश में लाये—वह मर्यादा से परे नही है। किंतु दूसरों का दृष्टिकोण समझे बिना या आग्रह के कारण उसे विकृत बना कर प्रकाश में लाये, यह औचित्य की परिधि से परे है।

४ आवश्यक परिवर्तन नहीं होने से जीवन मे रूढ़ता आती है। इस दृष्टि से मैं बदलाव को उचित मानता हूं। पर इसमें औचित्य का अतिक्रमण हो जाए तो खतरे भी कम नहीं हैं।

५ व्यक्ति में जो विशेषता है, उसकी अभिव्यक्ति की जा सकती है, पर जो नहीं है, उसका प्रदर्शन औचित्य की सीमा में नहीं है।

६ अगर आपकी आत्मा यह साक्षी देती है कि आप जो कार्य कर रहे हैं उसमे औचित्य है, वह दूसरे को ऊपर उठाने वाला है और स्वयं की आत्मा का कल्याण करने वाला है, तब उससे मुख नहीं मोड़ना चाहिए।

७ मैं यह मानकर चलता हूं—संघर्ष हो या समझौता, उसमें औचित्य का लंघन नही होना चाहिए।

८ यदि मांग में औचित्य है तो उसे स्वीकार करने में कोई वाधा नहीं होनी चाहिए, अन्यथा हिंसा के सामने झुकना सिद्धान्त की हत्या करना है।

९ अनुचित कार्य में सहारा देना औचित्य की परिधि से वाहर है।

१० जहां केवल विरोध के लिए विरोध और समर्थन के लिए समर्थन होता हो, वहां औचित्य का अतिक्रमण हो जाता है।

११ मेरी दृष्टि में जितना महत्त्व औचित्य का है, उतना किसी को संतुष्ट करने का नहीं है।

१२ अच्छाइयों को अपनाते समय आदमी संकोच करे, इसमे कहां तक औचित्य है ?

औदारिक काय

१३ 'तुलसी' कामधेनु वांछितप्रद, आ औदारिक काय।
चेत चतुर ! मत चिंतामणि स्यूं, अव तू काग उड़ाय।।

औपचारिकता

१४ औपचारिक चाह व्यक्ति को किसी भी दलदल या समस्या से नहीं निकाल सकती।

१५ क्षमा मांगना और देना दोनों हृदय से सम्वन्धित है, इसमें औपचारिकता नहीं चल सकती।

१६ औपचारिकता में कृत्रिमता होती है। कृत्रिम वस्तु भीतर को नहीं, वाहर को छूती है।

औपचारिक विनय

१७ वातचीत का काम जव, पड़े सुगुरु के साथ।
उचित शब्द बोलो मुने ! जोड़ो दोनों हाथ।।

औरत

१८ औरत के फंदे में फंसकर कौन व्यक्ति अपने काम पूरे कर पाया है ?
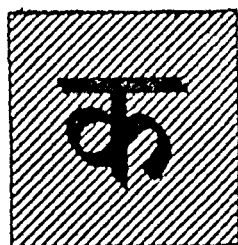
कटु

१ सामने कटु होने की अपेक्षा जो पीछे कटु होता है, वह खतरनाक होता है।

कटुता

२ जहां सम्बन्ध होता है, वहां कटुता भी हो सकती है। कटुता का अंत क्षमा में है।

३ कटुता फैलाना आसान है, किंतु उसका निवारण करना कठिन है।

४ विचार थोपने का प्रयत्न करने से कटुता आ जाती है।

५ जहां ज्ञान के लिए विवेचन चलता है, वहां कटुता आए ही क्यों ? यदि कटुता आती है तो वहां ज्ञान नहीं है।

कटुवचन

६ अंधे को अन्धा कहना असत्य नही, पर कटुवचन अवश्य है।

७ प्रेम परस्पर दर पीढ्यां रो, शिष्टाचार सदा रो।
खिण भर में तिणखै ज्यूं तोड़ै, बोल वचन मुख खारो ॥

८ विचार-भेद कही भी हो सकता है। पर विचार-भेद को लेकर किसी पर कटु शब्दों से प्रहार करना मेरी दृष्टि में कदापि उचित नही। मैं इसमें एक प्रकार की हिसा का दर्शन करता हूं।

९ दो महीने की तपस्या करना सरल है. पर किसी के दो कटु वचन सहना कठिन है ।

कटु सत्य

१० कटु सत्य कह देना सुगम है, पर कटु सत्य सुनना और सहनशील बने रहना बहुत कठिन है । वास्तव में कहने का अधिकार उन्हें ही है जो सुनने के आदी है ।

कट्टरता

११ कट्टरता का भाव जहां होता है, वहां तत्त्व-जिज्ञासा नही होती, ग्रहणशीलता नहीं होती ।

कठिन

१२ चार बातें बहुत कठिन होती हैं :—जिसके पास धन बहुत कम है, वह दान दे, जो सक्षम हो, क्षमा करे, सुखोचित सामग्री होने पर इच्छाओं का निरोध करे तथा तारुण्य में भी इंद्रियनिग्रह करे ।

१३ प्रतिकूल विचारों के प्रति उत्तेजित नही होना जितना कठिन है, अनुकूलता में अहं नहीं करना भी उतना ही कठिन है ।

१४ कांटों पर चलने वाला ही फूलों का सौकुमार्य और सौरभ पा सकता है ।

कठिनाई

१५ कठिनाइयों के तीन मूल स्रोत है—
१. आसक्ति २. परिग्रह ३. एकान्तवाद ।

१६ जब तक अच्छे-बुरे की पहचान नही होती, तब तक कठिनाई का अंत नही होता ।

१७ कठिनाई वहां उपस्थित [illegible] है, जहां सुख को आचार के साथ अनुबंधित किया [illegible]

१८ जीवन में कठिनाई व[illegible] जहां स्वयं की वृत्तियों और इंद्रियों पर [illegible] ।

१९ यदि जीवन पुराने ढांचे में ही चलता रहा तो बहुत कठिनाइयां है और यदि जीवन बदल दिया गया तो कठिनाइयां रहने वाली नही हैं। कठिनाइयों पर विजय पाना है तो जीवन को बदलना ही होगा।

२० कठिनाई हर क्षेत्र मे आती है पर उस कठिनाई को पार करने के वाद जो आनंद और आत्मतोष मिलता है, वह उस कठिनाई से सौ गुना अधिक होता है।

२१ संकल्प की दृढ़ता और लगन—ये दो ऐसे तत्त्व हैं, जो हर कठिनाई को सुगम बना देते हैं।

२२ जागरण की नव वेला में जो कठिनाइयां आती हैं, वे विकास के लिए आती हैं।

२३ पर्वतों पर उगने वाले वृक्ष अपनी जड़े मुश्किल से जमा पाते हैं पर जमने के वाद वे जड़ें इतनी सशक्त हो जाती हैं कि कोई तूफान उन्हें हिला नहीं सकता।

२४ शांति और आनंद की प्रवलता में कठिनाइयां क्षीण होने लगती हैं।

२५ मेरे अभिमत में कठिनाइयां जीवन को चमकाने वाली हैं, फिर चाहे वे प्राकृतिक हों या मानसिक।

२६ जिस व्यक्ति में अखण्ड जीवट और अविचल चित्त होता है, वह हजारों कठिनाइयों के उपस्थित होने पर भी स्वीकृत पथ का त्याग नही करता।

२७ कठिनाइयों से घवराकर भागना परोक्षरूप से कठिनाइयों को अपने ऊपर हावी होने में सहयोग देना है।

२८ कोई भी महान् उपलब्धि विना कठिनाई के नहीं हुई।

२९ सही लक्ष्य को पाने में कितनी ही कठिनाई क्यों न आयें, सहन करना ही श्रेयस्कर है।

३० कठिनाइयां शाश्वत नहीं होती, साहस के आगे वे दम तोड़ देती है।

कठोरता

३१ कठोरता व्यक्तित्व को तोड़ती है।

३२ जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म का स्पर्श हो जाता है, वह किसी के प्रति कठोर व्यवहार नहीं कर सकता।

३३ साधना कठोरता मांगती है। यदि कठोरता नहीं है तो मानना चाहिए कि वह साधना भी ढीली है।

कड़वाहट

३४ मूल में यदि कड़वाहट है तो फूलों, पत्तों व फलों के मधुर होने की क्या आशा की जा सकती है?

३५ जो व्यक्ति सही चिन्तन कर शांत रह जाता है, वह पारस्परिक सम्बन्धों के बीच घुलनेवाली संभावित कड़वाहट को आसानी से टाल सकता है।

कत्ल

३६ यदि कत्ले-आम करना चाहते हो तो आत्मा के उन घोर अपराजित शत्रुओं का करो, जिनसे तुम बुरी तरह जकड़े हुए हो, जो तुम्हारा पतन करने के लिए तुम्हारी ही नंगी तलवारें लिए हुए खड़े हैं।

कथनी : करनी

३७ रहे सदा अनुरूप कार्य के, जीवन का व्यवहार।
'जहा वाई तहा कारी' का आदर्श बने साकार॥

३८ कथनी और करनी में एकरूपता होना सबसे बड़ा सत्य है।

३९ कहना सरल, पर करना बहुत कठिन है।

४० मानव कहता बहुत है पर करता बहुत कम है। वह दूसरों को सिखाने तथा सुनाने के लिए जितना उत्सुक रहता है, उतना सीखने और सुनने के लिए नहीं।

४१ कथनी और करनी मे एकरूपता की स्थिति रहे तो मानव-जाति को संत्रस्त करने वाला कोई प्रयोग हो ही नहीं सकता।

४२ कितना और क्या कहा जाता है, यह महत्त्वपूर्ण नहीं, महत्त्वपूर्ण यह है कि उसे जीवन में कितना चरितार्थ करते है ?

कदाग्रह

४३ छोटी-छोटी बात में, कर लेवै खींचाताण ।
रूप कदाग्रह रो रचै, ए झगड़ै रा अहलाण ।।

४४ गलती को गलती न मानने से ही प्रायः कदाग्रह का जन्म होता है ।

कन्या

४५ कन्याओं का भविष्य शादी नहीं, शिक्षा है ।

४६ कन्याएं समाज की शक्ति हैं ।

कपट

४७ कर-कर कपट कितो धन संचो, साथ चलै ना पाई ।
आ ही सब दुविधा री जड़ है, स्याणा मन समझाई ।।

४८ झूठी स्याणप कपट कुटिलता, झूठो जोश जगावै ।
कारण बिना न कारज निपजै, ज्ञानी गुरु फरमावै ।।

४९ कपट को पूर्ण रूप से जीत लेना ज्ञान का मार्ग है ।

५० थोडै जीणै रै खातिर, क्यूं करै अणूंता काम तू ।
सरल बना, तन, मन, वाणी नै, जो चावै आराम तू ।।
'तुलसी' परभव में नहीं पोपाबाई रो इंसाफ है ।
कपटाई कर झूठ बोलणो, जग में मोटो पाप है ।।

कमजोर

५१ जो व्यक्ति मानसिक दृष्टि से कमजोर होता है, वह कठिन परिस्थिति को झेलने में अपने आपको अक्षम पाता है ।

५२ कमजोर हाथ किसी भी स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर सकते ।

५३ जो तकलीफ से घबराता है, वह कायर है, कमजोर है ।

५४ कमजोर व्यक्ति जरा-सा सौंदर्य-भरा दृश्य देखते ही चक्षु-कुशील बन जाता है।

५५ कमजोर दिल वाला व्यक्ति कभी अहिंसक नहीं बन सकता।

५६ अथाह पानी को रोके हुए विशाल बांध हजारों लाखों एकड़ बंजर भूमि को सरसब्ज बना देता है। लेकिन उस विशाल बांध की नीव में यदि एक पत्थर भी कमजोर होता है तो वह अकल्पनीय विनाश का कारण भी बन जाता है।

कमजोरी

५७ असमर्थता या मजबूरी के कारण प्रतिकूल परिस्थितियों में क्षमा रखना, शांत रहना, हिंसा न करना वास्तव मे क्षमा, शांति या अहिसा नही है। कड़े शब्दों में कहूं तो यह भयंकर कायरता और कमजोरी है।

५८ परिस्थिति पतन का कारण बन सकती है, पर मुख्य कारण है—अपनी कमजोरी।

५९ ठोकर न लगे—इसका ध्यान रखना आवश्यक है पर चलना बंद करना कमजोरी है।

६० यदि कमजोरी मिट जाए तो आप विरोधी के साथ भी लड़ने की बात नही सोच सकते, क्योंकि विरोध का प्रतिकार कमजोरी का लक्षण है।

६१ अपनी कमजोरियों को दूर करने के लिए दूसरों को भला-बुरा कहने की अपेक्षा स्वयं रचनात्मक कार्यों में जुट जाना चाहिए।

६२ आगे चरण बढ़ाकर पाछो, मुडणो है कमजोरी।
हो तटस्थ कोई करै टिप्पणी, आ नहिं सीनाजोरी॥

६३ यह कहना कमजोरी का द्योतक है कि धर्म और व्यापार साथ-साथ नही चल सकते।

६४ प्रशंसा सुनकर खुश होना और विरोध में नाराज होना कमजोरी है।

६५ मनुष्य समर्थ है, वह अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की अवहेलना या उपेक्षा करता है। उसको अपनी कमजोरी और हिंसा न मानना दुहरी भूल है।

६६ दूसरों का मुंह ताकना ही सबसे बड़ी कमजोरी है।

६७ मानव को सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि वह अपनी वास्तविक शक्ति से अपरिचित है।

६८ प्रत्येक मनुष्य में कुछ न कुछ कमजोरी होती है, जब तक कि वह सर्वशक्तिमान् परमात्मा नहीं बन जाता।

६९ अन्याय और अनुचित आग्रह के सामने झुक जाना कमजोरी का चिह्न है।

७० विचार-भेद को लेकर यदि हम असहिष्णु और असहनशील बन गये तो वह हमारी कमजोरी और कायरता होगी।

७१ किसी की गलती पर हंसना अपनी कमजोरी का द्योतक है।

७२ कठिनाइयों और बाधाओं को देख अपना धैर्य छोड़ सत्पथ से विचलित हो जाना कमजोरी की निशानी है।

कमाई

७३ खरी कमाई का एक रुपया भी कई लाख के बराबर है।

कमी

७४ जब तक हम अपनी कमियों को नहीं देखेंगे, प्रगति नहीं कर सकेंगे, आगे नहीं बढ़ सकेंगे।

कम्प्यूटर

७५ कम्प्यूटर भले ही कितना ही शक्तिशाली बन जाए, पर अपने संचालन में उसे मनुष्य का सहारा लेना ही पड़ेगा।

७६ कम्प्यूटर चाहे कितना ही सोचे-विचारे, पर वह चेतना का स्थान नहीं ले सकता।

७७ कम्प्यूटर आदमी को हिंसा सिखा सकता है, अलगाव सिखा सकता है पर अहिंसा और मैत्री की भावना संप्रेषित करने की उसमें क्षमता नहीं है।

करुणा

७८ मानव-मन में करुणा का स्रोत सूख जाए—यह सबसे बड़ा दुर्भिक्ष है।

७९ बढ़े प्रबल पुरुषार्थ सभी मे, अभिनव आस्था जागे।
जोड़े सबके अंतरमानस को करुणा के धागे॥

८० मनुष्य के अन्तःकरण में जब तक करुणा का स्रोत प्रवाहित रहता है, वह अध्यात्म से प्रतिकूल नहीं जा सकता।

८१ आंखें गीली होना आदि-आदि तो छोटी बाते है। वास्तविक बात है—हृदय का गीला होना।

८२ आंतरिक अहिंसा की अभिव्यक्ति करुणा में होती है।

८३ जिस व्यक्ति के हृदय में करुणा का स्रोत फूट पड़ता है, वह किसी के प्रति क्रूर नहीं बन सकता, किसी का अहित नहीं सोच सकता और असद् आचरण भी नही कर सकता।

८४ करुणा का जागरण होते ही अनैतिकता निर्मूल हो जाती है।

८५ जैसे अन्न के बिना पानी और पानी के बिना अन्न हमारी सुरक्षा नहीं कर सकता, वैसे ही धर्म के बिना करुणा और करुणा के बिना धर्म का अस्तित्व नही रह सकता।

करुणाशील

८६ जो व्यक्ति छोटे और बड़े, अनुकूल और प्रतिकूल, हर प्राणी के प्रति समत्व-बुद्धि का विकास करता है, वही करुणाशील हो सकता है।

करोड़पति

८७ करोड़ों की पूंजी, अनेकों नौकर होते हुए भी धनिकों को न खाने का आनन्द है और न सोने का।

८८ करोड़पति भी यदि लालची है, तो वह पूंजीपति नहीं है।

कर्त्तव्य

८९ जिसका परिणाम सुंदर हो, वही कर्त्तव्य है।

९० कौन, कहां से आए हैं हम, पहले करो विचार ?
क्या कर्त्तव्य और है कैसा, जीवन का व्यवहार ?

९१ कर्त्तव्य में पवित्रता अपने आप आ जाती है।

९२ जो मनुष्य 'मनुष्य' बनना चाहता है, वह अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा नही कर सकता।

९३ भावना से भी कर्त्तव्य बड़ा होता है।

९४ शांत और अनुत्तेजित दिमाग ही कर्त्तव्य का निर्धारण कर सकता है।

९५ अपने राष्ट्र के प्रति वफादारी न निभाना अपने कर्त्तव्य से च्युत होना है।

९६ कर्त्तव्य की विस्मृति होने पर व्यक्ति अपने करणीय के प्रति लापरवाह बन जाता है।

९७ हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी संस्कृति की सुरक्षा अपने कार्यों और व्यवहारों से करे।

९८ जो व्यक्ति सत्ता के लिए, प्रतिष्ठा के लिए, अथवा अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति के लिए, अन्धी दौड़ में सम्मिलित होता है, वह कर्त्तव्य की सीमाओं की रक्षा कैसे करेगा ?

९९ दायित्व की अपेक्षा कर्त्तव्य का अधिक महत्त्व है। दायित्व न चाहने पर भी निभाना होता है, किंतु कर्त्तव्य का पालन निष्ठा से ही हो सकता है।

कर्त्तव्यनिष्ठ

१०० समूह-चेतना का जागरण कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिक ही कर सकते हैं।

१०१ कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति विपत्ति आने पर भी अपने कर्त्तव्य को नही भूलते।

१०२ अधिकार के साथ स्वार्थलिप्सा, सुविधावाद तथा प्रतिष्ठा की भावना जुड़ी रहती है, जबकि कर्त्तव्य-बुद्धि से काम करने वाला इन सब बातों से बहुत दूर रहता है।

१०३ कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति के सामने अपने और पराए की भेदरेखा नही होती।

१०४ कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति की चार कसौटियां है—अनुशासन, विवेक, प्रेम और जागरूकता।

१०५ कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति कभी किसी के साथ वञ्चनापूर्ण व्यवहार नहीं कर सकता।

१०६ जिस व्यक्ति की कर्त्तव्यपालन में निष्ठा है, वह प्रमाद, अन्याय और मुफ्तखोरी जैसा कोई काम नहीं कर सकता।

१०७ नितान्त व्यक्तिगत आकांक्षाओं और अनुभवों में ही खोये रहना कर्त्तव्य के प्रति सचेत रहने वाले व्यक्ति का कर्म नहीं है।

कर्त्तव्यनिष्ठा

१०८ कर्त्तव्यनिष्ठा कहती है—वही कहो जो करो, वही करो जो कहो।

१०९ कर्त्तव्यनिष्ठा की पारदर्शी आभा जब चारो ओर बिखरती है तो वहां का वातावरण बदल जाता है।

११० कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ विनिमय-बुद्धि का कोई सम्बन्ध नही।

१११ कर्त्तव्यनिष्ठा को मैं मानवता का प्रथम सोपान मानता हूं।

११२ कितना विपर्यास है कि अधिकार और लालसा की प्रेरणा से व्यक्ति नए-नए रास्ते खोज लेता है, पर कर्त्तव्यनिष्ठा के नाम पर वह खुले रास्तों को भी बंद कर देता है!

११३ कर्त्तव्यनिष्ठा के बिना सुधार और निर्माण का कार्य नहीं हो सकता।

११४ कर्त्तव्यनिष्ठा सदाचार की प्रेरक शक्ति है।

११५ बुद्धि के योग से कर्त्तव्यनिष्ठा और प्रखर बन जाती है।

११६ जहां नाम के लिये काम की भावना होती है, वहां दोष बढ़ जाते हैं किन्तु जहां काम के लिये काम की भावना होती है वहां कोई बुराई नहीं पनपती।

११७ कर्त्तव्यनिष्ठा से किए गए कार्य में कभी निराशा नहीं आती।

कर्त्तव्यबोध

११८ कर्त्तव्यबोध एक ऐसी भेदरेखा है, जो मनुष्य और पशु का विभाजन करती है।

११९ स्वकर्त्तव्यमकर्त्तव्यं, विदन्ति न हि ये जनाः।
यदा कदाप्यनिष्टं स्यादिह तेषामतर्कितम्॥
(जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य को नही पहचानते, उनका किसी भी समय मे ऐसा अनिष्ट हो सकता है, जिसकी उन्होने कभी कल्पना भी न की हो।)

१२० जिस समाज में कर्त्तव्यबोध नहीं रहता, वहां ध्वंस शुरू हो जाता है।

कर्त्ता

१२१ यदि कर्त्ता सक्रिय न हो तो हजारों वर्ष तक भी कारण होते हुए भी कार्य नहीं होगा।

कर्तृत्व

१२२ जो लोग कदम-कदम पर संदिग्ध रहते हैं, कुछ भी करने का साहस नहीं करते, वे अपने कर्तृत्व को कभी उजागर नहीं कर सकते।

१२३ कर्म करने में यदि व्यक्ति स्वतंत्र न हो तो व्यक्ति का कर्तृत्व ही समाप्त हो जाएगा।

१२४ जब तक कर्तृत्व नही जगेगा, कर्त्ता के शब्दों में शक्ति नहीं आ सकती।

१२५ समाधान खोजने को उत्सुक व्यक्ति ही अपने कर्तृत्व को उजागर कर सकता है।

१२६ यदि समस्याओं का समाधान चाहते हो तो अपने कर्तृत्व पर विश्वास रखो।

१२७ कर्तृत्व कभी किसी का मुहताज नही होता।

१२८ व्यक्तित्व का मूल्यांकन उसके कर्तृत्व के आधार पर ही किया जा सकता है।

१२९ सही माने में कर्तृत्व वही है, जो विपरीत परिस्थितियो के बावजूद सचाई के मार्ग पर टिका रहे।

१३० मानव का असली कर्तृत्व है—अतीत से प्रेरणा लेते हुए वर्तमान का निर्माण और विकास करना।

कर्म

१३१ कर्म की समाप्ति जीवन की समाप्ति है।

१३२ हम अपने कर्मों से इतने ऊंचे उठे कि ईश्वर-तुल्य वन जाएं।

१३३ रे नर ! तू सबसे बड़ा, तू सबमे स्वाधीन।
करना है सो कर्म कर, उत्तम बन चाहे दीन॥

१३४ कर्म के क्षेत्र में वहानेबाजी आंतरिक निराशा की अभिव्यक्ति है।

१३५ आवश्यक और अनावश्यक कर्म मे एक निश्चित भेदरेखा का होना बहुत जरूरी है, अन्यथा शक्ति का अपव्यय होता है और कर्म का कोई सुफल नही मिलता।

१३६ कामना-प्रेरित कर्म ही व्यक्ति को बांधता है।

१३७ जिस कर्म से इस जन्म में मोक्ष का अनुभव नहीं होगा, उससे भविष्य में मोक्ष-प्राप्ति की कल्पना का क्या आधार होगा ?

१३८ कर्म व्यक्ति के सस्कारों की कसौटी है।

१३९ अपनी आवश्यकता-पूर्ति के लिए किया जाने वाला कर्म कभी सिद्धान्त नहीं बन सकता।

१४० एक जन्म से दूसरे जन्म में जाते समय व्यक्ति का कोई साथी होता है तो वह अपना कर्म ही है।

१४१ कर्म पुरुषार्थ की फलश्रुति है।

कर्मकाण्ड

१४२ कर्मकाण्ड का भी अपना महत्त्व हो सकता है, पर तभी जब कि आदमी जगा हुआ हो।

१४३ जीवन पवित्र नही है, व्यवहार में सच्चाई और प्रामाणिकता नही है, मन शुद्ध नही है, उस स्थिति में सारे कर्मकाण्ड भार बन जाते हैं।

१४४ केवल कर्मकाण्डों के साथ आवद्ध होकर 'धर्म' शव्द अव्यावहारिक हो जाता है।

कर्मचारी

१४५ लेना नहीं चाहते रिश्वत पर हम हैं मजबूर,
वेतन कम है, पेट न भरता, सुख सुविधा से दूर।
छोटे स्वार्थों के खातिर क्यों बेच रहे ईमान,
अगर स्वस्थ जीवन जीना तो बनो सही इंसान ॥

कर्मठ

१४६ सही माने में कर्मठ वह है जो प्रतिकूल परिस्थितियों को रौंदता हुआ सत्य और न्याय के मार्ग पर आगे बढ़ता जाए।

१४७ काम करने वालों को कोई भी परिस्थिति रोक नहीं सकती।

१४८ कर्मठ व्यक्ति के लिए कठिन और असंभव कुछ भी नहीं है।

१४९ कर्मठ ही भाग्यशाली हो सकता है। कर्महीन का भाग्य सो जाता है।

कर्मणा जैन

१५० जिसका दृष्टिकोण सही हो, जिसका ज्ञान सही हो, जिसका आचरण सही हो, वह कर्मणा जैन है, फिर भले वह किसी भी जाति या सम्प्रदाय से संबंधित क्यो न हो।

१५१ जो बेगुनाह निरपराध प्राणी की हत्या न करे और आततायी-आतंकवादी न बने, वह कर्मणा जैन है।

१५२ वह कर्मणा जैन है, जो आवेश, व्यसन और नशे से मुक्त है।

१५३ जैन परिवारों में पले हुए व्यक्ति यदि हिंसा और परिग्रह की स्तुति में रस लेते हैं, सह-अस्तित्व को मान्यता नहीं देते है, एकान्त आग्रह में विश्वास करते हैं, दूसरे के स्वत्व का हनन करने के लिए उद्यत रहते हैं, तो क्या वे अपने कर्म से जैन हो सकते है ?

कर्मणा धार्मिक

१५४ कर्मणा धार्मिक की बहुत बड़ी पहचान यह है कि संघर्ष की परिस्थिति पैदा होने के बाद भी वह संघर्ष को टालने की हर संभव कोशीश करता है।

१५५ धार्मिक कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति जन्मना जैन, बौद्ध, सिक्ख या सनातनी हो सकता है, पर कर्मणा नही।

१५६ जो व्यक्ति समझ परिपक्व होने के बाद धर्म को समझकर उसे स्वीकार करता है और उसके अनुरूप जीवन जीता है, वह कर्मणा धार्मिक बन जाता है।

१५७ कर्मणा धार्मिक की पहचान केवल क्रियाकाण्ड नही है, विवेक की प्रज्ञा है।

कर्मण्य

१५८ काम तो बहुत है पर कर्मण्य बहुत कम मिलते हैं।

कर्मवाद

१५९ आत्मप्रवृत्त्याकृष्टास्तत्प्रायोग्यपुद्गलाः कर्म।
(आत्मा की प्रवृत्ति द्वारा आकृष्ट और कर्म रूप में परिणत होने योग्य पुद्गल कर्म हैं।)

१६० क्रिया की प्रतिक्रिया ही कर्मवाद है।

१६१ है पुण्य पाप का द्योतक यह वैषम्य विश्व का विदित रूप।
प्रत्यक्ष प्रमाणित कर्मवाद, संभुज्यमान सुख-दुःख स्वरूप ॥

१६२ संसार की विचित्रता का हेतु है—कर्मवाद।

१६३ मनुष्य के सुख-दुःख का कारण उसका कर्म ही है, परमात्मा इसमें क्या कर सकता है ?

१६४ हवा स्वभावतः ठंडी-गर्म नहीं होती। वह सूर्य की उष्मा से गर्म और अनुष्मा से ठंडी होती है। ठीक इसी तरह कर्म के योग-वियोग से आत्मा मलिन और निर्मल कहलाती है।

१६५ है विषम करम-गति दुनिया मे।
इक छिन में कुण गति कुण पामै ॥

१६६ कर्मवाद आत्म-स्वातंत्र्य का मार्ग है। भाग्यवाद में स्वतंत्रता का हनन होता है।

१६७ कर्मों की गति अति भारी है।
दुनिया तलवार दुधारी है ॥

१६८ एक का सुख व दुःख दूसरा नही बटा सकता—यह बात हम कर्मवाद से ही जान सकते हैं।

१६९ राजा हो या रक, सपन्न हो या विपन्न, स्थूल हो या सूक्ष्म, सुदर हो या असुंदर, कर्म के जाल में फसे विना कोई रह नही सकता।

कर्मविपाक

१७० सूत्या काल राजमहलां में मौज उडावै,
आज भिखारी बै दर दर रा तू पोमावै।
पाणी रो लोटो पण हाथां स्यू न उठावै,
वै धोले दोफारां माथै लकड्यां ल्यावै ॥

१७१ जिस प्रकार कोयला खाने वाले का मुह काला होता है, उसी तरह जो बुरा कार्य करता है, उसे उसका फल भुगतना ही पड़ता है।

१७२ कर्मो से हो जाते है, ऐसे ज्ञानी-अज्ञानी,
जो धर्म-शुक्ल-ध्याता, वन जाते आर्त्त-ध्यानी,
लाखों के तारक बनते अपने हित मे व्यवधानी,
है शिथिल ग्रथिल वन जाते ऐसे उन्नत अवधानी,
पावन को पतित बनाती कर्मो की अलख कहानी ॥

१७३ एक नयो पैसो भी थांरै नही चालसी सागै।
कर्‌या आपरा कर्मां स्यूं ही सुख दुख मिलसी आगै ॥

१७४ अपनी करणी है भरणी ।
सुख-दुःख री है संचरणी ।।

१७५ सगला भुगतै आपरी भाई ! करणी आपो आप ।
गहराई स्यूं सोचलै तू, कुण बेटो ? कुण बाप ?

कर्मशील

१७६ कर्मशील व्यक्ति ही स्वस्थ और प्रसन्न रह सकता है ।

१७७ जो व्यक्ति कर्मशील नहीं होता, वह आलस्य और प्रमाद को प्रश्रय देता है ।

१७८ उन्नति के शिखर पर वही पहुंच सकता है, जो कर्मशील होता है ।

१७६ कर्मशील व्यक्ति के लिए कोई भी काम असंभव नही होता और निष्क्रिय व्यक्ति किसी भी काम में सफल नही होता ।

१८० कुछ कर गुजरना ही जिनका ध्येय होता है, वे यदि सुख-दुःख की गणना में उलझ जाते है तो कदापि आगे नही बढ़ सकते ।

कर्मशीलता

१८१ कर्मशीलता वह पुरुषार्थ है, जो अधिकार की भावना समाप्त कर कर्तव्यबोध की प्रेरणा देता है ।

१८२ जो युवक कर्मशीलता का अस्त्र हाथ में लेकर जीवन के समराङ्गण में कूद पड़ते हैं, वे निश्चित रूप से विजयी होते है ।

१८३ मुझे कर्म मे कभी क्लान्ति अनुभव नही होती, क्योंकि मैं कर्म-मुक्ति के लिए कर्म करता हूं ।

१८४ मात्र सोचते रहने या बातें बनाने से क्या बनेगा, यदि जीवन में कर्मशीलता नहीं आएगी ?

कल

१८५ जो व्यक्ति आज को भुलाकर कल में विश्वास करता है, वह कभी सफलता की सीढ़ियों पर आरोहण नही कर सकता ।

१८६ कल के भरोसे बैठने वाला व्यक्ति समय पर कोई काम नही कर सकता ।

१८७ कल का कभी अंत नही होता, इसलिए आज के एक-एक क्षण का उपयोग करना है ।

१८८ कल करने की बात तीन प्रकार के व्यक्ति कह सकते हैं—जिसकी मौत के साथ मैत्री हो, जो मौत के आने पर भी उससे बचकर पलायन करने में सक्षम हो या जिसको यह पूरा भरोसा हो कि मैं कभी नही मरूंगा ।

१८९ यदि आने वाला कल सफल बनेगा तो आने वाले वर्ष भी अपने आप सफल बनेंगे इसलिए मैं इक्कीसवीं सदी का नहीं, कल की बात करना अधिक पसंद करता हूं ।

कलंक

१९० जो धर्म कलह, संघर्ष, विग्रह और वैषम्य फैलाता है, वह धर्म नहीं, बल्कि धर्म के नाम पर कलंक है ।

१९१ नारी को भारभूत मानना कलंक है ।

कलम

१९२ तलवार जिस तरह हिंसा का साधन बन सकती है, कलम से उससे कई गुना अधिक हिंसा की जा सकती है ।

कलह

१९३ कलह दारिद्र्य का लक्षण है ।

१९४ जो व्यक्ति इन्द्रिय, मन और वाणी पर नियंत्रण नहीं रखते, वे कलह को जन्म देते हैं ।

१९५ जहां असहिष्णुता, निरपेक्षता और हस्तक्षेप होते हैं, वहां कलह पनपता है ।

१९६ परस्पर का कलह शक्ति को क्षीण करता है ।

१९७ घर खोवे घर रो कलह, त्यूं देश, राष्ट्र पहचान ।
संस्था दल सोसायटी, है लड़ने में नुकसान ।।

१९८ कलह ही सार्वजनिक और वैयक्तिक अशांति का मूल है ।

१९९ एक दूसरे के दृष्टिकोण को न समझने से ही परस्पर कलह और विग्रह होते हैं ।

२०० जिस घर, परिवार, समाज, नगर और राष्ट्र में कलह है, वह पनप नहीं सकता।

२०१ विचार-भेद में कलह को अवकाश नहीं मिलता पर मनोभेद और छीटाकशी से कलह उभर जाता है।

२०२ कलहप्रियता परिहरो, सुण सद्गुरु रो फरमान।
'तुलसी' भव-सागर तरो, नजदीक करो निर्वाण॥

कलही

२०३ मात, तात, गुरु, भ्रात रो है जग में जो सम्मान।
कलही कलकलतो करे, इक छिन में ही अपमान॥

२०४ कलह करने वाला व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से तो घाटे में रहता ही है, भौतिक दृष्टि से भी उसे काफी नुकसान उठाना पड़ता है।

कला

२०५ विसंगतियों से भरे जीवन में संगति बिठाना एक बडी कला है।

२०६ कला न तो पढने की चीज है और न अभ्यास की वस्तु है। वह तो जीवनगत तत्त्व है इसलिए वह जीवन के उन्मेष-निमेषों से सयुक्त है।

२०७ कला का सत्य रूप है—जीवन के अंतरतम की सजावट परिष्कार या संस्कार।

२०८ अपने द्वारा अपने जीवन का निर्माण एक अद्भुत कला है।

२०९ वही कला कला है, जो सत्यं-शिवं-सुदरं के पथ पर आगे बढ़ाने वाली हो।

२१० जिस कर्म से जीवन का अन्तर् संपृक्त होता है, अध्यात्म शक्ति का विकास होता है, वह कर्म ही कला है।

२११ कला वह कहलाती है, जो जीने और मरने में सौन्दर्य और व्यवस्था देती है।

२१२ ज्ञान और आचरण का सामंजस्य जीवन की बहुत बड़ी कला है।

२१३ कला के विना साधना नहीं आती, साधना के विना आनंद नहीं आता।

२१४ इस संसार में सबसे वड़ी कला है—दूसरों के हृदय का स्पर्श करना।

२१५ दोहन की कला का ज्ञान न हो तो अमृत पिलाने वाली धेनु भी लात मार सकती है।

२१६ कला मे आनन्द का स्रोत वहता है।

२१७ कला का उद्भव-स्थल भावना है।

२१८ हमारी सामंजस्य-पूर्ण प्रवृत्ति ही कला है।

२१९ कलाविहीन व्यक्ति की तुलना पशुओं के साथ की जाती है।

२२० धर्मोन्मुख जीवन जीना ही जीने की सच्ची कला है।

२२१ यदि कला का सदुपयोग हो तो वह आत्मविकास में साधक है, अन्यथा बाधक।

२२२ जिस कला का उद्देश्य वासना को उभारना मात्र होता है, वह कला प्रशस्त नही होती।

२२३ समय की पहचान करना और सही समय पर सही काम करना जीवन की विशिष्ट कला है।

२२४ कला प्रदर्शन के लिए न हो तो वह साधना का अंग वन जाती है।

२२५ कला के साथ सत्य का सामंजस्य हो तो वह जीवन-विकास का माध्यम वन सकती है।

२२६ कला के विना जीवन सूना है।

२२७ सौन्दर्यमात्र कला का चरम अभिप्रेत नहीं है।

२२८ कम शव्दों में अधिक कह देना एक कला है। मार्मिक ढंग से कहना और भी वड़ी कला है।

२२९ जिसमे सुनने और समझने की कला आ जाती है, उसका जीवन परिवर्तित होना शुरू हो जाता है।

२३० शाश्वत सत्य और सामयिक सत्य की भिन्नता का वोध भी जीवन की एक कला है।

कलाकार

२३१ नीरस को सरस, दुःख को सुख और कुछ भी नही को सब कुछ बनाने वाला कलाकार होता है।

२३२ उठा गली से कोरा पत्थर कलाकार घर लाया।
सुंदर प्रतिमा बना उसे लाखों का पूज्य बनाया॥

२३३ कलाकार का लक्ष्य होता है—सत्य और शिव का साक्षात्कार।

२३४ जो शाश्वत को अभिव्यक्ति देता है, वही सही अर्थ में कलाकार है।

२३५ मैं मानता हू आप बहत्तर कलाओं में कुशल बने या नही, एक साम्ययोग की कला को सीख लें तो वास्तविक कलाकार बन सकते है।

२३६ कला गूढ की अभिव्यक्ति है। गूढ़ को अभिव्यक्ति देने वाला कलाकार है।

२३७ आत्मानंद और आत्मोल्लास के लिए ही कलाकार कला का सृजन करता है।

कलियुग

२३८ चिंतन की अनैतिकता ही कलियुग है।

२३९ कलियुग का वहाना लेकर असत्य का पोषण करना मिथ्याचार है।

२४० अभय और सत्य की साधना से कलियुग मे भी सतयुग लाया जा सकता है।

कलियुग : सतयुग

२४१ सतयुग मे सत्य का महत्त्व परिलक्षित नही होता, सत्य का महत्त्व परिलक्षित होता है कलियुग में।

२४२ दुर्बल व्यक्ति के लिए जो कलियुग है, सबल व्यक्ति के लिए वही सतयुग है।

कलुषता

२४३ दूसरों के प्रति कलुषित विचार रखना, खुद को खत्म करना है।

२४४ जिसका चित्त कलुषित होता है, उसके जीवन में अहिंसा का अवतरण नही हो पाता।

कल्पना

२४५ विचारों के नभ पर कल्पना के इंद्रधनुष टांगने मात्र से कुछ होने वाला है—ऐसा मैं नहीं मानता।

२४६ शांति सुख की चाह जग में, कौन कब करता नहीं ?
कल्पना के कौर भरने से, उदर भरता नहीं ॥

२४७ व्यवहार के माध्यम से साकार रूप में परिणत होने पर ही कल्पना यथार्थ बन पाती है।

२४८ केवल कल्पना से विश्व-शान्ति का सपना कभी साकार नहीं हो सकेगा।

२४९ कल्पना भावात्मक पक्ष है, इससे काव्य का उदय हो सकता है।

२५० कल्पना का यथार्थ के साथ निश्चित अनुबन्ध नहीं होता।

२५१ कल्पना करने मात्र से क्या होगा ? चलना तो धरती पर ही पड़ेगा।

२५२ कल्पना और आशा का अतिरंजन आदमी को भटकाने के सिवाय उसे क्या दे सकता है ?

कल्पनाशील

२५३ कल्पनाशील व्यक्ति ही विकास के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

कल्पातीत

२५४ कल्पातीत स्थिति को प्राप्त कर लेने के बाद वर्जनाओं का कोई अर्थ नहीं रहता।

कल्याण

२५५ सद्वाक्य दरवाजों पर नही, हृदय में लिखने से कल्याण होगा।

२५६ जहां दुःख का अंश भी न हो, उसी का नाम कल्याण है।

२५७ सत्य, अहिंसा और तप की त्रिवेणी मे जो भी डुबकी लगा लेगा, उसका कल्याण हो जाएगा।

२५८ कल्याण उसी व्यक्ति का होता है, जो जड़ और चेतन का पृथक्त्व समझकर अध्यात्म की ओर बढ़ता है।

२५९ संकल्पों की दृढ़ता के बिना कल्याण के पथ पर बढ़ा नहीं जा सकता।

२६० शुद्धाचार विचारभित्ति पर, हम अभिनव निर्माण करें।
सिद्धान्तो को अटल निभाते, निज-पर का कल्याण करें ॥

२६१ ज्ञान, दर्शन और चारित्र—इन तीनों रत्नों की आराधना से कल्याण की अभिसिद्धि होती है।

२६२ चाहे कोई व्यक्ति मन्दिर में जाए, पूजा करे, सामायिक करे, साधुओं के दर्शन करे, लेकिन जब तक धर्म का सही रूप जीवन में नहीं आएगा, कल्याण होना दुष्कर है।

२६३ संसार का कल्याण और उसको सम्पादित करने की भावना अपने कल्याण से परे की चीज नहीं है।

२६४ दूसरा व्यक्ति हमें सहारा दे सकता है, पर कल्याण नहीं कर सकता। इसलिए कल्याण के लिए भगवान् की ओर ताकना परले सिरे की कायरता है।

२६५ मानव बनकर मानवता के साथ खिलवाड़ करना कल्याण का मार्ग नही है।

२६६ शब्दों के द्वारा कितनी बार भी आदर्शों को दुहरा लें, किन्तु जब तक वे जीवन में नही उतारे जाएंगे, तब तक कल्याण नही होगा।

२६७ धर्म का अंश भी जीवन में आ जाए तो कल्याण होते देर नही लगेगी।

२८० उस धनुर्धर की क्या विशेषता यदि उसका बाण अपने लक्ष्य को तत्क्षण बीध न डाले ! वह क्या कविता जिसे सुनकर श्रोता अपना सिर न डुलाने लगें !

कषाय

२८१ वास्तविक चांडाल तो कषाय है, गुस्सा है ।

२८२ मनुष्य को गिराने वाला तत्त्व, उसके भीतर रहने वाला कषाय है ।

२८३ अपने समकक्ष को आगे बढ़ता देख मन मे ईर्ष्या होना कषाय है ।

२८४ कषाय के घेरे से मुक्त आत्मा सहज आनन्द और आलोक-मय बन जाती है ।

२८५ कषाय जितना क्षीण होगी, अल्प होगा, उतनी ही समाधि प्राप्त होगी ।

२८६ क्रोध, मान, माया, लालच में हाय जिंदगी गालै ।
कुटिल कषाय लाय में जलतां, निज आतम गुण बालै ।।

२८७ जब तक कषाय का अंश शेष रहता है, सत्य का पूर्ण विकास नही हो सकता ।

२८८ किसी पर अपने विचारों को जबरन थोपना कषाय है ।

२८९ आत्मा स्वच्छ और निर्मल तब बनता है, जब उस पर क्रोध, मान, माया और लोभ आदि कषायों का अवलेप नही होता ।

२९० कषाय का वलय तभी टूट सकता है, जब उसका प्रतिपक्षी वलय प्रबल हो ।

२९१ कषाय वैयक्तिक दुःख का कारण तो है ही किन्तु पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय संघर्षो के मूल में भी कषाय का हाथ है ।

कषाय-विजय

२९२ कषाय-विजय के बिना तपस्या अलौनी रह जाती है ।

२६३ आदमी आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त कर सकता है, युद्ध में विजय पा सकता है तथा बड़े से बड़ा संस्थान भी बना सकता है, ख्याति प्राप्त कर सकता है, नाम कमा सकता है किन्तु कषाय-विजय मुश्किल है।

२६४ आत्महित के लिए और जनहित के लिए भी कषाय-विजेता बनना जरूरी है।

२६५ बनें कषाय-विजेता प्रतिदिन, कर-कर नये प्रयोग।
कायोत्सर्ग ध्यान के द्वारा, रोकें चंचल-योग।।

२६६ कषाय-रंजित मनुष्य क्षमा नही दे सकता।

कषायी

२६७ जो व्यक्ति दिन-रात आवेश में रहता है, बात-बात पर क्रोध करता है, वह बड़ा कषायी होता है।

२६८ कषायी सबसे बडा अछूत है।

कष्ट

२६६ जो कष्टों की आग में तपना जानता है, वह उज्ज्वलताओं की रेखाओं को खींच कर एक नवीन तस्वीर तैयार करता है।

३०० कष्टों की जंती से निकलने पर ही साधना में स्थायित्व आता है।

३०१ जो चीज कष्ट से प्राप्त की जाती है, वह कष्ट के समय काम भी आती है।

३०२ कष्ट को महसूस करने से ही कष्ट होता है। महसूस न किया जाय तो कोई भी कष्ट कष्टप्रद नहीं रहता।

३०३ यदि तुम किसी को कष्ट नहीं दोगे तो सम्भव है तुम्हें भी कोई कष्ट नहीं देगा।

३०४ सुख में तो सब दिखलाते है, अपना अपना स्वत्व।
किंतु कष्ट में जो खिल जाये, उसका बडा महत्त्व।।

३०५ प्रबल आस्था और प्रबल पुरुषार्थ इन दोनों के सहारे आप बड़े से बड़े कष्ट को पार कर सकते है।

३०६ कष्ट की अनुभूति तब होती है, जब शरीर को ही आत्मा मान लिया जाता है।

३०७ कष्टों से घबराकर सीधा और सरल रास्ता खोजने वाले व्यक्ति मंजिल की दिशा में आगे नहीं बढ़ पाते।

३०८ यदि व्यक्ति आत्म-निरीक्षण करके आत्म-संयम के पथ पर बढ़े, तो कष्ट स्वयं समाप्त हो जायेंगे।

३०९ कष्ट का जनक व्यक्ति स्वयं है।

३१० निश्चित निज कर्त्तव्य पंथ पर, अविचल दिल बण ज्यावो।
कोटि कष्ट यदि पड़ै, खड्या हिम्मत दिखलाओ॥

कष्टसहिष्णु

३११ कष्ट सहकर अच्छा काम करने वाला व्यक्ति ही जनता के लिए आदरास्पद और अनुकरणीय हो सकता है।

३१२ जो व्यक्ति कष्ट-सहिष्णु होते हैं, वे विषमस्थिति मे भी अन्याय और असत्य के सामने झुकने की बात नही करते।

कष्टसहिष्णुता

३१३ कष्टों को सहने की मन:स्थिति मंद होती है, इसका अर्थ है——लौ बुझने को है।

३१४ कष्ट तो आते-जाते रहते है। हमारे अन्दर वह शक्ति होनी चाहिए कि हम हंसते-हंसते कष्ट सहन कर लें।

३१५ कष्ट-सहिष्णुता के अभाव में महान् कार्य भी असफल हो जाते है।

३१६ आगन्तुक कष्टो को समभावपूर्वक सहने से बहुत बड़ी निर्जरा होती है—ऐसा सोचकर कष्ट-सहिष्णुता का विकास करना चाहिए।

कसाई

३१७ जाति मात्र से कोई कसाई नही हो जाता। वह तो अपने आचरणों से होता है।

कसौटी

३१८ कसौटी मनुष्य में निखार लाती है ।

३१९ अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों के झोकों में भी अपने पथ और लक्ष्य से न भटकना ही व्यक्ति की सही कसौटी है ।

३२० सभी दूसरों को कसौटी पर कसना चाहते है, किन्तु अपनी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता ।

३२१ धार्मिक की कसौटी उसका दैनिक क्रियाकाण्ड नही, अपितु दैनिक व्यवहार है ।

३२२ स्वर्ण में कितनी मिलावट है और कितनी विशुद्धि—इसका निर्णय अग्नि करेगी ।

३२३ अच्छे और बुरे की कसौटी मनुष्य स्वयं ही नही होता, क्योंकि स्वयं को अच्छा लगने से यदि सारे काम अच्छे हों तो फिर संसार में बुरा काम कोई रह ही नहीं जाता ।

३२४ हमारी कसौटी हम स्वयं हैं ।

कहानी

३२५ साहित्य की एक सशक्त और रोचक विधा है—कहानी ।

३२६ जिस तथ्य को सामान्यतः विस्तार से बताने के बाद भी बुद्धिगम्य नहीं कराया जा सकता, वह कहानी के माध्यम से सीधा गले उतर जाता है ।

कांक्षा

३२७ कांक्षा की विद्यमानता में कोई भी व्यक्ति निर्द्वन्द्व नहीं हो सकता ।

कांटा

३२८ शरीर के कांटे से भी मन का कांटा ज्यादा चुभता है।

३२९ पैर में लगा एक कांटा भी जब सह्य नहीं होता तो क्रोध, मान आदि अनगिन कांटों से बिंधी हमारी आत्मा को चैन कैसे मिलेगा ?

कानून

३३० कानून बुराई छोड़ने के लिए जोर डाल सकता है, किन्तु बुराई के प्रति घृणा पैदा नहीं कर सकता।

३३१ हृदय-परिवर्तन के बिना कानून अपने आप में अकिंचित्कर है।

३३२ कानून प्रेरणा दे सकता है, पर वातावरण बनाना उसके वश की बात नहीं है।

३३३ कानून आत्मा तक नहीं पहुंचता, उसकी पहुंच केवल शरीर तक है।

३३४ वह समाज ऊंचा है, जिसमें कानून का प्रयोग कम से कम होता है।

३३५ जब तक भीतर का अनुशासन विकसित नहीं हो पाता, कानून और व्यवस्था सफल नहीं हो सकती।

३३६ जहां कानून से व्यक्ति बचने की चेष्टा करता है, वहां हृदय-परिवर्तन के द्वारा मनुष्य के दिल में बुराई के प्रति घृणा पैदा हो जाती है।

३३७ कदाचित् कानून से न्याय मिल भी जाए पर मन को समाधान नहीं मिल सकता।

कापुरुष

३३८ भाग्य में जो कुछ लिखा है, वह होगा—यह कापुरुषों की वाणी है।

३३९ कापुरुषों के लिए अहिंसा का द्वार बंद है।

काम

३४० प्रासंगिक फल के आधार पर कोई भी काम अच्छा या बुरा नहीं हो सकता।

३४१ कुशल, परिश्रमी और धुन के धनी व्यक्ति जिस काम को कम समय और कम श्रम से सम्पादित कर लेते है, वही काम अनुभवहीनता और निष्ठा के अभाव में कभी पूरा नहीं होता ।

काम और नाम

३४२ काम नाम के लिए मत करो। काम के पीछे नाम स्वयं होता है ।

३४३ काम और नाम, रात्रि और दिन कभी एक साथ नही रह सकते ।

कामना

३४४ कामना एक ज्वाला है, उसमें दुर्बल व्यक्ति झुलसता रहता है ।

३४५ सौ रुपये पाने की चाह हजार मे परिणत होती है, हजार की कामना लाखों की परिक्रमा करती है और समूचे संसार का वैभव हस्तगत हो जाए तो भी वह पूरी नहीं होती ।

३४६ कामना के दो स्रोत हैं—अतीत की स्मृति और भविष्य की कल्पना ।

३४७ कामनाओं की शून्यता से ही साधना में अचलता आती है ।

३४८ कामनाओं का सागर वही तर सकता है, जो सत्य के प्रति समर्पित होता है ।

३४९ कामना की निवृत्ति हुए विना सुख का स्वरूप भी समझ में नही आता ।

३५० लाखो रुपए देना इतना कठिन नही, जितना कि इच्छाओं और कामनाओं पर नियंत्रण करना है ।

३५१ कामना-शून्य व्यक्ति ही जीवन में अंधकार को प्रकाश में परिवर्तित कर सकता है ।

३५२ कामना का गुलाम बनकर चलने वाला भटक जाता है ।

३५३ आगे चलकर आवश्यकता स्वयं कामना बन जाती है ।

काम-भोग

३५४ काम-भोग से क्षणिक तृप्ति भले ही मिले, पर अन्त में नीरसता आ जाती है।

३५५ घी स्यूं भभकै आग, भोग स्यूं काम राग जाणी।
बुझै शान्त-रस वाणी स्यूं, आ सद्गुरु री वाणी ॥

३५६ जिस व्यक्ति में विराट् सुख को प्राप्त करने की भावना जागृत हो जाती है, उसे काम-भोग के सुख विडम्बना जैसे लगते हैं।

३५७ काम-भोग किम्पाक फलोपम।
शल्य काम है आशीविष सम ॥

३५८ वह मनुष्य चेतन नहीं है, जो काम-भोगों में लुब्ध हो जाता है। काम-गुण यदि मनुष्य पर अधिकार जमा ले तो वह चेतन कहां रहा ? जड़ का ही तो दास हो गया।

३५९ खूत्यो काम-राग दल-दल में, बण्यो विलासी।
क्यूं पोमावै बैठ्यो खावै, टुकड़ा बासी ॥

कामयाब

३६० कोई भी हो, यदि विरोध से तिलमिला उठता है, तो वह कामयाब नही हो सकता।

कामवासना

३६१ कामवासना ऊपर से दिखाई नही देती, पर उसकी जड़ गहरी होती है। यह व्यक्ति को अन्दर ही अन्दर दुःख देती है।

३६२ वस्तुतः न स्त्री बुरी है, न पुरुष बुरा है। बुरी है—कामवासना।

३६३ मन जितना कामवासना में उलझता है, संकल्प उतना ही दुर्बल होता जाता है।

३६४ हरि, हर,ब्रह्म झुकै जिण आगै, जाग्यां विषय विकार।
दुर्जय काम-विजय पथ बहणो, रहणो मन नै मार ॥

कामुक

३६५ कामुक व्यक्ति कभी सत्य बोल ही नहीं सकता ।

३६६ कामुक व्यक्ति शरीर और वाणी दोनों से उन्मत्त होता है ।

कामुकता

३६७ कृत्रिम साधनों का उपयोग मुक्त कामुकता को सीधा प्रोत्साहन है ।

३६८ अति कामुकता से मन शिथिल हो जाता है । मानसिक शैथिल्य से त्याग और बलिदान की भावना भी खत्म हो जाती है ।

काय-ऋजुता

३६९ असत्य न बोलने पर भी काय-ऋजुता के अभाव में व्यक्ति असत्यवादी है, क्योंकि मौन रहकर भी अंगुली-संकेत और नेत्र-संकेत आदि से बड़े से बडा अनर्थ किया जा सकता है ।

कायक्लेश

३७० कायिक कष्ट की उपस्थिति में समभाव की अनुभूति करने वाला कायक्लेश तप की आराधना करता है ।

कायनियंत्रण

३७१ यदि शरीर पर नियन्त्रण हो गया तो मन एक दिन स्वयं नियंत्रित हो जाएगा ।

३७२ मन को रोकना कठिन है, पर हकीकत यह है कि काया को रोकना मन से भी अधिक कठिन है ।

कायर

३७३ कायर व्यक्ति क्रांति की बातें बनाने मे आगे रहते हैं पर जब काम पड़ता है तो वे चुपके से पीछे हट जाते हैं ।

३७४ पारस्परिक हिंसा, भय, संदेह और फूट से मनुष्य कायर बनता है ।

३७५ कायरों का श्रद्धा से कोई सम्बन्ध नहीं। कायर व्यक्ति क्या श्रद्धा करेगा, जब वह खुद ही डांवाडोल है !

३७६ कातराः कष्टवेलायां, भ्रश्यन्ति संयमाद् भृशम्।
(कायर व्यक्ति कष्ट के समय मे सयम से च्युत हो जाते है।)

३७७ दूसरों को सताने वाला बहुत बड़ा कायर, कमजोर और बुजदिल होता है।

३७८ अपने स्वार्थ से दूसरों पर अनुशासन करने वाला कायर है।

३७९ कायर व्यक्ति कभी सहिष्णु नही हो सकता और सहिष्णु कभी कायर नही हो सकता।

कायरता

३८० अन्याय को सहना कायरता है, पर अपने साथियों को न सह पाना उससे भी बड़ी कायरता है।

३८१ दूसरों की आलोचना सुनकर या लोकभय से अपना सही पथ छोड़ देना कायरता है।

३८२ अपने को हीन और कमजोर समझना कायरता है और महान् समझना गर्व।

३८३ ईंट का जवाब पत्थर से देने में जो पौरुष की कल्पना है, वह कायरता है।

३८४ इष्ट वियोग अनिष्ट सुयोगे, कायर नर झुर-झुर मुरझावै।
निज अधिकार विसार व्यथाकुल, व्याकुलता दिल री दरसावै ॥

३८५ भोग की तरफ उन्मुख होना कायरता है।

३८६ शक्ति के अभाव में अहिंसा की ओट लेना बहुत बड़ी कायरता है।

३८७ हम अपनी समस्या के समाधान हेतु ईश्वर का आह्वान करे, यह कायरता है।

३८८ बुजदिली और कायरता का सफलता के साथ कोई सम्बन्ध नही है।

३८९ युद्ध के मैदान को छोड़कर भागना कायरता है और कायरता हिंसा है ।

३९० विरोध से घबराना कायरता है, डरपोकपन है ।

३९१ परिग्रह का दायित्व स्वीकार करने वाला उसकी सुरक्षा के समय अहिंसा की बात करे, इसे मैं निरी कायरता मानता हूं ।

३९२ अपने दोषों को छिपाना कायरता है ।

३९३ दूरगामी कठिनाइयों की बात सोचकर हिंसा के सामने घुटने टेकना कायरता है ।

३९४ टूट जाने के भय से संकल्प न करना एक कायरता है ।

कायल

३९५ विरोधी स्थिति मे कायल बन जाने वाले दुनिया में क्या कर सकते है ?

कायस्थ

३९६ मै भी कायस्थ हूं । कायस्थ अर्थात् काया में स्थित रहने वाला ।

कायाकल्प

३९७ जीवन मे खीझ ही खीझ देखी, अब जरा रीझ भी देख ले, जीवन में बुरा ही बुरा देखा, अब जरा अच्छा भी देख ले । जीवन में बरबादी ही बरबादी देखी, अब जरा निर्माण भी देख ले । यदि एक बार भी आप ऐसा कर लेते हैं तो जीवन का कायाकल्प हो जाएगा ।

३९८ बदलने की आकांक्षा जगाने वाला कोई व्यक्ति हो और बदलने का तरीका हाथ में हो तो असंदिग्ध रूप से कायाकल्प हो सकता है।

कायोत्सर्ग

३९९ शरीर के ममत्व का विसर्जन ही कायोत्सर्ग है ।

४०० शरीर का उत्सर्ग वही कर सकता है, जिसे चैतन्य का अनुभव हो जाता है।

४०१ कायोत्सर्ग साधना और सिद्धि दोनों है।

४०२ कायोत्सर्ग की कुदाली से शरीर और मन की जड़ता को तोड़ा जा सकता है।

४०३ कायोत्सर्ग सधते ही चेतन-सत्ता आनन्द के रूप मे अपने अस्तित्व को प्रगट कर देती है।

४०४ कायोत्सर्ग अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति का उत्तम साधन है। विदेह की स्थिति उसी के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

कारण और कार्य

४०५ संसार में कोई भी कार्य निष्पन्न होता है तो उसके पीछे कोई न कोई कारण-शृंखला अवश्य होती है।

४०६ कारणों को मिटाए बिना कार्य को मिटाने की कल्पना आकाश-कुसुम जैसी है।

४०७ मनुष्य कारण को जीवित रखकर उसका परिणाम टालना चाहता है, पर यह संभव नहीं।

कार्य

४०८ कहने की आवश्यकता नहीं, कार्य स्वयं ही बोल उठता है।

४०९ कुछ काम ऐसे हैं, जिन्हें बहुत सरलता से किया जा सकता है। पर कुछ काम ऐसे भी होते है, जिन्हे करना हर आदमी के वश की बात नहीं होती।

४१० कोई भी कार्य शांतिपूर्ण वातावरण में ही निष्पन्न हो सकता है।

४११ केवल नारों से कार्य नहीं होता। कार्य के लिए लक्ष्यबद्ध चिंतन, योजना और उसे पूर्णता तक पहुंचाने का उत्साह अपेक्षित है।

४१२ फल की आसक्ति से रहित होकर जो कार्य किया जाता है, वही वास्तव में कार्य है।

४१३ जितना कार्य लाखों, करोडों रुपयों से नही हो सकता, उतना कार्य एक व्यक्ति अपने जीवन में कर सकता है।

४१४ मैं तो मानता हूं कि व्यक्ति के सामने कार्य आगे से आगे बना ही रहना चाहिए। जिस व्यक्ति के सामने करणीय कार्य नही, वह व्यक्ति किस काम का ?

४१५ जो कार्य स्वस्थ और प्रसन्न दिमाग से किया जाता है, वह आसपास के वातावरण को भी अच्छा बना देता है।

४१६ कार्य केवल पुस्तकीय ज्ञान से ही नहीं, वे अनुभव, विवेक और बुद्धि से भी होते हैं।

४१७ मै शब्द में उत्तर देने की अपेक्षा कार्य से उत्तर देना ज्यादा पसंद करता हूं।

४१८ कार्य में व्यक्ति की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है।

४१९ कार्य चाहे थोड़ा भी क्यों न हो, पर वह स्थायी और रचनात्मक होना चाहिए।

४२० जिस कार्य से युग की समस्या का समाधान होता हो, वही कार्य मान्य बन जाता है।

४२१ विभक्त कामों में शक्ति और समय अधिक लगता है, कार्य कम होता है।

४२२ जो कार्य महान् है उसे शीघ्रातिशीघ्र करो, तुम्हें कोई सहयोगी अवश्य मिलेगा।

कार्यकर्ता

४२३ सहज समर्थ व्यक्तित्व वाला कार्यकर्ता अपने काल को इतना उजागर कर देता है कि शताब्दियों, सहस्राब्दियों तक वह युग के चित्रपट पर मूर्तिमान रहता है।

४२४ कार्यकर्ता का चरित्र समाज के दर्पण पर प्रतिबिम्बित होता है। उसमें यदि छोटा-सा भी धब्बा होता है तो समाज उसे बख्शता नही है।

४२५ जो कार्यकर्ता अन्तिम क्षण तक समाज के विश्वास की सुरक्षा कर लेते हैं, वे अपनी ऐसी प्रतिमा रच डालते है, जो कभी खंडित नहीं होती।

४२६ सफल कार्यकर्ता वही है, जो अपने दिमाग व दिल को तटस्थ और संतुलित रखे।

४२७ अक्षम व्यक्ति कार्यकर्ता के गरिमापूर्ण दायित्व को ओढ़कर भी उसे निभा नहीं सकते।

४२८ वही कार्यकर्ता जो करता, कार्य लगन के साथ।
तड़प काम करने की जिसमें, रहती है दिनरात ॥

४२९ कार्यकर्ता अपनी वाणी को अपने कार्यो में देखे तो उसका अधिक प्रभाव पडेगा।

४३० अप्रामाणिकता वह राहु है, जो कार्यकर्ता की तेजस्विता को धूमिल बना देता है। अनेक कार्यकर्ता योग्य होने पर भी इस एक बिन्दु पर आकर स्खलित हो जाते हैं।

४३१ दक्ष कार्यकर्ता अपनी प्रवृत्तियों में इतनी सजीवता भरते रहते हैं कि कभी रूढिपन का आभास ही नहीं हो पाता।

४३२ कार्य सम्मुख हो, तब उसे न देखकर अपने स्वार्थ को आगे लाना किसी भी कार्यकर्ता की बुद्धिमत्ता नहीं कही जा सकती।

४३३ जो कार्यकर्ता एक क्षण के लिए भी मानसिक रूप से विचलित नहीं होता, वह कठिन से कठिन कार्य में भी सफल हो जाता है।

४३४ सच्चा कार्यकर्ता पद मिलने से अधिक और पद न मिलने से कम कार्य नहीं करता।

४३५ कार्यकर्ता वही बन सकता है, जो अपने दिमाग को कम तथा पुरुषार्थ को अधिक खर्च करता है।

४३६ जो कार्यकर्ता समर्पण-भावना से कार्य करते है, उन्हे अवश्य ही सफलता प्राप्त होती है।

४३७ विचारशीलता कार्यकर्ता की पद्धति में नए-नए उन्मेष लाती है।

१२१ अमरित वेला में सदा, गुरु को करें प्रणाम।
ध्यान, जाप, स्वाध्याय सब, तदनन्तर हों काम ॥

१२२ गुरु के बिना मनुष्य वृक्ष से टूटकर जल में गिरने वाले फल के समान है।

१२३ जिस प्रकार पानी में डूबते मनुष्य को बचाने के लिए कुशल तैराक की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार घोर अनैतिकता में फंसे मानव को निकालने के लिए भी ताकतवर और तपस्वी गुरु की आवश्यकता रहती है।

१२४ गुरु का शिक्षात्मक कडा प्रहार ही शिष्य के व्यक्तित्व-निर्माण का कारण बनता है।

१२५ उचितानुचित ज्ञान नहिं गुरु बिन।
सत्यासत्य भान नहिं गुरु बिन ॥

१२६ गुरु बनाने की सफलता इसी में है कि गुरु के प्रति सर्वात्मना समर्पण हो।

१२७ दर्पण में कोई भी अपना चेहरा देख सकता है, पर तभी जब प्रकाश हो। इसी प्रकार स्वयं कितने ही ग्रंथ या शास्त्र पढ़ ले पर गुरु बिना ज्ञान संभव नही है।

१२८ संतप्त और दुःखी व्यक्ति को जब गुरु का सहारा मिल जाता है, तो मानो उसे मृत्यु में भी जीवन मिल जाता है।

१२९ गुरु ऐसा हो जो पूर्णरूप से अहिंसक, सत्यवादी, ब्रह्मचारी और अपरिग्रही हो।

१३० है गुरु दिव्य-देव घर-घर रा।
पावन प्रतिनिधि परमेश्वर रा ॥

१३१ गुरु की करुणा से मिलता संयम सुखमय,
गुरु के चरणों में रहता साधक निर्भय।
गुरु की सन्निधि मे दुविधा मिटती सारी,
गुरु का पथदर्शन पग-पग मंगलकारी ॥

१३२ जब तक गुरु के प्रति मन में विनम्रता नहीं आती, तब तक आदमी केवल शब्द सुन लेता है पर उसे अर्थ प्राप्त नहीं होता।

१३३ गुरु माता गुरुवर पिता, गुरु जीवन आधार।
गुरु चरणों मे अंत तक, सत 'कनक' सुकुमार ।।

१३४ जिसमें बड़प्पन की भूख होती है, जो केवल आदेश देना चाहता है, वह नाममात्र का गुरु हो सकता है। गुरुत्व की गरिमा उसमें नहीं होती।

१३५ गुरु अहंकार को पालते नही हैं, वे उस पर चोट करते है।

१३६ कठिन साधना मार्ग भी, होता सहज सुगम्य।
साधक यदि पाता रहे, गुरु-पथ दर्शन रम्य ।।

१३७ जीवन एक यात्रा है। इस यात्रा के अनेक पड़ाव हैं। इन पड़ावों का बोध करने के लिए ही शिष्य गुरु की उपासना करता है।

१३८ जो गुरु में शंका करता है, वह सब कुछ खो देता है।

१३९ श्री गुरुवर रै चरण सहारै।
अपणो जीवन शिष्य सुधारै ।।

१४० गुरु की जागरूकता ही शिष्य के व्यक्तित्व-निर्माण का आधार बनती है।

१४१ गुरु के अनमोल बोल संजीवन देते,
तूफानों में भी जीवन नौका खेते।
गुरु अत्राणों के त्राण, विश्व वत्सल हैं,
मिलता जिससे पल पल नूतन संबल है ।।

१४२ बूढ़ां रो यौवन, आंधा री आंख्यां, पंगु रा पांव गुरु।
रोगी रो स्वास्थ्य, मूक वाणी, उठणै-गिरणै रा दांव गुरु ।।

१४३ समर्थ विद्यागुरु और समर्थ शिष्य का मणिकांचन योग विरल ही मिलता है।

१४४ गुरु वही होता है, जो आत्मकल्याण करता हुआ दूसरों को भी कल्याण के मार्ग पर प्रेरित करता रहे।

१४५ जो व्यक्ति गुरु बनने की महत्त्वाकांक्षा रखता है, वह कभी गुरु नही बन सकता।

१४६ नानाविवादविकले वसुधातलेऽस्मिन्,
प्रद्योतयेद् गुरुपद स किलोर्ध्वरेताः ।
यो विश्रुतेऽविकलसच्चरिताश्रितात्मा,
यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधात् ।

(जिसका चरित्र अखंड हो, जो वाङ्मयगत समस्त तत्त्वज्ञान से संस्तुत हो, वही ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी इस वाद-विवाद मे फंसे हुए पृथ्वीतल पर गुरुपद को अलंकृत कर सकता है ।)

१४७ उपालम्भ गुरुदेव का, आंतर रोग इलाज ।
सहे सदा समभाव से, ज्यों मुनि 'पृथ्वीराज' ।।

१४८ गुरु वह होता है, जो पहले अपने पर अनुशासन करता है । गुरु वह होता है, जो प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास कर लेता है । गुरु वह होता है, जो आत्मविश्वास का धनी होता है । गुरु वह होता है, जो अपने व्यक्तित्व को खुद बनाता है । गुरु वह होता है, जो अन्धकार को भी आलोकमय बना देता है ।

१४९ भूल का सुधार होते ही गुरु का अनुग्रह स्वतः मिल जाता है ।

गुरु-अनुशासन

१५० गुरु के अनुशासन बिना जीवन को निखारने वाले सारे गुण सेनापति के नेतृत्व से वंचित सेना की भांति इष्टसिद्धि के लिए अकिंचित्कर ही रहते है ।

१५१ गुरुर्वाञ्छति शिष्येषु, विकसेदात्मशासनम् ।
न वाञ्छति भवेयुस्ते, नित्यं संप्रेरिताः परैः ।।
गुरुर्बध्नाति नो जाले, मीनानिवेह मैनिकः ।
गुरुर्विहारयत्यभ्रे, पोतानिव विहङ्गमः ।।

(गुरु चाहते हैं कि शिष्यो में आत्मानुशासन का विकास हो, किन्तु शिष्य सदा दूसरो से संप्रेरित होता रहे—यह वे नही चाहते । जैसे धीवर मछलियों को जाल मे बाधता है, वैसे गुरु शिष्यो को अनुशासन में नही बाधते किन्तु जैसे पक्षी अपने बच्चो को गगनविहारी बनाता है, वैसे ही गुरु अपने शिष्यो को स्वतंत्र बनाना चाहते है ।)

गुरु-आज्ञा

१५२ शिरोरत्नमिवार्याज्ञां, धारयन्तः स्वमस्तके ।
निर्मान्तु निखिलं कार्यम्-आचार्याज्ञानुवर्तिनः ॥

(आचार्य की आज्ञा को मुकुट की भांति अपने सिर पर धारण करते हुए शिष्य आचार्य की आज्ञा के अनुसार ही अपने सारे कार्य संपादित करें ।)

१५३ हर कदम पर प्रकाश बिछता रहेगा —ऐसी सघन आस्था से ही गुरु की आज्ञा को सहजभाव से शिरोधार्य किया जा सकता है ।

१५४ गुरोर्वाक्यं प्रतीक्षेत, मनस्यामोदमादधत् ।
मुक्ताहार इवाकण्ठे, स्थापयेत् तत्समादरात् ॥

(प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक गुरु के शिक्षाप्रद वाक्यों को सुनने की प्रतीक्षा करे और उन्हे गले मे मोतियो के हार की भांति आदरपूर्वक हृदय में धारण करे ।)

१५५ गुरु-आणा प्राणा वड़ी, ताणावेजो छोड ।
स्याणा ! 'ली' में मत तजो, सात हाथ की सोड ॥

१५६ मेधाविनापि मनुजेन महामहिम्ना,
धर्तव्य एव किल मद्गुरुरुत्तमाङ्गे ।
को वा तरीतुमनमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्,
को वा भवान्तमयते गुरुमन्तरेण ॥

(मनुष्य कितना ही बुद्धिमान् तथा यशस्वी क्यो न हो, फिर भी उसे अपने सिर पर सद्‌गुरु का अनुशासन धारण करना चाहिए । क्योकि जिस प्रकार नौका के बिना केवल भुजाओ से कोई भी समुद्र पार नही कर सकता, उसी प्रकार गुरु के बिना भवसमुद्र का पार नहीं पाया जा सकता ।)

गुरु-आस्था

१५७ हर कठिन समस्या का हल गुरु की आस्था,
दिग्भ्रान्त मनुज को मिल जाता है रास्ता ।
गुरुदेव द्वीप है, शरण, प्रतिष्ठा, गति हैं,
गुरुदृष्टि जगत में सबसे बडी प्रगति है ॥

गुरु-उपकार

१५८ उठा खान से ककर रूप परीक्षक कंकर लाता,
चढ़ा सान पर चमका कर लाखों का मूल्य बढ़ाता ।
वैसे ही चमकाते शिष्यों को श्रीगुरुवर गरिमावंत,
कण-कण ले सागर के जल का कौन पा सके अन्त ॥

१५९ अगणित अनंत उपकार सदा, रहता गुरुओं का शिष्यों पर ।
कैसे प्रत्यावर्तन उसका जन्मान्तर मे भी सहज सुकर ?

१६० अतुल-अतुल उपकार सुगुरु का, आजीवन गुण गाऊं ।
मिथ्यात्वी सम्यक्त्वी अव्रत स्यूं, व्रत पथ में आऊं ॥

गुरु-उपदेश

१६१ आकर्ण्य कर्णकुहरे सुदृशीं गुरूक्ति,
लाभस्तु तत्र निजयोग्यतयैव लभ्य: ।
आम्रांकुरान् कवलयन् कटु कौति काको,
यत्कोकिल: किल मधौ मधुरं विरौति ॥

(गुरु का उपदेश सबके लिए समान होता है, फिर भी श्रोतृगण अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार ही लाभ उठा सकते है । जैसे चैत्र मे आम की मंजरियो का समान उपभोग करने पर भी कौआ कटु बोलता है और कोयल मधुर बोलने लगती है ।)

१६२ गुरु के उपदेश में बड़ा रस होता है, अमृत होता है । पर इसे जो लेना जाने, वही ले सकता है ।

गुरुकुल

१६३ देते पथदर्शन सदा, गुरुकुल मे गुरुदेव ।
पाता प्रमुदित शिष्य भी, हर शिक्षा स्वयमेव ॥
जीवन की हर वृत्ति का, रखते पूरा ध्यान ।
अनुशासित संयत सजग, बनता शिष्य महान् ॥

गुरुकृपा

१६४ बिंदु सिंधु 'तुलसी' बन ज्यावै ।
गुरुवर महर नजर जो पावै ॥

१६५ काठ संग स्यूं तिर्‌या, तिरै पत्थर भी भारी-भारी।
सुगुरु-संग स्यूं पतित-पतित, पापी निज आतम तारी ॥

गुरु-गरिमा

१६६ कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्त',
सर्वज्ञवर्णिततरस्य गुरोर्गरिम्णः।
को विस्मयोऽत्र किमुनाऽविकलं यतेत,
पुत्रः पितुर्प्रथितकर्मणि कर्मशीलः ॥
(गुरु के माहात्म्य का वर्णन सर्वज्ञो ने किया है। मैं एक असमर्थ व्यक्ति भी यदि उनकी (गुरु की) स्तवना करता हूं तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ! क्या कर्मठ पुत्र अपने पिता के द्वारा किए हुए कार्य को करने लिए निरंतर प्रयत्नशील नही होता ?)

१६७ जिण री करुणा स्यूं भजै, बिंदु सिंधु रो भाव।
सिंधु बिंदुता इतरथा, अद्‌भुत सुगुरु प्रभाव ॥

१६८ तुष्टमना गुरु गुरु करै, लघु नै पिण लव मांहि।
गुरु नै पिण लघु इतरथा, आ क्षमता गुरु मांहि ॥

१६९ आज लगे कुण पावियो, गुरु-गुण-गरिमा थाग।
तो 'तुलसी' किम तोलसी, गुरुजलधिज जलझाग ॥

१७० गुरु-गरिमा यद्यपि हुवै, अल्पज्ञान अगम्य।
भक्ति-वशवद भक्तमुख, स्खलित वाक्य भी क्षम्य ॥

गुरु-गुण

१७१ प्रमित वरण विवरण अमित, निहित हिताहित भान।
पणती वा गिणती नही, करतां गुण संख्यान ॥

१७२ मूडै आवै खावतां, थोडै में पकवान।
सदा दाल रोटी रुचै, त्यूं गुरु-गुण व्याख्यान ॥

१७३ एक एक गुण ऊपरे, कोटि-कोटि कविराज।
वरणन कर करता थकै, निज कविता रै व्याज ॥

१७४ गुरु-गुण अगणित गगन सम, मम मति परिमित मान।
अल्प अनेहा बहु विघन, क्यूं कर ह्वै अवसान ॥

गुरुता

१७५ जो गुरु अपने शिष्यो को जीवन-निर्माण के सूत्र नही दे सकते, उनकी गुरुता के आगे प्रश्न-चिह्न उपस्थित हो जाता है।

गुरुदृष्टि

१७६ गुरुदृष्टि को आराधने वाला निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है।

१७७ गुरोर्दृष्टिमनुदृष्टिरिङ्गित चेङ्गितं तथा।
विचारोऽनुविचारं स्याच्छिष्याणा दुर्गुणद्विषाम्।
चित्तवृत्तिमनुस्वीया, चित्तवृत्तिर्मतिस्तथा।
श्रीवीरप्रभुणा प्रोक्तं, आचाराङ्गे विलोक्यताम्॥

(महावीर ने आचाराङ्ग सूत्र मे कहा है कि दुर्गुणो से दूर रहने वाले विनीत शिष्य की दृष्टि, इंगित, विचार, चित्तवृत्ति और बुद्धि सदैव गुरु की दृष्टि, इगित, विचार, चित्तवृत्ति और बुद्धि का अनुगमन करने वाली होती है।)

गुरु-वचन

१७८ मार्मिक एक सुगुरु वचन, जो चाढे निज शीष।
पतित पुरुष पावन बणै, ज्यू 'आषाढ़ मूनीश'॥

१७९ प्रख्याति पीयूष की, सुणी सुणाई बात।
गुरुवच सच पीयूष है, सदा मिले साक्षात्॥

गुरु-शरण

१८० कुछ पाना है तो गुरु की शरण में जाना ही होगा।

१८१ यावन्न लब्धशरण: करुणार्णवस्य,
कर्णातिथे · सुवचसो गुरुदेशितस्य।
तावन्नरो विभवशाल्यपि नो विभाति,
यत्कोकिल: किल मधौ मधुरं विरौति॥

(जब तक मनुष्य गुरु द्वारा उपदिष्ट करुणा-गर्भित वचनो की शरण नही लेता, तब तक वैभवशाली होने पर भी शोभित नही होता। जैसे कोयल मधुरभाषिणी होती हुई भी चैत्रमास में जितनी मधुर बोल सकती है, उतनी अन्य महीनो मे नहीं।)

गुरु-शिष्य

१८२ बढ़े शिष्य की साहिबी, जिम हिम-ऋतु की रात।
तिम-तिम ही गुरु की हुवै, विश्वव्यापिनी ख्यात ।।

१८३ शिष्य के भीतर ज्ञान की धारा तभी प्रस्फुटित होती है, जब वह गुरु के प्रति सर्वात्मना समर्पित हो।

१८४ दूसरे-दूसरे सम्बन्धों में स्वार्थ जुड़ा रहता है पर गुरु और शिष्य के सम्बन्ध में कोई स्वार्थ नहीं होता।

१८५ वार्तालाप प्रसंग हो, जब भी सद्गुरु साथ।
नम्र-नयन नतशीष वर, जुड़े रहें युग हाथ ।।

१८६ गुरु लोभी चेलो भी लोभी, दोन्यू ठगां ठगाई।
पत्थर-नाव बैठकर दोन्यूं, डूबै दरिया मांही ।।

१८७ स्वार्थहीन संगीन सुगुरु की, वत्सलता वरदायी।
शिष्य-समर्पण-भाव विनय युत, शुभ सम्बन्धविधायी ।।

१८८ गुरु के प्रति समर्पित रहने वाला व्यक्ति अपनी चिंताओं से मुक्त हो जाता है। जिसकी चिंता स्वय गुरु करे, वह अपनी चिंता क्यों करे ?

१८९ अप्रसन्नो गुरुर्भूयात्, किञ्चित्कारणमाश्रयन्।
प्रसन्नीकुरुतां शिष्यो, नम्रवाक्यनिवेदनात् ।।
(किसी कारण से अगर गुरु अप्रसन्न हो जाए तो शिष्य नम्रवाक्यो द्वारा गुरु को प्रसन्न करे।)

१९० गुरु की महिमा जय-जयकार करने वालों से नहीं होती, उनके योग्य शिष्यों से होती है।

गुरु-सन्निधि

१९१ जो व्यक्ति मन, वाणी और कर्म से गुरु के निकट रहता है, वह अपनी आसक्ति को दूर कर सकता है।

१९२ साधक गुरु सान्निध्य में, निशदिन करे निवास।
तब ही उसकी साधना, पाए सतत विकास ।।
गमन-स्थान-आसन-शयन-भोजन-भाषण योग।
निशिदिन दिनचर्या रहे, गुरु-इंगित अनुयोग ।।

१६३ गुरु की सन्निधि में मिलने वाला पाथेय अनुपम होता है।

१६४ सुख के समय गुरु-चरणों में इसलिए उपस्थित होना चाहिए कि गुरु का मंगल आशीर्वाद प्राप्त हो और दुःख के समय इसलिए कि मनोवल दुर्वल न हो, घवराहट न हो।

१६५ जो व्यक्ति गुरु के सान्निध्य में रहता ही नहीं, वह ज्ञानामृत प्राप्त करने, गूढ वातों को सुनने और समझने का सुअवसर कैसे प्राप्त कर सकेगा ?

गुलाम

१६६ स्वयं के अस्तित्व से अनभिज्ञ होने के कारण ही मनुष्य कभी आग्रह का गुलाम वन जाता है, कभी क्रोध का तो कभी अहंकार का।

१६७ जो दिल से गुलाम हो जाते है, वे कभी आजादी नहीं पा सकते।

१६८ गुलामी लालच, स्वार्थ व आकांक्षा से की जाने वाली खुशामद है।

१६६ अमीरी, सुविधावादी मनोवृत्ति, व्यसन, वासना आदि का गुलाम रहने वाला व्यक्ति स्वतंत्रता का आनंद नहीं ले सकता।

२०० कोई व्यक्ति किसी का गुलाम वनना नहीं चाहता, पर तृष्णा और वासना का गुलाम कौन नहीं है ?

२०१ परिस्थितियों का गुलाम वन जाने पर कठिनाइयां खड़ी हो जाती हैं।

गुलामी

२०२ हम स्वतंत्र होकर भी अनुभवहीन गुलामी से जुड़े हुए हैं। रोग तो यह है कि उस गुलामी को गुलामी नही समझ रहे है।

२०३ गुलामी स्वयं हिंसा है।

२०४ एक वस्तु पुरानी है इसलिए ग्राह्य है और एक नई है इसलिए त्याज्य है—ऐसा सोचना दिमाग की गुलामी है।

२०५ साधुओं के सामने झुकना कोई गुलामी नहीं। गुलामी तो वहां होती है, जहां भौतिक आकांक्षा या स्वार्थ से झुकें।

२०६ काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ—ये सब गुलाम हैं। इन पर काबू रखो। गुलाम को मालिक मत बनने दो, अन्यथा स्वयं गुलाम के गुलाम बन जाओगे।

गुस्सा

२०७ गुस्से के सामने आप शांति और प्रेम का प्रयोग कीजिए, गुस्सा उलटे कदमों भाग खड़ा होगा।

२०८ जो भूल हो गई, वह गुस्सा करने से ठीक तो होगी नहीं। फिर गुस्सा करने से क्या लाभ?

२०९ एक बार का गुस्सा एक वर्ष की तपस्या को समाप्त कर सकता है।

२१० गुस्से को छूने मात्र से हानि और विनाश का कोई पार नहीं रहता।

२११ जहां गुस्सा है, वहां अभिमान अवश्य मिलेगा और जहां अभिमान है, वहां गुस्सा।

२१२ गुस्सा बिना पैसे की शराब है, जिससे व्यक्ति पागल बन जाता है।

गुस्सैल

२१३ गुस्सैल व्यक्ति का रक्त विषाक्त हो जाता है।

२१४ गुस्सैल औरों का तो अहित करता ही है पर अपना भी अनिष्ट कर लेता है।

२१५ नरक में प्राणी को एक क्षण भी शांति नहीं मिलती किन्तु इस लोक में भी जो गुस्सैल व्यक्ति हैं, उनमें और नरकवासियों में क्या अंतर है?

गृहत्याग

२१६ आसक्ति से मुक्त हुए बिना केवल गृहत्याग फलदायी और वरदायी नहीं होता।

गृहस्थ-जीवन

२१७ गृहस्थ-जीवन में भी व्यक्ति सुखी और शांत हो सकता है बशर्ते कि धनकुबेर बनने की भावना मिटे, अन्याय और अनीति के प्रति घृणा उत्पन्न हो।

२१८ गृहस्थ-जीवन में हिंसा से बचना संभव नहीं है, पर क्रूरता से बचा जा सकता है।

२१९ गृहस्थ-जीवन में तीन बातें घर की शोभा हैं—लक्ष्मी, शिक्षा और शासना।

२२० गृहस्थ-जीवन में सर्व भोगों से विरति संभव नहीं है, पर गाढ़ आसक्ति से बचा जा सकता है।

गृह-कलह

२२१ शब्दों की उदारता में कृपणता न दिखाएं तो गृह-कलह को अवकाश ही नहीं मिलेगा।

गृहिणी

२२२ बच्चों को संस्कारी बनाने से लेकर परिवार के हर पुरुष को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करने का मुख्य दायित्व गृहिणी पर ही है।

२२३ अगर घर की गृहिणी चली जाती है तो वह घर समाप्त हो जाता है।

२२४ केवल आभूषण और सौन्दर्य-प्रसाधनों का ममत्व किसी भी विवेकशील गृहिणी के लिए मृगतृष्णा है, पागलपन है।

२२५ गृहिणी अगर चाहे तो अपने घर से अनैतिकता की जड़ें उखाड़ सकती है, पाप और अन्याय के पैसों को अपने घर में आने से रोक सकती है।

२२६ जो गृहिणी संतुलित, सहिष्णु, व्यवहार में कोमल, पक्षपात-रहित व्यवहार करने वाली, मृदुभाषिणी और सबके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझती है, वह अपने पूरे परिवार के साथ तादात्म्य-भाव का अनुभव कर सकती है।

गोपनीयता

२२७ पाचन-शक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है—गोपनीय बात को पचाना।

गोहत्या

२२८ गोहत्या न केवल मनुष्य की विवेकशून्यता का प्रतीक है अपितु अपने आप पर भी प्रहार है।

गौरव

२२९ गौरव करना बुरा नही, किन्तु गर्व करना पतन का कारण है।

२३० धन-सम्पत्ति से गौरव नहीं बढ़ता। सही गौरव तो सदाचार से बढ़ता है।

गौरवशाली

२३१ यस्येन्द्रियाणि वशगानि मनो न मूढं,
रात्रिंदिवं प्रयतते स्वपरात्मसिद्धयै:।
कस्तस्य गौरवमहो विवरीतुमीशः
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

(जैसे भुजाओ से तैरकर कोई समुद्र का पार नही पा सकता, उसी प्रकार जिसकी इंद्रिया वशीभूत हो, मन मोह मे न फंसा हो, जो रात-दिन स्व-पर कल्याण के लिए सचेष्ट हो, उसके गौरव का कोई पार नहीं पा सकता।

ग्रंथि-मोचन

२३२ भीतर की गांठें यदि खोलने का प्रयत्न नही करेंगे, तो कभी भी शांति की अनुभूति नही हो सकेगी।

ग्रहणशील

२३३ ग्रहणशील मानसवाला व्यक्ति प्रकृति के कण-कण से गुण ग्रहण कर लेता है।

२३४ ग्रहणशील व्यक्ति ही असार में से सार निकालकर अज्ञानजन्य आसक्ति से अपना बचाव कर सकता है।

ग्रहणशीलता

२३५ दूसरों की अच्छी बातों को ग्रहण करने का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि हम अपने अच्छे संस्कारों को भूल जाएं।

२३६ कीचड़ में भी यदि हीरा है तो उसे निकाल लेना चाहिए।

२३७ ग्रहणशीलता एक ऐसा तत्त्व है, जो व्यक्ति को बदलाव की दिशा में प्रस्थित कर सकता है।

२३८ उपदेश में वक्ता की क्षमता का योग रहता है पर उससे भी अधिक मूल्यवान है—श्रोता की ग्रहणशीलता।

२३९ आपकी दृष्टि की तीक्ष्णता और ग्रहणशीलता की शक्ति से आप अज्ञानी के पास बैठकर भी ज्ञान लेंगे।

२४० किसी धर्म एवं चिन्तन में ग्रहणशीलता का अभाव हो जाने का तात्पर्य है—उसका विनाश।

२४१ मेरा यह विश्वास रहा है कि अच्छी बात विरोधी से भी ग्रहण करनी चाहिए।

ग्रामीण

२४२ ग्रामीण लोगों की बुराइयां स्लेट पर लिखे अक्षर के समान हैं, जो थोड़े से प्रयास से मिट सकती हैं।

२४३ ग्रामीण-जनता अपनी पसीने की कमाई को शराब, तम्बाकू, भांग, अफीम जैसी नशीली चीजों में अपव्यय कर देती है, इसीलिए अभाव की पीड़ा ज्यों की त्यों बनी रहती है।

ग्राहक

२४४ अच्छी वस्तु भी ग्राहक के बुरेपन के कारण बुरा फल देने वाली बन जाती है।

घटना

१ घटना को घटना न समझना मूर्खता है और उसमें उलझना मूढ़ता ।

२ जीवन में बहुत सारी घटनाए घटती रहती है । उनकी परिणति कैसी होगी, हम नही कह सकते । पर हर घटना से नई प्रेरणा अवश्य ली जा सकती है ।

घबराहट

३ घबराने वाला व्यक्ति कभी महान् कार्य संपादित नही कर सकता ।

४ सतत जागरूकता और पुरुषार्थ—ये दो तत्त्व किसी भी व्यक्ति को घबराहट से बचा सकते है ।

५ किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति में घबराहट हो जाए तो साधना कैसे चमकेगी ?

६ घबराना बहुत बड़ी भूल है, क्योंकि डरने वाले को सभी डराते है ।

७ कष्ट के समय घबराना अपनी शक्ति को भुलाना है ।

घाटा

८ अविश्वास सबसे बड़ा घाटा है ।

घमंड

९ घमंड करने वाला नीचा ही रहता है ।

१० घमंड मनुष्य के विवेक को नष्ट कर देता है।

११ कोई यह सोचे कि मेरे बिना कार्य नहीं हो सकता, यह व्यर्थ का घमंड है।

घमंडी

१२ घमंडी के विकास की इतिश्री हो जाती है।

१३ घमंडी व्यक्ति को अपनी गलती का अहसास नहीं होता। यदि कोई इंगित भी करता है तो उसके क्रोध का नाग फन उठा लेता है।

घर

१४ जहां आपस में प्रेम, सौहार्द, सहयोग, सुख-दुःख में साझेदारी, सहिष्णुता और ईमानदारी होती है, वह घर स्वर्ग बन जाता है।

१५ पुरुष के बिना घर का काम चल सकता है, पर जिस घर में स्त्री न हो उस घर का काम चलना मुश्किल है।

१६ पत्थर-ईंटों का घर, घर नही है, गृहिणी ही घर है।

घुटन

१७ घुटन को दूर करने का एक ही उपाय है—प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा उसे मन से निकाल दिया जाए।

१८ घुटन का घनीभूत होना ही कुंठा है।

१९ घुटन की स्थिति में व्यक्ति न तो ऊर्ध्वारोहण कर सकता है और न अनावृत आलोक से अभिमंडित ही हो सकता है।

२० कुण्ठा और घुटन साधना को निर्जीव बना देते हैं।

घूंघट

२१ घूघट समाज के लिए अभिशाप है, बहिनों के प्रति अन्याय है।

२२ आंखों मे लाज नही तो केवल घूंघट से क्या होगा ?

२३ मुझे तो घूंघट विकास का अवरोधक, कायरता का पोषक और संकीर्णता का परिचायक लगता है।

२४ आंखों के सामने जब लम्बा सा घूंघट रहेगा, तब अहिंसा की सम्यक् रूप में अनुपालना कैसे होगी ?

२५ शील की रक्षा के लिए आत्मबल के विकास की आवश्यकता है, घूंघट की नहीं।

घृणा

२६ किसी जातिविशेष या व्यक्तिविशेष के प्रति घृणा का भाव रखना मानवता का उपहास है।

२७ मनुष्य घृणा का आरम्भ किसी दूसरे से करता है और वह चलते-चलते अपने तक पहुंच जाती है।

२८ घृणा बुराई से करो, बुरे से नहीं, पाप से करो, पापी से नहीं।

२९ घृणा का प्रतिकार आतंक उत्पन्न करता है और आतंक अपनी सुरक्षा के लिए हिंसा का सहारा लेता है।

३० क्या घृणा करने वाला व्यक्ति धार्मिक है ? एक ओर उपासना और दूसरी ओर घृणा ! क्या यह योग किसी बुद्धिवादी व्यक्ति को धर्म की ओर आकृष्ट करने वाला है ?

३१ प्रेम का अभाव होता है, तभी घृणा बढ़ती है।

३२ घृणा सदा दुर्गुण स्यूं धार।
और गुणा स्यूं प्रतिपल प्यार ।।

३३ घृणा करना मानवीय स्वभाव की दुर्बलता है।

३४ परिवर्तित हो जीवन-शैली, आए नव उन्मेष।
उतरे मन से जहर घृणा का, मिट जाए संक्लेश ।।

३५ जिस व्यक्ति के अन्तःकरण में घृणा होती है, वह अहिंसा के सिद्धान्त को समझ ही नहीं सकता।

घेराव

३६ घेराव में हिंसात्मक उपकरणों का आश्रय नहीं लिया जाता, यह ठीक है। फिर भी मैं उसे अहिंसा का साधन नहीं मान सकता, क्योंकि उसमें आत्मोत्सर्ग की भावना लुप्त है।

३७ घेराव डालना अच्छी बात नहीं है, पर घेरे में रहना बहुत जरूरी है।

चंचलता

१ भविष्य के असीमित स्वप्न ही मानव के मन में चंचलता उत्पन्न करते हैं।

२ चंचल मन ही हर मानव को दर-दर भटकाता है।
मन पर संयम करने वाला पग-पग सुख पाता है॥

३ कषाय की प्रबलता में चित्त की चंचलता समाप्त नही हो सकती।

४ संकल्प को शिथिल बनाने वाली वस्तु है—मन की चंचलता।

५ मन की चंचलता के कारण हम अपने भीतर बहने वाले आनंद के प्रवाह का स्पर्श नहीं कर पाते।

६ चंचलता का मूल हेतु हमारा मन और इंद्रियां नहीं, अपितु वृत्तियां है।

७ परिजन-प्रेम घनाघन चंचल, क्यू इत्तो इतबार।
उपनय खाती जिण रो न्याती, लीन्हो शीश उतार॥

८ जब मन चंचल होता है, तब हर परिस्थिति का उस पर प्रभाव पड़ता है।

९ चंचल चित्त न तो ध्यान के लिए उपयुक्त होता है और न वीतरागता की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

१० जीवनी-शक्ति का सर्वाधिक ह्रास मन की चंचलता से होता है।

११ मन को उत्पन्न मत करो, चंचलता की उत्पत्ति ही नहीं होगी।

चंडाल

१२ हम चंडाल से घृणा करते है, छुआछूत करते है पर भीतर जो क्रोध आदि चंडाल घुसे हैं, उनसे घृणा नहीं करते।

चक्रवर्ती

१३ सच्चा चक्रवर्ती एक अकिंचन ही हो सकता है।

चक्षुष्मान्

१४ आंख मूंदकर चलने वाला परिस्थिति का सहारा लेकर चल सकता है, पर चक्षुष्मान् को तो अपने स्वतंत्र चिंतन द्वारा नियंत्रण करना सीखना चाहिए।

१५ व्यक्ति चक्षुष्मान् हो तो रास्ता दिखाने हेतु एक दीपक ही काफी है।

चतुर

१६ चतुर पुरुष चलनी के समान होते है। वे सार-सार को ग्रहण कर लेते हैं और थोथे या असार को छोड़ देते हैं।

१७ चतुर पुरुष का सुनना, कहना और समझना सामान्य व्यक्ति से भिन्न प्रकार का होता है।

१८ चतुर पुरुष विवेक की आंख को खुला रखते है, इसलिए वे कभी गलत रास्ता नही ले सकते।

चट्टान

१९ चट्टान किसी के पथ की बाधा बन जाती है और किसी के लिये एक सीढ़ी।

चमक

२० चमकने मात्र से हर पत्थर हीरा नही होता।

चमत्कार

२१ जो व्यक्ति चमत्कार के लिए शक्ति का अर्जन करता है और जादूगर या ऐन्द्रजालिक के रूप में उसका प्रयोग करता है, वह सोने के थाल में रेत डालता है, अमृत से पांव धोता है, हाथी पर ईंधन का भार ढोता है और दुर्लभ चिन्तामणि रत्न फेककर कौआ उड़ाता है।

२२ चमत्कारों ने धर्म और अध्यात्म का जितना अहित किया है, उतना शायद ही किसी ने किया हो।

२३ वाहरी चमत्कार के प्रदर्शन में फसकर व्यक्ति अपने आंतरिक ज्ञान को नष्ट कर देता है।

चमत्कारी

२४ शक्ति, भक्ति और युक्ति—ये तीन बाते जिस व्यक्ति को मिल जाती है, वह स्वयं चमत्कारी बन जाता है।

चरित्र

२५ चरित्र ही एक ऐसी ज्योति है, जिसके प्रकाश मे मनुष्य का हर कार्य संभव हो सकता है।

२६ चरित्र से तात्पर्य है कि सवेरे से लेकर रात में लेटने तक अ.पकी कोई भी क्रिया ऐसी न हो, जो किसी के लिए अनिष्ट-कर हो।

२७ जीवन का सर्वसुखद पक्ष है—चरित्र। उसकी विकासभूमि है—क्षमा और उसका परिणाम है—मैत्री।

२८ चरित्र का अर्थ है—जीवन को संयतभाव से निभाना।

२९ मानवीय एकता का एकमात्र आधार चरित्र है।

३० चरित्र अगर अस्खलित रहेगा तो संगठन अपने आप उसके पीछे आएगा।

३१ चरित्र जीवन का अंतरंग मूल्य है, पर उसकी कसौटी व्यवहार है।

३२ विचार बोलने, सुनने और समझने से जाने जाते हैं पर चरित्र बिना कुछ कहे-सुने जाना जा सकता है।

३३ चरित्र जीवन की गति है। चरित्रविहीन जीवन निर्जीव शरीर के समान है।

३४ मैं जब-जब चरित्र-विकास की बात कहता हूं, तब-तब मेरे सामने अहिंसा की प्रतिमा उभर आती है।

३५ अर्थ के अभाव में मनुष्य उतना दुःखी नहीं होता, जितना चरित्र के अभाव में होता है।

३६ जो व्यक्ति चरित्र को अपना जीवन मानता है, वह सत्यनिष्ठा और श्रमनिष्ठा से कतराकर अपने स्वीकृत सिद्धान्तों के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकता।

३७ चरित्र और शान्ति दो नहीं, एक ही सत्य की द्विरूप-अभिव्यक्ति है।

३८ जब गति के साथ चरित्र की प्रगति होती है, तब उसका स्रोत प्रतिकूल दिशा में प्रवाहित नहीं होता।

३९ अनेक धर्म और जातियां होने पर भी चरित्र एक ऐसी कड़ी है, जो सबको जोड़ सकती है।

४० मैं यह नहीं पूछता कि आप पर्व-तिथियों में व्रत करते हैं या नहीं, किन्तु इतना अवश्य पूछता हूं कि आप चरित्र की सुरक्षा कहां तक करते हैं?

४१ उपासना के आधार पर सभी धर्मों को एक मंच पर नहीं लाया जा सकता, किंतु चरित्र के आधार पर ऐसा हो सकता है।

४२ चरित्र का विकास हुए बिना योग्यता नहीं बढ़ सकती।

४३ जो व्यक्ति चरित्ररूपी पर्वत से नीचे गिर जाता है, उसके हजारों जन्म वृथा हो जाते है।

४४ सत्श्रद्धा और सद्ज्ञान के सहारे पनपने वाला चरित्र दिव्य जीवन का प्रतीक है।

४५ चरित्र का न आयात संभव है और न निर्यात।

४६ चरित्र ही वह निधि है जो सब रिक्तताओं को भरकर व्यक्ति को परिपूर्ण बना देती है।

४७ जीवन में चरित्र की प्रतिष्ठा ही धर्म का सक्रिय स्वरूप है।

४८ नौका की तरह ही आदमी के चरित्र में कभी-कभी छेद हो जाता है। यदि समय पर देखभाल न की जाए तो फिर सब कुछ ध्वस्त हो जाता है।

४९ चरित्र का कवच पहनने वाला राष्ट्र किसी भी स्थिति में असुरक्षित नहीं हो सकता।

५० चरित्र के लिए धर्मस्थान और घर दो नहीं हो सकते।

५१ चरित्र का अर्थ केवल आर्थिक बुराइयों से मुक्त होना ही नहीं है—शांति, मैत्री, समन्वय, अधिकार का अनपहरण, अनाक्रमण —ये सब चरित्र के अंग हैं।

५२ चरित्र उन्नत होता है तो व्यक्ति कभी भी हिंसक, आक्रामक और असंतुलित नहीं बनता।

५३ चरित्र नागरिकता की कसौटी है। उसके अभाव में सच्ची नागरिकता की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

५४ जिस प्रकार शरीर के लिए भूख और निद्रा आवश्यक है, उसी प्रकार जीवन के लिए चरित्र आवश्यक है।

५५ रूप और चरित्र की प्रतिद्वंद्विता में पहला स्थान चरित्र को मिलता है।

५६ चरित्र का अंकन व्यावहारिक प्रामाणिकता के द्वारा ही किया जा सकता है।

५७ जल के अभाव में अन्न खाना अत्यन्त हानिकारक और अनुतापकारक होता है। इसी प्रकार चरित्र के अभाव में ज्ञान के प्रसार का परिणाम अनिष्टकर होता है।

५८ चरित्र-निर्माण का ठोस कार्य दो व्यक्ति ही कर सकते हैं— गुरु और मां।

५९ व्यक्ति की सबसे बड़ी पहचान है—उसका अपना जीवन। उसकी सबसे बड़ी संपदा है—उसका अपना चरित्र।

६० चरित्र ही एक ऐसा तत्त्व है, जो किसी भी धर्म, वर्ग, जाति आदि के लिए विवादास्पद नहीं है।

६१ व्यक्ति के मूल्यांकन की कसौटी उसकी आकृति और वेशभूषा नहीं, चरित्र है।

६२ जिस प्रकार बिना नींव के मकान खड़ा नही रह सकता, उसी प्रकार बिना चरित्र के धर्म नहीं टिक सकता।

६३ चरित्र को पुष्ट करने के लिए करणीय और अकरणीय का विवेक अपेक्षित है।

६४ कुछ लोगों की धारणा है कि कम्युनिस्टों का राज्य होगा तो धर्म-कर्म समाप्त हो जाएगा। पर मैं विश्वास के साथ कहता हूं कि चरित्र-धर्म को रोकने की शक्ति किसी में है ही नहीं।

६५ शरीर में रीढ़ की हड्डी का जो स्थान है, वही स्थान जीवन में चरित्र का है।

६६ चरित्र के अभाव में जनतंत्र का सौन्दर्य समाप्त हो जाता है।

६७ समस्त रचनात्मक कार्यों का आधार चरित्र ही है।

६८ चरित्र के अभाव में ही राष्ट्रीयता की कमी होती है। अतः मूल समस्या राष्ट्रीयता की नहीं, चरित्र की है।

६९ चरित्र का एक भारी कलंक है—व्यसन।

७० शोषण, अन्याय, असहिष्णुता, आक्रमण, दूसरों के प्रभुत्व का अपहरण या उसमें हस्तक्षेप और असामाजिक प्रवृत्तियां—ये सब चरित्र के दोष है।

७१ चरित्र-सम्पन्नता के बिना उच्चपद जीवन के लिए भारभूत है।

७२ नैतिकता शून्य चरित्र एक कल्पित अयथार्थ से अधिक कुछ नही हो सकता।

चरित्र-निर्माण

७३ जीवन की कला चरित्र के निर्माण से निखरती है।

७४ यदि चरित्र का निर्माण हो जाता है तो बाकी सारे निर्माण सही हो जाते हैं। चरित्र का निर्माण नही होता है तो हर निर्माण विघातक बन जाता है।

७५ यदि दृष्टिकोण स्वस्थ और संतुलित रहे तो चरित्र-निर्माण में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती।

चरित्रनिष्ठ

७६ जब तक व्यक्ति चरित्रनिष्ठ नहीं बनता, तब तक वह मानव अवश्य है, पर उसमें मानवता के संस्कार नहीं आते।

७७ शस्त्रों में निष्ठा रखने वाला चरित्रनिष्ठ नही हो सकता।

७८ चरित्रनिष्ठ बनने के लिए यह आवश्यक है कि जो स्वयं को प्रतिकूल लगे, जिससे स्वयं को पीडा हो, वैसा आचरण दूसरों के प्रति भी न करे।

७९ एक भी व्यक्ति चरित्रनिष्ठ बनता है, उससे समग्र मानव-जाति लाभान्वित होती है।

चरित्रनिष्ठा

८० चरित्रनिष्ठा का अर्थ है—जीवन को आध्यात्मिक मूल्यों के अनुरूप ढालना, विषम परिस्थितियों में भी अपनी आस्था को अविचल रखना।

८१ चरित्रनिष्ठा जागृत चेतना का प्रतीक है।

८२ चरित्रनिष्ठा के अभाव में अन्य सारी विशेषताए गौण हो जाती हैं।

८३ निष्ठा के अभाव में कोई भी स्थिति व्यक्ति को विचलित कर सकती है।

चरित्रबल

८४ चरित्रबल जीवन के अंधियारे गलियारों में प्रकाशस्तम्भ है और है जीवन के मूल्यों का स्थायी मानदण्ड।

८५ जहां चरित्रबल है, वहां अन्य साधनों के अभाव में भी पौरुष मूर्त्तिमान रहता है तथा आत्मबल कभी भी तिरोहित नहीं होता।

८६ चरित्रबल की क्षीणता मे व्यक्ति की सारी शक्तियां क्षीण हो जाती है। चरित्र की आभा से दीप्त जीवन की एक अलग ही छवि होती है।

८७ विना चरित्रबल के कोई भी सस्था अधिक दिनो तक नही चल सकती।

८८ चरित्रबल से क्षीण व्यक्ति स्वतन्त्र नही हो सकता।

८९ चरित्रबल जिसके पास होता है, वह न्यूनतम साधन-सामग्री से भी नए कीर्तिमान स्थापित कर सकता है।

९० चरित्रबल के अभाव में सैन्यबल, अर्थबल और जनबल राष्ट्र की उन्नति और अखण्डता में सहयोगी नही बन सकते।

चरित्रवान्

९१ कोई चाहे कितनी भी उपाधियों से अलंकृत क्यों न हो, परन्तु यदि वह चरित्रवान् नहीं है तो कुछ नहीं है।

९२ अकेला होना हुआ भी चरित्रवान् कभी भयभीत नहीं होता।

९३ जो स्वयं चरित्रवान् नही है, वह दूसरो को चरित्रवान् नही बना सकेगा।

९४ जैसे खाद्य पदार्थों में मिलावट करने वाले को चरित्रवान् नहीं कहा जा सकता, वैसे ही आणविक अस्त्रों का निर्माण करने वालों को भी चरित्रवान् नहीं कहा जा सकता।

चरित्र-विकास

९५ चरित्र-विकास के अवशेष ही भारत का शिर ऊंचा किए हुए हैं।

९६ बुराई के प्रति प्रकम्पन व्यक्ति को चरित्र-विकास की प्रतिस्पर्धा में आगे बढ़ा देता है।

९७ कुर्सी और सत्ता को पाने के लिए जितना परिश्रम किया जाता है, उतना परिश्रम चरित्र-विकास के लिए किया जाए तो चरित्र के आने में समय नहीं लगेगा।

९८ चारित्रिक विकास के बिना ज्ञान अपनी पूर्णता प्रकट नहीं कर पाता।

९९ जब तक व्यक्ति का नैतिक और चारित्रिक विकास नहीं होगा, तब तक स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण नहीं हो सकता।

चरित्रहीन

१०० चरित्रहीन हजार पुस्तकें पढकर भी अपने को प्रकाश से नहीं भर सकता।

१०१ चरित्रहीन व्यक्ति का कर्म पवित्र नहीं रह सकता, विचार स्पष्ट नहीं हो सकता, श्रद्धा अप्रकम्प नहीं रह सकती और सहिष्णुता टिक नहीं सकती।

१०२ अनपढ़ चरित्रहीन की अपेक्षा पढ़ा-लिखा चरित्रहीन अधिक अनाचार फैलाएगा।

१०३ चरित्रहीन श्रद्धालु व्यक्ति चक्षुष्मान् होने पर भी पगु होता है।

१०४ चरित्रहीन व्यक्ति धन, वैभव, सत्ता आदि सब कुछ प्राप्त करके भी दरिद्र का दरिद्र ही रह जाता है।

१०५ चरित्रहीन व्यक्ति अपना विश्वास खो देता है और अपनी छवि को कलुषित बना लेता है।

१०६ चरित्रहीन व्यक्ति अपने भगवान् की छवि को भी धूमिल कर देते हैं।

१०७ कम पढा-लिखा भी यदि चरित्रवान् है तो उसकी प्रतिष्ठा हो जाती है।

चरित्रहीनता

१०८ अणुवम और उद्‌जनवम उतने प्रलयंकारी नहीं है, जितनी प्रलयंकारी है—चरित्रहीनता और विचारों की संकीर्णता। वम का निर्माण भी तो कलुषित विचारों का ही परिणाम है।

१०९ जिस समाज या राष्ट्र में नीति और चरित्र का पक्ष प्रबल होता है, वह समाज या राष्ट्र कभी चरित्रहीनता की समस्या से आक्रान्त नहीं हो पाता।

११० चरित्रहीनता सबसे बड़ी परतंत्रता है।

१११ अगर चरित्रहीनता के विरुद्ध सामूहिक आवाज न उठाई गई तो भय है कि नैतिकता के अवशेष भी नष्ट न हो जाएं !

११२ किसी व्यक्ति के प्रति क्रूरता का व्यवहार तथा उसे धोखा देने और गिराने की मनोवृत्ति चरित्रहीनता की प्रतीक है।

११३ शिक्षा के क्षेत्र में उभरने वाली समस्या का कारण चरित्रहीनता है।

११४ पैसा अधिक खाकर काम कम करने की मनोवृत्ति चरित्रहीनता की फलश्रुति है।

चर्चा

११५ मैं ज्ञानवृद्धि के लिए होने वाली चर्चा को सदा स्वीकार करता हूं, किंतु मल्लयुद्ध के रूप में होने वाले शास्त्रार्थ के लिए तैयार नहीं हूं।

११६ जहां जय-पराजय का प्रश्न है, वहां चर्चा अहिंसक नहीं रहती।

चलचित्र

११७ यदि चलचित्रों द्वारा अश्लीलता और कामुकता का प्रसार होना चालू रहा तो देश की नैतिक अधोगति सुनिश्चित है।

चांद

११८ ग्रह नक्षत्र चमकता तारा, तारां री रमझोल।
पिण अम्बरियो सूनो लागै, नहीं चांद चमकोल ॥

चातुर्य

११९ चातुर्य कोई बुरी चीज नहीं है। वह बुरी तब बनती है, जब कुटिलता, कपट और वंचना का रूप ले लेती है।

१२० सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में चातुर्य चल सकता है, किंतु अध्यात्म के क्षेत्र में ऐसा संभव नहीं है।

चारित्र

१२१ जिससे पदार्थों से उपरति और आत्मा में रति होती है, वही चारित्र है।

१२२ चारित्र के अभाव में ज्ञान और दर्शन निष्क्रिय रह जाते है।

चारित्रिक पतन

१२३ चारित्रिक पतन अवस्था से पूर्व ही मनुष्य को वृद्ध बना देता है।

१२४ हिंसा और परिग्रह की छाया में जो विकृतिया पनप रही हैं, उनमें सबसे बड़ी विकृति है—चारित्रिक पतन।

१२५ आर्थिक स्वावलम्बन व्यक्ति की अस्मिता को स्वतंत्र पहचान देने में सहायक बनता है, किंतु चारित्र की कीमत पर मिलने वाला आर्थिक स्वावलम्बन घोर पतन का रास्ता है।

१२६ चारित्रिक पतन के प्रमुख कारण है—

१ चारित्रिक शिक्षा और साधना का अभाव
२. वैयक्तिक दृष्टिकोण
३. नियंत्रण-शक्ति का अभाव
४. बड़प्पन के कृत्रिम मानदण्ड
५. विलासपूर्ण जीवन

१२७ घोर चारित्रिक पतन, सब ओर बढ़ता जा रहा।
सत्य का सूरज स्वय पर, आवरण है पा रहा॥

चार्वाक

१२८ चार्वाक का कथन है कि अतीत व्यतीत है, भविष्य अंधकार में है, अतः वर्तमान ही सब कुछ है।

१२९ चार्वाक नही चिन्तन देता, साम्प्रतिक सुखों का आश्वासन,
है केवल एक प्रलोभन-सा, इसमें न दार्शनिक तत्त्व-मनन।
सैद्धान्तिक सबल प्रमाणों से, जाती है जड़ जिसकी खिसकी,
औदार्य भारती सस्कृति का, दर्शन में गणना की इसकी॥

चाल

१३० व्यक्ति के चलने का ढंग ही सूचित कर देता है कि वह साधारण व्यक्तियों से भिन्न कोई विशिष्ट साधक है।

चालाकी

१३१ चालाक के साथ भी चालाकी मत करो, पर उसकी चालाकी अवश्य समझो।

चाह

१३२ मेरी राह मे कोई भी दुःख और प्रतिकूलता न आए—यह चाह ही अपने आप में भूल-भरी है, साधना के प्रतिकूल है।

१३३ पुष्ट चाह का निर्माण होने के बाद व्यक्ति परिस्थिति से प्रभावित नहीं होता, किन्तु उसको मोड़ देता है।

१३४ चाह जब प्रबल होती है तो उसे राह भी मिल जाती है। पर इसके लिए तीन बातों का होना आवश्यक है—लक्ष्य की स्पष्टता, चिन्तन का अनाग्रह और समय पर जीवन की दिशा को मोड़ने का साहस।

१३५ जहां चाह नही है, वहां चिन्ता भी नहीं है।

चिंतक

१३६ सही चिंतक वह है, जो प्रत्येक विचार पर गहराई से चिंतन करता है।

चिंतन

१३७ ससार मे जहां कही भी अच्छे कार्य हुए हैं, उनकी पृष्ठभूमि मे चिंतन का हाथ रहा है।

१३८ कार्य के स्थायित्व के लिए चिंतन अपेक्षित है और चिंतन के लिए धैर्य।

१३९ बिना चिन्तन कार्य करने पर जो कठिनाइयां आती हैं, वे चिन्तनपूर्वक कार्य करने से टल जाती है।

१४० उद्देश्यपूर्ण सफल जीवन जीने के लिए गम्भीर चिंतन की अपेक्षा को नकारा नहीं जा सकता।

१४१ मनुष्य की जीवनशैली उसके चिंतन पर निर्भर है। व्यक्ति की शरीर-संरचना, कार्यपद्धति और व्यक्तित्व की निर्मिति का आधार भी उसका चिंतन है।

१४२ आज चिंतन का उपयोग पदार्थ को समझने या उसको बदलने में हो रहा है पर होना चाहिए अपने आपको समझने के लिए।

१४३ आदमी जैसा सोचता है, वैसा ही उसके साथ घटित हो जाता है।

१४४ मनुष्य अनागत का पुजारी है। वह आगत को अनदेखा करके भी अनागत को संवारना चाहता है—यह चिन्तन का अधूरापन है।

१४५ किसी भी अच्छे चिंतन की सार्थकता उसके आचरण में है।

१४६ बुरे चिंतन से दूसरे की हत्या हो या न हो, अपनी हिंसा तो होती ही है।

१४७ जिस व्यक्ति की चिंतन की खिड़कियां सदा खुली रहती है, वह सापेक्ष दृष्टिकोण को विकसित कर सकता है।

१४८ सही चिन्तन कहीं से मिले, उसे स्वीकार करने में हित की ही संभावना रहती है।

१४९ वही चिंतन स्वस्थ और फलदायी हो सकता है, जो विवेकपूर्ण और तटस्थवृत्ति से किया जाए।

१५० चिन्तन की स्वतन्त्रता न हो तो श्रद्धा जड़ बन जाती है और श्रद्धा विकसित न हो तो चिन्तन उच्छृंखल बन जाता है।

१५१ जहा चिंतन रूढ़ हो जाता है, वहां प्रगति के दरवाजे बन्द हो जाते है।

१५२ चिंतन का स्तर व्यक्ति के लक्ष्य, स्वभाव और वातावरण के अनुरूप उन्नत और अवनत होता रहता है।

१५३ अति कल्पनावादी चिन्तन हवाई उड़ान भर सकता है, पर यथार्थ का ठोस धरातल उसे उपलब्ध नही होता।

१५४ किसी भी परिस्थिति पर चिंतन किए बिना उसे स्वीकार कर लेना चिन्तनशक्ति का दारिद्र्य है।

१५५ जो व्यक्ति चिन्तन की ऊंचाई तक पहुंच जाते है, वे किसी भी स्थिति में दु:ख का गहरा संवेदन नहीं करते।

१५६ चिन्ता नही, चिन्तन करो, व्यथा नहीं, व्यवस्था करो, प्रशस्ति नही, प्रस्तुति करो।

१५७ जिसकी चिन्तन-धारा विषम है, वह सबके प्रति समानता की अनुभूति नहीं कर सकता।

१५८ अपने चिन्तन पर सत्य का विश्वास होता है, पर दूसरे का चिन्तन सत्य नही, इसका आधार क्या?

१५९ जो व्यक्ति सही ढग से सोचना सीख लेता है, वह स्वय शक्ति को उपलब्ध हो जाता है।

१६० व्यक्ति को चिन्तन के क्षेत्र में कभी बूढ़ा नही होना चाहिए।

१६१ एकांगी चिंतन सत्य नहीं हो सकता। जो समग्र है, सर्वांगीण है, वही सत्य है।

१६२ जो बीत गया, उसका चिंतन करना व्यर्थ है। जो बीता, उसके बारे में यही सोचना सार्थक है कि वह सफल बीता या असफल।

१६३ संकल्प के अभाव में केवल चिन्तन अकिंचित्कर हो जाता है।

१६४ जो व्यक्ति परिणामदर्शी नही होते, वे स्वस्थ चिन्तन नही कर सकते।

१६५ चितन के साथ निर्णय करना अपेक्षित है, अन्यथा चिन्तन भारभुत बन जाता है।

१६६ चितन की स्वतंत्रता व्यक्तित्व-विकास का महत्त्वपूर्ण अंग है।

चिंता

१६७ चिन्ता हजार सुखों की उपस्थिति में भी अपना प्रभाव क्षीण नही होने देती।

१६८ चिंता तब होनी चाहिए जब हृदय दुर्बल, व्यथित, एवं कायर हो जाता है, अन्यथा जो निश्चित हैं उनके लिए चिंता क्यों ?

१६९ मनुष्य जितना बीमारी से नही टूटता, उतना चिंता से टूट जाता है।

१७० मैं सफलता-असफलता की चिंता नही करता। मैं उसी की चिंता करता हूं जो मुझे करना है।

१७१ भविष्य की चिंता अतीत की स्मृति से भी अधिक खतरनाक है।

१७२ जो व्यक्ति प्रशंसा, व्यथा और चिंता में उलझ जाता है, वह कुछ नहीं कर सकता।

१७३ स्लेट पर तभी लिखा जाता है, जब वह साफ हो। मस्तिष्क नया ग्रहण तभी करता है, जब वह चिंताओं से मुक्त हो।

१७४ हिंसा का होना चिंता का कारण नही है। चिंता का कारण है—अहिंसा की तुलना में हिंसा का शक्तिशाली होना।

१७५ केवल चिंता करने से ही किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इसके लिए सही तरीकों से उचित प्रतिकार एव विवेक की आवश्यकता होती है।

१७६ चिंता मनुष्य को असमय में बूढ़ा बना देती है।

चिंता और चिंतन

१७७ चिंता से एक भी समस्या नही सुलझती, जबकि चिंतन के बल पर व्यावहारिक जीवन की शत-प्रतिशत समस्याएं सुलझ जाती है।

१७८ चिंता भविष्य की होती है और अतीत की भी, किंतु चिंतन सदा वर्तमान के आसपास चलता है।

चिकीर्षा

१७९ पुरुषार्थ का द्वार खटखटाने के लिए चिकीर्षा—कुछ करने की इच्छा का होना आवश्यक है, अन्यथा व्यक्ति किसी भी दिशा में आगे नहीं बढ़ सकता।

चित्त

१८० चित्त पर अंकुश रखने की बात केवल आध्यात्मिक स्तर पर ही नही, सामाजिक स्तर पर भी बहुत उपयोगी है।

१८१ चित्त की ऊर्जा एक दिशा में प्रवाहित होती है, तब वह लक्ष्य तक पहुंचती है। चारों दिशाओं में छितरी हुई धारा कभी भी प्रवाह नहीं बन पाती और प्रवाह बने बिना कोई भी धारा समुद्र तक नहीं पहुंच पाती।

चित्त-समाधि

१८२ चित्त की समाधि से सत्य उपलब्ध होता है और सत्योपलब्धि से समस्या समाहित होती है।

चुगलखोर

१८३ चुगलखोरों की भनभनाहट से क्षुद्र आत्मा वाले व्यक्ति ही भ्रष्ट हो सकते है। स्थिर आत्मा वाले तो और अधिक गंभीर हो जाते है।

चुगली

१८४ चुगली जो मानव मुख उगली।
दुनिया री सब दुविधा चुग ली।।

चुनाव

१८५ अभाव और मोह को उत्तेजना देकर लोकमत प्राप्त करना चुनाव की पवित्रता का लोप है।

१८६ गलत बुनियाद पर चुनाव में विजयी लोग क्या देश को स्वस्थ प्रशासन दे सकते हैं ?

१८७ चुनाव के समय जो धांधली चलती है, उससे लोकतन्त्र की आत्मा कराह उठती है।

१८८ चुनाव लड़ना कोई बुरी बात नहीं है, किंतु येन-केन-प्रकारेण चुनाव जीतना मानवता का उपहास है।

१८९ चुनाव राष्ट्रीय चरित्र का प्रतिबिम्ब है।

१९० जहां चुनाव दंगल का रूप ले लेता है, वहां सहयोग और सद्-भावना की बात छूट जाती है।

१९१ जैसे अनाज की वृद्धि के लिए अच्छा बीज आवश्यक है, वैसे ही जनतांत्रिक मूल्यों को विकसित करने के लिए अच्छा चुनाव जरूरी है।

१९२ चुनाव का व्यय न बढ़े—यह तो गौण बात है, मौलिक बात यह है कि उसे जातीयता, साम्प्रदायिकता आदि विषैले तत्त्वों से कैसे मुक्त रखा जाये?

१९३ चुनाव जनतत्र का प्राण है।

१९४ चुनाव का महत्त्वपूर्ण मुद्दा होना चाहिए—राष्ट्र को नैतिक विकास की दिशा में आगे बढ़ाना, उसकी एकता और अखंडता को कायम रखने का वातावरण निर्मित करना।

१९५ चुनाव यदि स्वस्थ ढंग से होता है तो जनतंत्र शक्तिशाली बनता है और यदि उसमें भ्रष्टाचार, हिसा आदि रोग के कीटाणु पनपते है तो जनतंत्र का शरीर भी रुग्ण हो जाता है।

१९६ चुनाव का समय देश के भविष्य-निर्धारण का समय है, किंतु ऐसे समय में जन-नेताओं की आंखों में अधिक वोट बटोरने के रगीन सपने तैरते है।

१९७ लोगों मे चुनाव के लिए पार्टी का टिकट प्राप्त करने की जितनी उत्सुकता होती है, उतनी उत्सुकता यदि उसके योग्य बनने की हो तो कितना अच्छा काम हो सकता है!

चुनावशुद्धि

१९८ चुनाव की शुद्धि हर श्वास में शुद्धि लाती है और इसकी विकृति हर श्वास में विकार।

१९९ मेरी दृष्टि में चुनावशुद्धि के तीन ही विकल्प है। पहला—हम विजयी बनें या न बने पर चुनाव में भ्रष्ट तरीकों का प्रयोग नही करेंगे। दूसरा—सत्तारूढ़ दल चुनाव शुद्धि के लिए संकल्पबद्ध हो, तीसरा—जनमत जागृत हो।

२०० चुनाव परम्परा मे विकृति नहीं होगी तो योग्य व्यक्ति अनायास ही प्रकाश में आ जाएगा।

२०१ जब तक जनता की मूर्खता और मूढ़ता दूर नही होगी, चुनाव के नाम पर होने वाले दंगल को रोकना संभव नहीं है।

चुनौती

२०२ चुनौतियो से घबराकर हम पीछे हट गए तो कभी आगे बढ़ने का साहस नही जुटा पायेंगे।

२०३ दुनिया के सामने जो भी चुनौतियां है, उनका एक मात्र हल सयम है।

२०४ संगठित और व्यवस्थित जीवन ही चुनौतियों को झेल सकता है।

चुभन

२०५ मन की चुभन प्राणो को झकझोर देती है।

चुस्त : सुस्त

२०६ चुस्त व्यक्ति सफलता को प्राप्त करता है, पर सुस्त सब कुछ खो देता है।

चूक

२०७ कभी न हो पद, यश की लिप्सा, और नाम की भूख।
करो कबूल बिना हिचकिच के, जो हो अपनी चूक।।

चेतना

२०८ जिस व्यक्ति की चेतना उद्‌बुद्ध और जागृत हो जाती है, उसका व्यक्तित्व स्वयं निखार पा लेता है।

२०९ चेतना के ऊर्ध्वारोहण का फलित है—मन की शांति, तनाव-मुक्ति, भारमुक्ति और जीवन की सार्थकता।

२१० जिस प्रकार सांप केंचुली से मुक्त होकर उसकी तरफ नही देखता, उसी प्रकार मनुष्य भी अपने भूलों-भरे अतीत से सर्वथा मुक्त हो जाए तो चेतना की गहराई में स्वत: प्रवेश हो जाता है ।

२११ इंद्रियां तो ज्ञान के लिए सहारा मात्र है, यदि इनमें चेतना न हो तो हमें क्या ज्ञान करा सकेंगी ?

२१२ जब तक केन्द्र में पदार्थ के स्थान पर चेतना प्रतिष्ठित नही होगी, मनुष्य के द्वारा मनुष्य का उपहास होता रहेगा ।

२१३ चेतना के केन्द्र में विस्फोट होने से ही सुषुप्ति टूटती है और व्यक्ति अप्रमत्त बनता है ।

चैतन्य

२१४ अत्राण के वातावरण मे शाश्वत सहचारी चैतन्य ही हमारा त्राण है ।

२१५ एक क्षण के लिए होने वाला चैतन्य का संस्पर्श भी जीवन की स्मरणीय उपलब्धि बन सकता है ।

२१६ चैतन्य के अभाव में केवल शव का भार कब तक ढोया जाना संभव है ?

२१७ चैतन्य और आनंद का स्वाभाविक सम्बन्ध है । जहां चैतन्य है, वहां आनंद है । जहां आनंद है, वहा चैतन्य है ।

२१८ जहां नहीं चैतन्य वहां पर, सत्य सदा सोता है ।

२१९ कोई व्यक्ति सहज ही चैतन्य के अनुभव मे चला जाता है और कोई प्रेरणा पाकर, पर चैतन्य का बोध हुए बिना उसके विकास का स्वप्न नहीं देखा जा सकता ।

२२० चैतन्य का निर्माण चैतन्य से ही होना संभव है ।

चैतन्य-जागरण

२२१ जिसका चैतन्य जागृत नही होता, वह शक्ति के अक्षय स्रोत को अपने भीतर समेटे हुए भी उसका उपयोग नही कर सकता ।

२२२ केवल अध्यात्म ही नहीं, जीवन के समस्त मूल्यों की नई सर्जना के लिए हमें अपनी चेतना को जागृत करना होगा।

२२३ अन्तर्यात्रा हो यदा, चंचल चित्त प्रशान्त।
अन्तर्मुखता से सदा, बनता नर निर्भ्रान्त॥
भीतर हो जब चेतना, भासित सहज स्वभाव।
रहे निरन्तरता अगर, हट जाता परभाव॥

२२४ चैतन्य के जागरण से ही ज्ञात हो सकता है कि मनुष्य अनन्त शक्ति का स्रोत है।

चैतन्य-विकास

२२५ 'कोऽहं' की 'सोऽहं' में परिणति चैतन्य-विकास की उत्कृष्ट संभावना है।

२२६ सुविधाओं में चैतन्य का उतना विकास नहीं होता, जितना कठिनाइयों में होता है।

२२७ चैतन्य-विकास की दिशा में पदन्यास करने वाले व्यक्ति को सर्वप्रथम मन को शांत बनाना होगा।

२२८ जो व्यक्ति एक सीमा तक चेतना का विकास कर लेता है, उसके जीवन में व्रत सहज उतर आते हैं।

चोट

२२९ जिसे गढ़ा जाना है, उस पर चोट होगी ही। जो गुरु की चोटें सह लेगा, वह बन जाएगा।

२३० जब हमें चोट बुरी लगती है तो हम दूसरों को चोट कैसे पहुंचा सकते हैं?

चोर

२३१ जिसने द्रव्य उठाया नहीं, ताले तोड़े नहीं, फिर भी जो उपकार को भूल जाए, वह चोर है।

२३२ विवेक जाग जाने के बाद कोई भी व्यक्ति चोर बना रहे, यह संभव नहीं है।

२३३ जो जरूरत से अधिक रखे, वह चोर है।

२३४ चोरी करने वाला, भले ही वह छोटी ही चोरी क्यों न करता हो, प्रतिपल भयभीत रहता है।

२३५ चोरी करने वाले को चोरी करने से पहले और पीछे अपने बचाव के लिए अनेक कल्पनाएं करनी पडती हैं, पर जो चोरी नही करता, उसकी नीद में कौन बाधक बन सकता है?

२३६ क्रूर काम है पर-धन हरणो, चोर बाज दुर्गति संचरणो।
वरणो अजश महान, तीजो पाप अदत्तादान।।

चोरबाजारी

२३७ चोरबाजारी व्यापारी वर्ग के लिए घोर कलक है।

२३८ इन्क्वायरी की चिंता उसको होती है, जो चोरबाजारी करता है।

चोरी

२३९ हिंसा ही अर्थ से संयुक्त होकर चोरी बन जाती है।

२४० कोई देखे या नही, यदि मन से भी मर्यादा का उल्लघन होता है तो चोरी ही है।

२४१ अपनी जिम्मेदारी से दिल चुराना चोरी है।

२४२ अप्रामाणिक आचरण भी चोरी का ही एक प्रकार है।

२४३ आत्मशक्ति री वंचना, परधन-हरण प्रयास,
राजदण्ड, जग भंडना, विलय हुवै विश्वास।

२४४ अधिक ब्याज लेने को भी मैं चोरी मानता हूं।

२४५ चोरी कर तस्कर गंगा में, सौ-सौ गोता खालै।
तो भी पड़े तुरत हथकड़ियां, उपनय ओ अजमालै।।

२४६ स्वामी की अनुमति के बिना किसी की कोई वस्तु लेना चोरी है।

२४७ एक समय था भारत वाले नही कही रखते थे ताले।
अब जूतों पर भी रखवाले।।
यह कैसा विषम जमाना, मत मानव मन ललचाना।
है चोरी पाप पुराना।।

२४८ मृषावाद चोरी रो भाई, सहवर्ती हद हेज सदाई।
हिंसा बहन समान, तीजो पाप अदत्तादान ॥

२४९ चोरी का मतलब सिर्फ यही नहीं कि किसी की तिजोरी तोड़कर पैसे उड़ाना। दूसरों के अधिकारों को छीनना और शोषण करना भी चोरी है।

२५० मिलावट करना चोरी का ही एक प्रकार है, क्योंकि मिलावट करने वाला ग्राहक को वही चीज नही देता, जो वह पैसे के बदले में लेना चाहता है।

२५१ चोर-वृत्ति का मूल हेतु संग्रहपरक मनोवृत्ति है।

२५२ हमें चोर पर आक्रमण नही करना है, चोरी को खत्म करना है।

२५३ चोरी के साथ वृत्तियों का गहरा अनुबंध है। इसमे वस्तु गौण है और वृत्ति प्रधान है।

२५४ चोरी न सिर्फ नैतिक अपराध है अपितु सामाजिक और राष्ट्रीय अपराध भी है।

२५५ सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो बिना श्रम का पैसा प्राप्त करना भी चोरी है।

२५६ दूसरे की वस्तु उठाने वाला उसके मन को चोट पहुंचाता है इसलिए चोरी हिंसा है।

२५७ सामाजिक व्यवस्था का अतिक्रमण चोरी है।

२५८ चोर को चोरी करने हेतु प्रेरित करना और सहयोग देना भी चोरी का एक अंग है।

२५९ सचमुच कायरता है चोरी, ऊंची श्रेणी की कमजोरी।
अकर्मण्यता है यह चोरी, नीतिहीनता रिश्वतखोरी ॥

२६० चोरी करने वालों की ओर सबका ध्यान जाता है, किन्तु मनुष्य चोर क्यो बनता है? इस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता।
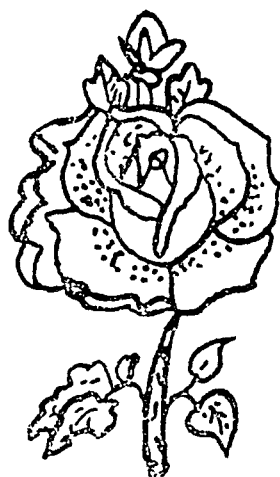
छद्म

१ पर अहित करण जो ध्यावै, निज स्वार्थ सिद्धि रै दावै ।
चाहे ज्यूं छद्म छिपावै, फिर कर मल-मल पिछतावै ।।

छलना

२ जब तक मन में छलना होती है, व्यक्ति के आगे-पीछे संदेह के नाग फन उठाए रहते हैं ।

३ छलना एक अस्त्र है । इस अस्त्र से किसी अन्य व्यक्ति की घात होती है या नही परन्तु इसका प्रयोग करने वाला निश्चित रूप से आहत होता है ।

४ मनुष्य जब धर्म से शून्य होता है, तब उसमें छलना पनपती है ।

छात्र

५ छात्रावस्था जीवन-निर्माण की उर्वर-भूमि है । इसमे वपन किया गया बीज शतशाखी के रूप में फलित होता है ।

६ मैं धन-दौलत को देश की वास्तविक सम्पत्ति नहीं मानता । वास्तविक सम्पत्ति है—उसकी छात्र-छात्राएं ।

७ छात्रों का जीवन संधि-वेला है । इसमें अपने आपको संभाल-कर रख लिया जाये तो भविष्य के लिए गहरा संवल प्राप्त हो सकता है ।

८ कच्ची टहनी को चाहे ज्यों मोड़ा जा सकता है। कच्चे वर्तन सुयोग्य हाथों से सुडौल और सुन्दर वनाये जा सकते है। ठीक उसी तरह छात्र-जीवन को भी सुसंस्कृत किया जा सकता है।

९ आज देश में बड़ी समस्या, छात्रों का आतंक।
यह उच्छृंखलता विद्या का है, सबसे वड़ा कलंक॥

१० छात्रजीवन बीज-रूप है, यदि वीज को संभालकर न रखा जाए तो उसकी उत्पादन शक्ति नष्ट हो सकती है।

११ छात्रजीवन एक ऐसी अवस्था है, जिसमें समाज, देश और विश्व के भावी कर्णधारों का निर्माण होता है, उन्हें सुसंस्कारी वनाया जाता है और उन्हें मानवता का पाठ पढ़ाया जाता है।

छिद्रान्वेषण

१२ पात्रता और ग्राहकता से कही भी तत्त्व मिल सकता है पर छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति से तो प्राप्त हुआ भी खो दिया जाता है।

१३ छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति व्यक्ति को अपने नैतिक स्तर से च्युत कर देती है।

१४ छिन-छिन छिद्र गवेषण करणो।
ओ नित रो धंधो अघ-भरणो॥

१५ छिद्रान्वेषण की नीति समाज को खोखला वना देती है।

१६ दलवदली के दल-दल में फस, करो न खीचातान।
छिद्रान्वेषण एक-दूसरे, का करता नुकसान॥

छिछलापन

१७ जो छिछली सतह पर तैरता है, उसके हाथ में सीप और शंख के सिवाय और आ भी क्या सकता है ?

१८ छोटी-छोटी वातों को लेकर बाल की खाल उतारना छिछलापन है।

छिपाव

१९ व्यक्ति दूसरों से अपनी प्रवृत्तियों को छिपा सकता है, किन्तु मन से छिपी चोरी नहीं हो सकती।

२० छिपाव वहां है, जहां भय है, आशका है।

छुआछूत

२१ प्रदूषण से भी अधिक घातक है—छुआछूत की अवधारणा का प्रदूषण।

२२ छुआछूत की समस्या न कानून से मिट सकती है और न उपदेश से। इसको दूर करने के कारगर उपाय है—१. घृणा के संस्कारों को निरस्त करना, २. मानवीय-मूल्यों को प्रतिष्ठित करना, ३. मानव-मात्र के प्रति सौहार्द का वातावरण निर्मित करना।

२३ स्वतंत्र देश में छुआछूत का होना आजादी की मजाक है।

२४ छुआछूत मानवता का कलंक है, अभिशाप है।

२५ छुआछूत का कीडा मनुष्य के दिमाग से जब तक नहीं निकलेगा, तब तक मानव-मानव के बीच में खींची हुई दीवारों को तोड़ना कठिन होगा।

२६ किसी को अछूत मानकर उससे घृणा करना और उसे मानवीय अधिकारों से वंचित रखना कहां का न्याय है?

छोटा : बड़ा

२७ मैं समझता हूं—जो एकांगी और एकांतवादी है, वह छोटा है। जो सर्वांगीण और अनेकान्तवादी है, वह बडा है।

२८ जो अच्छे कर्म करता है, सन्मार्ग पर चलता है, वह ऊंचा है, बड़ा है। जो बुरे कर्म करता है, कुमार्ग पर चलता है, वह नीचा है, छोटा है।
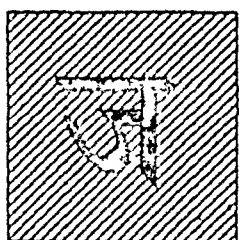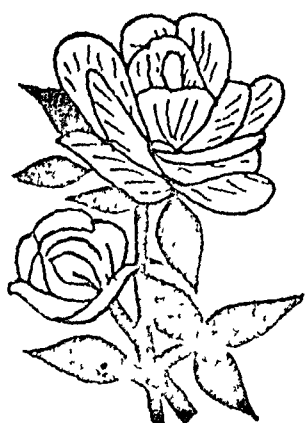
जंगलीपन

१ दूसरों के अधिकारों को हड़पना, विश्वासघात व शोषण करना, एक-दूसरे की आजीविका छीन लेना, किसी का दमन कर देना, विना किसी अपराध के सहस्रों मनुष्यों का एक साथ संहार कर देना, क्या जंगलीपन नही है ?

जगत्

२ खिण हसणो खिण रोवणो, जग स्वरूप रो सूत्र ।
आंख झांक शिशु समझियो, थावच्चा रो पुत्र ।।

३ सुणी वीर वाणी कल्याणी, ओ जग है नटशाला ।
निरख-निरख मन मोद मनावै, ओ जग है नटशाला ।।

जड़ता

४ गुड और गोवर को एक समझना समता नही, जड़ता है ।

५ बुराई की अनुभूति हो जाने के बाद भी उससे चिपटे रहना जड़ता है ।

६ आंख का आकर्षण मिटाने के लिए आंख फोड़ दो ; जीभ का आकर्षण मिटाने के लिए जीभ निकाल दो—यह चिंतन जड़ता का प्रतीक है ।

७ लगी अखरने अर्थ विषमता, पूंजी श्रम का प्रश्न खड़ा,
सबका अग्रदूत बन आया, वादों का व्यामोह बड़ा।
राष्ट्र राष्ट्र को खड़ा निगलने, अविश्वास है जन-जन में,
कथनी-करनी में न समन्वय, लगे धनार्जन की धुन में।
समता, क्षमता, अनासक्ति का उनको पाठ पढ़ाना है,
मिट जाए जनता की जड़ता, सक्रिय कदम उठाना है ।।

८ समय का प्रवाह व्यक्ति को तिनके की भांति अपने साथ बहा ले जाए और वह हाथ-पांव हिलाए बिना बहता चला जाए, यह जड़ता है।

९ विचारभेद का अभाव चिंतन की जडता का द्योतक है।

जड़पूजा

१० चिन्मय नै पाषाण बणाऊं, ओ परिचय जडता रो।
स्वयं अमल अविकार प्रभु तो, स्नान कराऊ क्यांरो ।।

११ जड़पूजा व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार के द्वार तक नही पहुंचा सकती।

१२ स्वच्छ सुरभित सलिल से नहला तुम्हें निर्मल बनाते,
मिष्ट नव-नव भोज्य भगवन्! बिन बुभुक्षा जन खिलाते।
कलित कोमल कुसुम कलिका भेट नव नेवद चढ़ाते,
सुरभि धूप सुरूप चंदन चरच सुन्दरता बढ़ाते,
वीतराग! विडम्बना-सी देख दिल में दर्द छाया।
बाह्य आडम्बरों में भगवन्! न तुमको देख पाया ।।

१३ सुण्यो निरंजन निराकार तुम, निर्मल निरुपम रूप।
क्यूं अंजन मंजन चंदन घृत, दीप सुगन्धित धूप?

जनतंत्र

१४ स्वार्थलिप्सा और कर्त्तव्यनिष्ठा का अभाव जनतंत्र को दूषित बना देता है।

१५ जनतंत्र की व्यासपीठ पर जो व्यक्ति बैठता है, उसकी दृष्टि देशहित पर होनी चाहिए, पार्टी या तंत्र पर नही, अन्यथा जनतंत्र की हत्या हो जाती है।

१६ सत्ता का लोभी बनकर जो वोट लेना चाहे और धन का लोभी बनकर जो वोट दे, वे दोनों जनतंत्र के दुश्मन हैं।

१७ जनतंत्र की सफलता जनता की नेकनीयती, ईमानदारी और सच्चाई पर निर्भर है।

१८ राजनीति में जनतंत्र-प्रणाली अहिंसा का एक व्यावहारिक रूप है। इसमें हर व्यक्ति के विकास के लिए अवकाश है।

१९ वही जनतंत्र अधिक सफल हो सकता है, जिसमे आत्मतंत्र का विकास हो।

२० जनतंत्र तब तक सफल नही हो सकता, जब तक जनता प्रवुद्ध और जागरूक न हो।

२१ स्वस्थ जनतंत्र में हिंसा, उच्छृंखलता और असहिष्णुता को कभी अवकाश नहीं होता।

२२ लोकतंत्र में आर्थिक विकास का केवल वही तरीका मान्य होता है, जो जनता के नैतिक-बल को कायम रखते हुए अपनाया जाए।

२३ सच्चा जनतंत्र वही है, जिसमें परानुशासन कम होकर स्वानुशासन प्रतिष्ठित हो जाता है।

२४ व्यक्ति सबके साथ समानता का व्यवहार करे, किसी का अहित न करे, किसी को धोखा न दे—यही सही जनतन्त्र है।

२५ जनतन्त्र का अर्थ ही है—जनता के हितों को प्रमुखता देना। जनता की उपेक्षा करके जनतंत्र कभी सुरक्षित नही रह सकता।

२६ जनतन्त्र में जन-सहयोग के बिना कोई भी व्यवस्था सफल नहीं हो सकती।

२७ जनतन्त्र की अपेक्षा है कि प्रत्येक व्यक्ति योग्य बने, सत्ता और धन का मोह त्यागे, अपने और पराये का भेदभाव न रखे।

२८ निरंकुश महत्त्वाकांक्षा जनतंत्र की सबसे बड़ी दुर्बलता है।

२९ जनतंत्र का सही मालिक तो जनता है।

३० प्रवाहपातिता, व्यक्तिगत स्वार्थ या प्रलोभन आदि से होने वाला मतदान जनतंत्र के उज्ज्वल भविष्य का सूचक नही होता।

३१ कोई किसी के अधिकार का हनन न करे, यही जनतंत्र का मूल आधार है। जनतंत्र में हरिजन और ब्राह्मण को समान अधिकार है।

३२ अहिंसा और सत्य को फैलाने में जनतन्त्र जितना सुन्दर माध्यम अन्य कोई नही बन सकता।

३३ मेरे कथन में भी संशोधन हो सकता है और दूसरों के कथन की भी उपादेयता हो सकती है—इस प्रकार परस्पर सामजस्य करके चलें तो जनतंत्र का तेज अधिक निखर सकता है।

३४ जनतन्त्र का विकास इन बातों पर निर्भर है—
१. मानवीय एकता का समर्थन।
२. शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व।
३. शोषण-मुक्त समाज की रचना।
४. अन्तर्राष्ट्रीय नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना।
५. सार्वदेशिक निःशस्त्रीकरण के सामूहिक प्रयत्नों का समर्थन।
६. मैत्री तथा शान्ति-सगठनों की सार्वदेशिक एकसूत्रता।

जनता

३५ जनता विचारशक्ति का मूल आधार है।

३६ राष्ट्र की आत्मा वहां की जनता है। जब तक जनता का जीवन शुद्ध नहीं, प्रामाणिक नही, सत्योन्मुख नही, तब तक सच्चा राष्ट्रनिर्माण कहां ?

३७ जनबल के साथ अन्य बल स्वतः आ जाते है।

३८ जिस दिन जनता का मानस उद्‌बुद्ध हो जाएगा, उस दिन महत्त्वाकांक्षी राजनेता मानवता के साथ खिलवाड़ नही कर सकेंगे।

३९ जनशक्ति शस्त्र-शक्ति से भी अधिक बलवान् होती है।

४० जब तक जनता अपना तृतीय नेत्र नही खोलेगी, तब तक नेता के रूप में देश के साथ खिलवाड़ करने वाला कामदेव भस्म होने वाला नहीं है।

जन-धर्म

४१ जो धर्म समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन करता हुआ जनता की समस्या का सही समाधान प्रस्तुत करता रहे, वह जन-जन का धर्म होगा।

४२ वही धर्म है विश्वधर्म, जो विश्वबंधुता धार।
अर्थाश्रयण न करता, सत्य-अहिंसामय साकार ।।

जननी

४३ जिसने जन्म दिया है, अपना दूध पिलाया,
स्वय दुःखिता रह पुरुषों को सुख पहुंचाया।
समय-समय वीरत्व जगा सम्मान बचाया,
हा ! उसको ताड़न का अधिकारी ठहराया।।

४४ जननी केवल जन्मदात्री ही नही, जीवनदात्री भी है।

४५ बच्चे का कैसे पालन हो, कैसे जीवन संचालन हो,
हो खाद्य-पेय कैसे नियमित, कैसे अन्तर प्रक्षालन हो।
क्यों कमबेशी हंसता रोता, क्यों कमबेशी जगता सोता,
उसकी गतिविधियों का पूरा अनुमान उसी को होता है ।।
वह सरल मनोवैज्ञानिक बन, सारी उलझन सुलझाती है,
जननी संस्कार जगाती है, माता संस्कार जगाती है ।।

जननेता

४६ जननेता या सुधारक पहले अपना नेतृत्व करे, अन्यथा उनका नेतृत्व असफल हो जाएगा।

जनप्रशिक्षण

४७ लोकतंत्र की आत्मा आहत और हतप्रभ तभी होती है, जब जनप्रशिक्षण नही दिया जाता।

जनभावना

४८ जनभावना में परिवर्तन होते ही राष्ट्र की संरचना में रूपान्तरण घटित हो जाता है।

जनमत

४९ सरकारी नीति को बदला जा सकता है, यदि जनमत जागृत हो।

५० सरकार के डंडे से जो काम नहीं हो सकता, वह जागृत और सशक्त जनमत से हो सकता है।

जनसेवक

५१ जनसेवक नाम जितना मधुर है, कितना अच्छा हो काम भी उतना ही मधुर हो !

जनापवाद

५२ जनापवाद तथ्यातथ्य नहीं देखता, वह प्रसरणशील होता है। जब तक अवरोध नही होता, तब तक फैलता ही जाता है।

जन्म

५३ जन्म के बिना जीवन-कहानी का प्रारंभ नही होता।

५४ कोई भी व्यक्ति जन्मना धार्मिक नही हो सकता। जन्म से जाति पाई जा सकती है, धर्म नही।

जन्मदिन

५५ व्यक्ति का जन्म-दिन उसके स्वय के लिए प्रेरणास्रोत होना चाहिए।

५६ जन्मदिन सिहावलोकन का दिन होता है, भूल-निरीक्षण का दिन होता है और कुछ नए प्रयोगों को करने का दिन होता है।

५७ प्रगति के बाधक तत्त्वों का निराकरण कर आगे बढ़ने का संकल्प दोहराएं—यही जन्म-दिन मनाने की सार्थकता है।

५८ जन्मदिन अतीत और अनागत का सेतु होना चाहिए।

जन्म और मृत्यु

५९ घटनाओं का सिलसिला शुरू होता है जन्म से और उनकी सफलता-विफलता का लेखा-जोखा होता है मृत्यु से।

६० जब तक जन्म चालू है, तब तक मौत को चाहे-अनचाहे स्वीकार करना ही होगा।

६१ जन्म के समय सब कुछ अज्ञात रहता है किंतु मृत्यु के क्षणों में अज्ञात ज्ञात हो जाता है, अस्पष्ट स्पष्ट हो जाता है।

६२ शरीर-सम्बन्ध का नाम जन्म है और विसम्बन्ध का नाम मृत्यु।

६३ हृदय-विदार अपार वेदना, जन्म-मरण मझधार।
बलि-बलि चढ़ियो, कटियो, बढ़ियो, निज घर-द्वार विसार॥

६४ व्यक्ति का संसार से जाना उसके आने से अधिक महत्त्वपूर्ण है, यदि वह कुछ करके जाए।

६५ जन्म एक नियति है, एक संयोग है। मृत्यु व्यक्ति के पुरुषार्थ की स्वतन्त्र चेतना की निष्पत्ति है।

६६ जन्म और मरण ही संसार में ऐसे तत्त्व हैं, जो व्यक्ति को संसार से विरक्ति की ओर मोड़ते हैं।

६७ वह मरना ही मरना है, जो मरकर भी सदा जिंदा रहे। किंतु वह जीना जीना नहीं, जो जिंदा रहकर भी मुर्दा हो।

६८ जन्म और मरण की इस अविच्छिन्न परम्परा को कौन चुनौती दे सकता है ?

६९ जीने और मरने का महत्त्व नहीं है, महत्त्व इस बात का है कि क्या हम धर्म के लिए जीते हैं और धर्म के लिए मरते हैं?

७० दुनियादारी में जन्म के समय हर्ष और मृत्यु के समय शोक होता है। पर धार्मिक-क्षेत्र में संयम-पूर्वक जीवन और सयम-पूर्वक मृत्यु—दोनों ही प्रसन्नता के विषय है।

जप

७१ जव तक हृदय से जप नही करोगे, उसमें डूब नही जाओगे, रूपान्तरण नही हो सकेगा।

७२ जप का अर्थ है—मन, वाणी और अर्थ—तीनों की एकरूपता।

७३ जप वह माध्यम है, जिसके द्वारा मनुष्य अपनी सुषुप्त अनंत शक्तियों का साक्षात्कार कर सकता है।

७४ जीवन-भर जपता रहे, केवल शाब्दिक जाप।
शाश्वत सुख उसको कहां? होता क्रिया-कलाप।
तन्मन हो तच्चित्त हो, और तदध्यवसाय।
तदुपयुक्त तद्भावना-भावित हो व्यवसाय॥

७५ जप की तरंगों के साथ भावना का योग व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार की दिशा में गतिशील बना देता है।

७६ जप के साथ यदि मानसिक संक्लेश बना रहे तो वह अभीष्ट फलदायक नहीं बन सकता।

७७ दो घंटे मुद्रा-विशेष में अवस्थित होकर किसी मंत्र की साधना करना जप है तो घंटे भर जनता के बीच बोलना, उसे तत्त्व-ज्ञान देना भी जप है।

७८ जप से चित्त इष्ट के साथ जुड़ जाता है।

७९ तपोयोग में जपयोग का प्रयोग होना चाहिए, अन्यथा तपोयोग अधूरा है।

जमाखोरी

८० जमाखोरी एक राष्ट्रीय अपराध है, जिसके कारण व्यक्ति देश में कृत्रिम अभाव पैदा करता है।

८१ जमाखोरी तथा अनपेक्षित मूल्य-वृद्धि पाप है।

जय

८२ वास्तविक जय उसी को मिलती है, जो किसी को हीन बनाने या जीतने की इच्छा ही नहीं करता।

जरूरत

८३ ज्यों-ज्यों जरूरतें कम होती चली जाएंगी, त्यों-त्यों सुखास्वाद तीव्र से तीव्रतर होता चला जाएगा।

८४ जरूरत पूरी हो सकती है, पर लालसा कभी पूरी नहीं होती।

८५ मनुष्य को रोटी की जरूरत होती है, मकान की अपेक्षा होती है, पर विलासिता की सामग्री के बिना भी जीवन चल सकता है।

८६ मानव का दैनन्दिन व्यवहार सात्त्विकता, शुद्धता और निर्मलता लिये हो—यह जीवन की पहली जरूरत है।

जल-प्रदूषण

८७ मानव जल को प्रदूषित कर अपने हाथों अपनी कब्र खोद रहा है।

जल्दबाजी

८८ जो काम जल्दबाजी में किया जाता है, उसमें स्थायित्व कम होता है।

जवान

८९ सकट की घड़ी में जो संतुलन नहीं खोता तथा कष्टों में भी जो सुख की अनुभूति करता है, वही सही अर्थों में जवान हो सकता है।

९० जवानों की पहचान ध्वस और बरबादी न बने किंतु सृजन और निर्माण उसकी पहचान बने। यह आज की युगीन अपेक्षा है।

९१ जवानों की सांसों पर समूचे राष्ट्र की धड़कनें निर्भर हैं।

९२ जिसका संकल्प प्रबल होता है, वह सदा जवान रहता है।

९३ जवान वही होता है, जो नया चिन्तन कर सकता है और नई दिशा ले सकता है।

९४ जवानो को मै शक्ति का प्रतीक मानता हू। जिस समाज का जवान जागृत है, वह समाज जागृत है।

जवानी

९५ जवानी की अवस्था ही ऐसी है, जिसमें भावना की उद्दाम लहरे मचलती रहती है। उनके थपेड़ों से कब संयम का बांध टूट जाए और जीवन में उथल-पुथल मच जाए—कुछ कहा नहीं जा सकता ?

९६ जवानी एक रत्न है, जो भोग-विलास में नष्ट करने के लिए नही है।

९७ जो युवक सपने बहुत देखता है पर संकल्पों मे दृढ़ता नही है उसकी जवानी पर बुढ़ापा छाने लगता है।

९८ मनुष्य के जीवन का प्रारंभ सही रूप में जवानी से ही होता है।

९९ सत्य के प्रति अनास्था लोक-जीवन का एक स्वर हैं। इस स्वर को बदलकर सत्यनिष्ठा का विकास करना जवानी की पहचान हैं।

१०० जवानी में एक ऐसा जोश होता है, जो हर मुसीबत को सहकर भी कुछ कर गुजरने की ताकत रखता है।

१०१ जवानी को न रास्ता बनाना पडता है और न वह बने-बनाए रास्ते की खोज करती है। वह जिधर भी चलती है, पूरे वेग के साथ चलती है, रास्ता स्वय निर्मित हो जाता है।

जहर

१०२ लोग कहते है साप जहरीला है। मैं पूछता हूं, जहरीला कौन नहीं है ? क्या मनुष्य सांप से कम जहरीला है ? सांप तभी काटता है, जब उसको किसी प्रकार की ठेस व आघात पहुंचता है, किन्तु मनुष्य तो बिना किसी ठेस व आघात के ही ऐसा काटता है कि उसका जहर कई पीढियों तक भी नही उतरता।

जागरण

१०३ जिस क्षण जागरण का प्रारम्भ होता है, बुराई का आसन प्रकम्पित हुए बिना नही रहता।

१०४ जागरण हुए बिना कोई भी व्यक्ति प्रभावी जीवन नही जी सकता।

१०५ जागरण जीवन में विकास की संभावनाओं को उजागर होने का मार्ग देता है।

१०६ विस्मृति और सुषुप्ति जागरण में बाधा है।

१०७ जो व्यक्ति नींद में हो, उसे जगाने का उपक्रम हो सकता है, पर जो जान-बूझकर कर्त्तव्य-पथ से आंखमिचौनी करे, उसके लिए कोई क्या कर सकता है ?

१०८ जागरण के लिए तीन तत्त्व आवश्यक हैं—जागने वाला, जगाने वाला और उपयुक्त समय।

१०९ जागने के लिए कोई समय निर्धारित नहीं होता। आदमी जिस क्षण जागृति का अनुभव करता है, उसके लिए वही क्षण काम करने का है।

११० विवेक के जागरण से बढ़कर कोई जागरण नहीं है।

जागरण : सुषुप्ति

१११ आन्तरिक चेतना का विकास जागरण है और चेतना पर बाहरी आवरण सुषुप्ति है।

११२ जागृति जीवन का चिह्न है, सुषुप्ति जीवित मृत्यु है।

११३ जागरण सत् है, सुषुप्ति असत् है।

जागरूक

११४ जागरूक व्यक्ति अधिक से अधिक समय 'अपने घर' में रहने का प्रयास करता है।

११५ जागरूक व्यक्ति के चरण जब कभी प्रमाद की ओर बढ़ते हैं, कर्तव्य की प्रेरणा उन्हें मोड़ देती है।

११६ यदि हम जागरूक हैं तो एक कदम भी देखे बिना नहीं चलेंगे, बिना विचारे नहीं बोलेंगे, समय का दुरुपयोग नहीं करेंगे, दूसरों से जैसी अपेक्षा रखेंगे, वैसा स्वयं बनने का प्रयास करेंगे।

११७ भूल का बोध होने के बाद भी उसे दोहराते रहना जागरूक जीवन का लक्षण नहीं है।

११८ जागरूक रहने वाला व्यक्ति ही सदाचारी कहलाने का अधिकारी है।

११९ जो नींद नहीं ले, वह जागरूक और जो नीद ले, वह सुप्त—यह अधूरी परिभाषा है। ऐसे व्यक्ति भी है, जो नींद लेने पर भी जागृत रहते है और जागते हुए भी सोते है।

१२० जो प्रतिक्षण जागरूक रहता है, सत्य उसे ही मिल सकता है।

१२१ आत्मा के प्रति जागरूक वही रह सकता है, जो आत्मा के परमात्म-स्वरूप को जानता है।

१२२ जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य के प्रति प्रतिक्षण जागरूक रहता है, वह हर क्षेत्र में सफल होता है।

१२३ यदि व्यक्ति अप्रमत्त भाव से क्षण-क्षण अपने प्रति जागृत रहे तो कोई भी अवांछित तत्त्व उसके जीवन पर अधिकार नही कर सकता।

१२४ तटस्थ द्रष्टा के रूप मे जागरूक रहकर आप मन का अध्ययन ही नहीं करेंगे किन्तु उस पर अपना प्रभुत्व भी स्थापित कर सकेंगे।

१२५ करणीय के प्रति हर क्षण जागरूक रहने वाला व्यक्ति अपने जीवन में कभी पश्चात्ताप को प्राप्त नहीं होता।

जागरूकता

१२६ जागरूकता का अर्थ है—जोवन को पवित्रता और संयम की दिशा में मोड़ना।

१२७ जागरूकता ही सिद्धि का द्वार है।

१२८ कर्म और चैतन्य का तादात्म्य सतत जागरूकता का प्रयोग है।

१२९ साधक की जागरूकता उसके जीवन को कला से भर देती है।

१३० सम्भावना सचाई में बदले, इसके लिए सतत जागरूकता अपेक्षित है।

१३१ काल न मालूम हम पर कब सवार हो जाए, अतः प्रतिक्षण जागरूकता की अपेक्षा है।

१३२ तेरे पग-पग पर खतरा है, राही संभल-संभल कर चलना।
चाहे कैसी भी स्थिति आए, अपने पथ से नहीं विचलना।।

१३३ अत्यन्त कंटीली राहों में भी जागृत बनकर निकलें तो कांटा नही लगेगा, और समतल भूमि में भी प्रमाद से चलें तो खतरा संभव है।

१३४ प्रगाढ आस्था, सही समझ और सत्य की दिशा में प्रस्थान—ये तीन तत्त्व व्यक्ति को सतत जागरूकता की ओर ले जा सकते है।

१३५ मूर्च्छा टूटते ही व्यक्ति अपने घर में लौट आए—यह जागरूकता का प्रतीक है।

१३६ जागरूकता का अर्थ है—जो आवश्यक हो उसे जानना, प्रयोग करना और स्वीकार करना।

१३७ जागरूकता से अपनी वृत्तियों को देखना, विकृतियों को देखना और उन्हें बदलने का प्रयत्न करना अपने जीवन में नयापन लाने का प्रयत्न है।

१३८ सतत जागरूकता ही साधना की सफलता है।

१३९ ध्येय की जागरूकता ध्याता को ध्यान की ओर अग्रसर करती है।

१४० भयजन्य जागरूकता अन्तरंग कमजोरी का लक्षण है।

१४१ जागृत मनुष्य न किसी दूसरे का अहित करता है और न अपना।

जागृत

१४२ जो जागृत रहता है, उसकी प्रतिभा निर्मल होती है और आचरण पवित्र होता है।

१४३ एक दीपक से जिस प्रकार सैकड़ों दीपक जलाए जा सकते हैं, उसी प्रकार एक जागृत व्यक्ति सैकड़ों के जीवन का निर्माण कर सकता है।

१४४ बदलाव जागृति का प्रतीक है।

१४५ जागृत व्यक्ति का प्रतिक्षण आनन्द एवं उल्लास से परिपूर्ण होता है।

जागृत चेतना

१४६ जागृतचेतना से जो सोच और दृष्टि विकसित होती है, उससे युग-युग तक पथदर्शन मिल सकता है।

जागृत जीवन

१४७ मानव जीवन अपने आपमें एक उपलब्धि है, पर उन लोगों के लिए है, जो जागृत जीवन जीते है।

१४८ जैसे जीवन चलाने के लिए अन्न, वस्त्र आदि की आवश्यकता है, वैसे ही जागृत जीवन के लिए शिक्षा-दीक्षा की आवश्यकता है।

जागृत धर्म

१४९ जीवन-व्यवहार में धर्म के साकार रूप को मैं जागृत एवं जीवित धर्म कहता हूं।

१५० सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक बंधन से मुक्त किन्तु सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों को प्रभावित करने वाला धर्म ही वास्तव में जागृत और प्रभावशाली धर्म हो सकता है।

१५१ तत्काल लाभ की अनुभूति कराने वाला धर्म ही नगद धर्म या जागृत धर्म हो सकता है।

१५२ वह धर्म सफल और जागृत होता है, जो धार्मिक को आत्मानुशासी बनने की दिशा देता है, ऊपर के नियम और अनुशासन को कम करता है और एक दिन उसे पूरी तरह से आत्मशासित बना देता है।

१५३ करनी होगी सत्य अहिंसा की ही पुनः प्रतिष्ठा।
तेजस्वी जो धर्म उसी में होती सबकी निष्ठा।।
बात नहीं, पर धर्म चाहता आज आत्म-बलिदान,
यही है जीने का विज्ञान।।

जागृत नारी

१५४ अगर नारी प्रबुद्ध और जागृत हो तो वह पुरुष को गलत मार्ग पर जाने से रोक सकती है।

१५५ जागृत नारी जहां अपने जीवन का विकास करती है, वहां समूचे परिवार पर उसकी सात्त्विकता की छाप पड़ती है।

जागृत समाज

१५६ जागृत समाज का यह दायित्व होता है कि वह बौद्धिक वर्ग को समाज से सर्वथा अलग-थलग न होने दे।

१५७ जागृत, सुसंस्कृत, विकसित और आदर्श समाज वह होता है, जिसमें केकडा-वृत्ति के व्यक्ति न हों।

१५८ वही समाज जागृत होता है, जिसमें व्यक्ति-निर्माण की प्रक्रिया चलती रहती है।

१५९ जिस समाज में नीति और संस्कृति का वर्चस्व है, वही उन्नत, समृद्ध और जागृत समाज है।

१६० वही जागृत समाज है, जो अपने हित और अहित का चिंतन करता रहता है।

१६१ जागृत समाज वह है, जिसका ज्ञान और विवेक प्रबुद्ध हो।

१६२ आचार और विचार की शुद्धि से ही जागृत समाज का निर्माण हो सकता है।

१६३ वह समाज जागृत है, जो अपने कमजोर भाइयों को भी साथ लेकर बढ़ता है।

१६४ जिस समाज की युवा पीढी जागृत है, वह समाज जागृत है।

जागृति

१६५ सुधरे व्यक्ति समाज व्यक्ति से, उसका असर राष्ट्र पर हो।
जाग उठे जन-जन का मानस, ऐसी जागृति घर-घर हो॥

१६६ दुनिया को सुधारने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को जागृत होकर स्वयं को सुधारने का संकल्प करना होगा।

१६७ सहज कसौटी है संयम की, जागरूक व्यवहार।
तन में मन में रहे निरंतर, जागृति के संस्कार॥

१६८ जागृति के दो बिंदु है—चरित्रनिष्ठा और सक्रियता।

१६९ जागृति ही साधुता है। जागृति ही संयम है। जागृति ही ज्ञान है।

१७० जागृति की स्थिति में व्यक्ति की हर क्रिया अहिंसा और अध्यात्म की परिक्रमा करती है।

जाति

१७१ ऊंचापन और नीचापन जाति पर नही वरन् मानवता के सत्-असत् कर्मों पर स्थित है।

जातिभेद

१७२ जाति और सम्प्रदाय के भेदों ने मनुष्य की एकता को विभक्त किया है।

१७३ मैं उस सवेरे की प्रतीक्षा में हूं, जिस दिन भेदमुक्त मानव-जाति मुक्त वातावरण में जीने का आनन्द लेगी।

१७४ जाति, रंग आदि के मद से सामाजिक विक्षोभ पैदा होता है, इसलिए यह पाप की परम्परा को बढाने वाला पाप है।

जातिवाद

१७५ जातिवाद मनुष्यता पर कलंक है।

१७६ जाति और रंग के आधार पर मनुष्य को मानवीय अधिकारों से वचित रखना मानवता का अपराध है।

१७७ जातिवाद को लेकर किसी को अस्पृश्य मानना, उन्हे मदिर में प्रवेश करने का अधिकार न देना, घृणा के भाव पैदा करना, मेरी दृष्टि में धर्म नहीं है, समता नही है।

१७८ बुद्धिकृत विभाजन को नकार दिया जाए तो समूची मानव-जाति एक है, अविभाज्य है, समान अस्तित्व और क्षमता वाली है।

१७९ जाति का अहं व्यक्ति को ऊपर नहीं उठाता अपितु पतन की ओर ले जाता है।

१८० मिसरी स्यूं मुख मीठो होसी, कोई खावै।
जात-पांत रो पचड़ो फिर क्यूं, बिच में आवै॥

१८१ जातियों का विभाजन कार्य-संचालन की सुविधा के लिए हुआ था, पर आज वह सुविधा समाज का कलंक बन गई।

१८२ अगर कोई भगवान् मनुष्य को जातियों में बांटेगा, एक व्यक्ति को जन्म से ऊंचा तथा एक व्यक्ति को जन्म से नीचा बनाएगा तो कम से कम मैं तो उसे भगवान् मानने के लिए तैयार नहीं हूं।

१८३ जातिवाद के नाम पर आज भी लाखों लोग नारकीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, यह मानवता के साथ खिलवाड़ है।

१८४ पहले इंसान इंसान।
फिर हिन्दू या मुसलमान॥

१८५ चुनाव के समय यदि जातिवाद को प्रोत्साहन मिलता है तो वह राष्ट्र के हित में नहीं है। इससे जनतंत्र की जड़ें हिल जाती है।

जादू

१८६ जादू का असर क्षणिक होता है, अतः समझदार व्यक्ति जादुई चमत्कारों में विश्वास नहीं कर सकता।

जानकारी

१८७ ढेर सारी जानकारी प्राप्त करने के आधार पर व्यक्ति ज्ञानी बनता तो संसार में ज्ञानी लोगों की भीड़ लग जाती।

१८८ सही जानकारी के अभाव मे मनुष्य सही मार्ग से भटक जाता है।

जिंदगी

१८९ त्याग और संयम की जिंदगी ही सच्ची जिंदगी है।

१९० यह जिन्दगी अपने आपको पहचानने या पाने के लिए है, केवल आराम और विलास के लिए नहीं।

१९१ बड़ी कीमती मिली जिंदगी, क्या किस्मत की बात करें ?
मानव-काया सुरतरु-छाया, में बैठे व्याघात हरें ।।

१९२ अगर आप जिंदगी को सफल नहीं बना सकते तो विफल बनाकर पृथ्वी पर भारभूत क्यों बनते हैं ?

जिजीविषा

१९३ है जिजीविषा सब में सरखी, सुख-दुख की अनुभूति ।
संचित कर्माश्रित ही सबकी, विभुता और विभूति ।।

१९४ शब्दों से मरने की इच्छा व्यक्त की जा सकती है, पर वास्तव में मरना कौन चाहता है ?

जिज्ञासा

१९५ जिज्ञासा ज्ञान की आराधना का पहला चरण है ।

१९६ जिसके मन में जिज्ञासा है, उसके लिये समाधान का रास्ता खुला है ।

१९७ असमाहित जिज्ञासा संदेह मे परिणत हो जाती है ।

१९८ जिज्ञासा तो एक भूख है । मैं समझ नही सकता कि इसके बिना मनुष्य को चैन कैसे पड़ता है ?

१९९ जिज्ञासा उन्ही के दिमाग में उत्पन्न होगी, जो ग्राहक बनकर सुनते है ।

२०० जिज्ञासा न हो तो व्यक्ति का ज्ञान सीमित रह जाता है । जिज्ञासाशून्य व्यक्ति दुनिया के विभिन्न विचारो और व्यवहारों से अनजान रह जाता है ।

२०१ जिज्ञासाओं का उफनता ज्वार जिस दिन शांत हो जाता है, उस दिन व्यक्तित्व रूपी फूलों के पराग-कण भी झर जाते है ।

२०२ चार अवस्थाए है—बचपन, यौवन, प्रौढ़ता और वृद्धत्व । किसी भी अवस्था विशेष के साथ जिज्ञासा का अनुबन्ध नही है । वह किसी भी समय, कही पर भी उद्भूत हो सकती है ।

२०३ जिज्ञासा के अभाव में केवल सुनने मात्र से कोई उपलब्धि नहीं हो सकती ।

२०४ जिज्ञासा आत्म-विकास और जीवन-विकास के लिए उपयोगी है।

२०५ क्रियान्विति के अभाव में होने वाली जिज्ञासा भटकाने वाले चौराहे के समान है।

२०६ जिज्ञासा प्रबुद्ध चेतना का प्रतीक है। वह किसी उत्स-विशेष से प्रतिबधित नहीं रहती।

२०७ जितनी भी नई उपलब्धियां होती हैं, वे सव जिज्ञासा से ही समुत्पन्न है।

२०८ बालक की जिज्ञासा ज्ञान का महास्रोत है। उसे कुचलने से उसका विकाम रुक जाता है।

२०९ जिज्ञासा वह स्थिति है, जो मस्तिष्क के साथ चेतना को भी झकझोर कर प्रकट होती है।

२१० जिज्ञासा अस्तित्व की, है पहला सोपान।
हर साधक पहले करे, कोऽहं की पहचान॥
कोऽहं-कोऽहं में सदा, रहे हृदय बेचैन।
मिले साधना-पथ स्वयं, बेचैनी की देन॥

२११ हर मनुष्य को जिज्ञासु होना चाहिए, जिगीषु नहीं।

जितेन्द्रिय

२१२ जितेन्द्रिय व्यक्ति के लिए अरण्य या बस्ती में कोई फर्क नहीं पड़ता।

२१३ जितेन्द्रिय का अर्थ है—विकारों पर विजय पा लेना।

२१४ साधना के पथ पर वही अग्रसर होता है जो जितेन्द्रिय बन जाता है।

२१५ जो व्यक्ति भौतिक पदार्थों के प्रति आसक्त रहता है, वह जितेन्द्रिय नहीं बन सकता।

जिनतत्त्व

२१६ व्यपाकुर्वन्नुर्वीप्रथिततरमिथ्यामततपं,
वितन्वानः शैत्यं कलिकलुषसंतप्नहृदये ।
चिदासारैः सिञ्चन् भविजनमनोभूतलमलं,
सता शांति पुष्यात् सपदि जिनतत्त्वाम्बुदवरः ।।

(पृथ्वीतल पर फैले हुए मिथ्यामत रूप तम को दूर करता हुआ, कलि के कालुष्य से सतप्त हृदय मे शीतलता का प्रसारण करता हुआ तथा भव्य लोगो के मन रूपी भूतल को ज्ञान की वेगवान् वर्षा से सिंचित करता हुआ जिनतत्त्व रूपी श्रेष्ठ बादल सज्जनो को शाति प्रदान करे ।)

जिनदर्शन

२१७ इतर दर्शणी कर्षणी, नय वणिज्य अनभिज्ञ ।
विज्ञ वणिग् जिन दर्शणी, नय दुर्णय विपणिज्ञ ।।

जिनवाणी

२१८ ईभारी छारी अहो, वारि पिए इक घाट ।
मञ्जारी मूषक मिले, खिले प्रेम को बाट ।।
अश्व-महिष-अहि-नकुल किल, हिलमिल करत मिलाप ।
जिनवाणी रो ही सकल, अद्भुत प्रौढ प्रताप ।।

जिनशरण

२१९ जिनाश्रितानां मर्त्यानां, निर्भयत्वं निसर्गजम् ।
आनंद उदयं याति, वर्धमानं प्रतिक्षणम् ।।

(जिन भगवान् की शरण मे गए व्यक्ति स्वभावत निर्भय हो जाते हैं और उनका आनन्द प्रतिक्षण बढता रहता है ।)

जिम्मेदारी

२२० जिम्मेदारी ऐसी चीज है, जो तोली नही जा सकती और न मापी जा सकती है । जो इसको वहन करते हैं, उन्हें ही जिम्मेदारी का वजन मालूम होता है ।

२२१ जिम्मेदारी लेना आसान है किन्तु उसे निभाना कठिन है।

२२२ जिम्मेदारियों का निर्वाह वही कर सकता है, जो दायित्व-निष्ठ होता है।

जिह्वा-संयम

२२३ जिह्वा-संयम के दो फलित हैं—खाद्य-संयम और वाणी-संयम।

जीभ

२२४ जीभ के स्वाद का दुष्परिणाम पूरे शरीर को भोगना पड़ता है।

२२५ सबसे बड़ी समस्या जीभ है। यह बड़े-बड़े साधकों को पतन के गर्त में डाल देती है।

जीवन

२२६ जन्म और मौत के बीच की यात्रा का नाम है—जीवन।

२२७ अटकाव और भटकाव को गति में बदलना—यही जीवन है।

२२८ जीवन एक चक्र है, जो निरन्तर गति करता है। गतिशील चक्र का हर घुमाव जीवनयात्रा को आगे बढ़ाता है।

२२९ जीवन अनंत शक्तियों का खजाना है, पर विरले ही उसको जानकर उपयोग कर पाते हैं।

२३० जीवन एक अद्भुत कहानी है। इसमें चढ़ाव भी है, उतार भी है। कामयाबी भी है, नाकामयाबी भी है। अपनी परम्परा और संस्कृति का व्यामोह भी है और नयेपन से जुड़ने की ललक भी है।

२३१ सबसे पहले समझें क्या है, जीवन की परिभाषा ?
फूल न जाएं, भूल न जाएं, पाकर ज्ञान जरा-सा ॥

२३२ शरीर के भीतर एक तत्त्व है, जो सबसे सुन्दर है, वह है—जीवन।

२३३ पौद्गलिक दृष्टि से देखें तो शरीर, इन्द्रिय और मन का सयोग ही जीवन है। रासायनिक दृष्टि से देखें तो शरीर और मन की प्रक्रिया ही जीवन है। आत्मिक दृष्टि से देखें तो संयम ही जीवन है।

२३४ जीवन एक साम्राज्य है। उसका अधिकारी वह हो सकता है, जो अपने जीवन को प्रकाश से भर लेता है।

२३५ जीवन संयोग और वियोग का जोड़ा है।

२३६ क्रियाशील क्षणों का जो क्रम है, वही जीवन है।

२३७ एक, दो, तीन—इस प्रकार घटनावलियां समन्वित होती जाती है, जीवन बनता जाता है।

२३८ जीवन कोई खिलौना नहीं है कि जो मन मे आए, वही खेल इससे खेल लिया जाए।

२३९ जीवन इतना सस्ता नहीं है कि उसकी आंच में तुच्छ स्वार्थों की रोटियां सेकी जायें।

२४० सोच-समझ की क्षमता उपलब्ध होने पर भी जो व्यक्ति अपने जीवन को नही संवारता, अच्छे संस्कारो मे नही ढालता और निरुद्देश्य जीवन जीता है, वह जीने का भार तो ढो सकता है, पर जीना नही जानता।

२४१ स्वार्थी मनुष्य लाख रुपयों की प्राप्ति के लिए जीवन की बाजी लगा देता है। वह नही सोचता कि पैसे के लिए जीवन है या जीवन में पैसे की आवश्यकता है।

२४२ जीवन अनन्त सम्भावनाओं की कच्ची मिट्टी है। मिट्टी को वांछित आकार देकर उपयोगी बनाना कुंभकार का काम है। इस प्रकार जीवन को वांछित मोड़ देकर उसे ऊंचाइयों तक उठाना मनुष्य का काम है।

२४३ जिस जीवन में सुन्दरता नही, वह कैसा जीवन! जिस जीवन में मिठास नही, वह कैसा जीवन!

२४४ बिना जीवन को समझे मौत समझ में नही आएगी।

२४५ जीविका को जीना कोई महत्त्व की बात नही, महत्त्व की बात है जीवन को जीना। यदि जीवन ही नही रहा तो जीविका किस काम आएगी?

२४६ कलात्मक जीवन जीने वाला व्यक्ति जीवन की सब विसंगतियों के मध्य जीता हुआ भी उसका सार-तत्त्व खींच लेता है और सुखद जीवन जीता है ।

२४७ जीवन बहती नदी की तरह एक प्रवाह है । बांध की तरह उसे नियंत्रित करके उपयोगी बनाया जा सकता है ।

२४८ वर्तमान जीवन को सत्य, शिव और सौन्दर्य की त्रिवेणी में बहाए रखना ही सफल अतीत और उज्ज्वल भविष्य की पहचान है ।

२४९ जो सत्यनिष्ठ है, प्रामाणिक है, कथनी और करनी की समानता में विश्वास करते है, एक-एक मानवीय मूल्य को बटोरकर जीवन सवारने वाले हैं और अपने सिद्धान्त की सुरक्षा के लिए सब कुछ त्याग करने का साहस रखते है, वे कठिन से कठिन परिस्थिति में भी जीवन को गलत दिशा में नही ले जाते ।

२५० प्राणविहीन शरीर का जितना मूल्य है, धर्मविहीन जीवन का मूल्य उससे अधिक नही हो सकता ।

२५१ जीवन वही सार्थक है, जो दूसरों को भी प्रेरणा दे ।

२५२ जीवन एक कच्चा धागा है, जिसे टूटते देर नहीं लगती, किन्तु चतुर जुलाहा उन्ही धागों को बुनकर वस्त्र बना लेता है ।

२५३ मैं उस जीवन को नारकीय जीवन मानता हूं, जिसमें छल, धोखा, लोलुपता, विश्वासघात और हिंसा है और उस जीवन को स्वर्गिक जीवन कहता हूं, जो संतोष, सादगी, विश्वास, चरित्र और नीति से भरा है ।

२५४ आचार और विचार की समन्विति ही जीवन है ।

२५५ कमरा या मकान तो रहने के काम आता है, पर उन्नत जीवन परिवार, समाज व राष्ट्र के काम आता है ।

२५६ समता, पौरुष और समन्वय ।
बन जाए जीवन अमृतमय ॥

२५७ विनय जीवन का आचार है और श्रम जीवन की गति। दोनों के बिना जीवन अपने आप में अधूरा और कुंठित बन जाता है।

२५८ उसका जीवन सूना है, जो केवल अपनी ही सोचे।

२५९ जीवन के क्षण हाथ से ऐसे फिसलते जा रहे है, जैसे मुट्ठी में से रेत।

२६० जीवन को सफल बनाने के स्वर्णसूत्र है—
१. पापभीरुता
२. विनय-सम्पन्नता
३. साधनाभिरुचि
४. आज्ञापरायणता।

२६१ जीवन कोई तिल नहीं है, जिसे कोल्हू में पीसकर सार निकाल लिया जाए। इसका सार है—वृत्तियों की पवित्रता।

२६२ जीवन मरने के लिए नही है अपितु कुछ कर गुजरने के लिए है। जीवन मात्र देखने के लिए नही है, अच्छाइयां जीने के लिए है।

२६३ जीवन लकडी नही है, जिसके निर्माण के लिए किसी बढ़ई की आवश्यकता हो। जीवन पत्थर नही है जिसे घड़ने के लिए कारीगर की जरूरत हो। जीवन कागज भी नही है जिसे सजाने के लिए चित्रकार की अपेक्षा हो। लकड़ी, पत्थर और कागज जड़ वस्तुएं है। जीवन मे चैतन्य होता है, उसका निर्माण स्वयं मनुष्य को ही करना है।

२६४ जीवन-वृक्ष के तीन अमूल्य फल है—
१ मानवता।
२ करुणा।
३. समत्व।

२६५ जो अपना सारा समय खाने-पीने और सोने में ही गंवा देते है, उनका जीवन बकरी के गले में लटकते हुए स्तनो के समान बिलकुल बेकार और निरर्थक है।

२६६ जीवन का भव्य प्रासाद शिक्षा की भित्ति पर खड़ा होता है।

२६७ पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, बड़े कष्ट की बात।
कीट पतंगा की नाईं, जीणो कोइ जीणो भ्रात ?

२६८ जिस जीवन में शांति, सतुष्टि, पवित्रता, और आनन्द नहीं, वह जीवन जीवन नही, मृत्यु की ही दूसरी अवस्था है।

२६९ नीति-शास्त्र निर्णतावां री, आ ही नेक सला।
जबरन जोग सधै नही, 'तुलसी' जीवन एक कला॥

२७० जीवन में दो बाते आवश्यक है—विद्या और प्रामाणिकता।

२७१ जीवन की बुनियाद है—चरित्र। अगर वह मजबूत है तो कोई कारण नही कि उस पर आधारित जीवन की मंजिल लड़खड़ा सके।

२७२ जहा जीवन है, वहा समस्या बनी रहेगी, समस्या न हो तो जीवन कर्तृत्वशून्य हो जाता है।

२७३ कुशाग्र पर अवस्थित जलबिंदु की तरह इस क्षणभंगुर जीवन में यदि शील, सत्य, संयम और दान का आचरण करते है तो जीवन की सार्थकता है।

२७४ संघर्ष की छाती को चीरकर आगे बढ़ा जाए, वही जीवन है।

२७५ मुझे दुःख व आश्चर्य होता है जब मैं लोगों को निरर्थक क्रियाओं में जीवन की अमूल्य निधि को खोते देखता हूं।

२७६ जहां व्यक्ति का अपना स्वतंत्र अस्तित्व न रहकर उसकी अज्ञानता का अस्तित्व मात्र रहता है, वह जीवन नही, जिन्दगी का भार है।

२७७ जीवन मे केवल दुःख या सुख नही होता, वह बदलता रहता है।

२७८ सादगी, कथनी-करनी की समानता और निरभिमानता—ये तीन गुण जीवन के श्रृंगार है।

२७९ क्रोध, विद्वेष आदि के बिना जिया जा सकता है, पर मैत्री और स्नेह के बिना जिया नही जा सकता।

२८० जीवन की तीन अवस्थाएं होती है—बचपन, यौवन और बुढ़ापा। बचपन अधूरा होता है, बुढापा अक्षम होता है। जीवन को समूचेपन से जीने का समय है—यौवन।

२८१ जो अपने पुरुषार्थ पर भरोसा रखता है, उसका प्रयोग करना जानता है, वह जीवन को अर्थवान् बना लेता है।

२८२ यदि व्यक्ति बोझिल, निरर्थक और असमाधिमय जीवन जीता है तो उस जीने से क्या लाभ ?

२८३ जीवन से बढ़कर धर्म का कोई मंदिर नहीं और जीव से बढकर कोई पुजारी नहीं।

२८४ जीवन में धन, दौलत, मकान आदि भौतिक सुख-सुविधाएं मिल सकती है पर यह सब जीवन की कीमत नही है। वह अमूल्य है।

२८५ जीवन वह है, जो अध्यात्म दृष्टि से जागृत एवं उद्‌बुद्ध हो। जीवन वह है जो धन, वैभव, सत्ता और अधिकार के भूल-भूलैयें में गुमराह न बन संयम, सात्त्विकता और चारित्र के मार्ग पर अग्रसर हो।

२८६ मैं उस जीने को जीना नही मानता जो जीकर भी जीने में गृद्ध हो।

२८७ ज्ञान, श्रद्धा, आचार एवं शांति—ये चार तत्त्व जीवन के मौलिक गुण है।

२८८ जीवन की महान् उपलब्धि है—सत्य की प्राप्ति।

२८९ जो व्यक्ति नैतिक, कर्त्तव्यपरायण और दृढ़ संकल्पी होता है, उसका जीवन सफल है।

२९० सुख के बाद दु:ख और दु:ख के बाद सुख का चक्र नहीं होता तो आदमी का जीना मुश्किल हो जाता।

२९१ जीवन सभी जीते है परन्तु कैसे जिया जाए, ऐसा बहुत कम लोग जानते है ?

२९२ जीवन सरस भी है, नीरस भी है, सुख भी है, दु.ख भी है, सब कुछ है, कुछ भी नहीं है। यह व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह कैसा जीवन जीता है ?

२९३ वही जीवन महत्त्वपूर्ण और आकर्षक है, जो मर्यादित होता है।

२९४ जीवन और जागृति, ये दोनों शब्द जहां पृथक् पृथक् है, वहां अधूरे है। जहां एक साथ जुड जाते है, वहां पूर्ण हो जाते है।

जीवन-कला

२९५ जीवन-कला से मेरा तात्पर्य है संयम और अनुशासन से स्वस्थ एवं शालीन जीवन जीना।

२९६ आप भले ही हिन्दू बन जाओ या मुसलमान बन जाओ, चाहे फकीर या अमीर बन जाओ, चाहे धनकुवेर या गरीब बन जाओ—इससे कुछ नही बनेगा। बनेगा तब, जब आप जीने की कला सीखेगे।

२९७ युगानुरूप परिवर्तन करना जीवन की विशेष कला है।

२९८ जीने की कला आंतरिक उन्नयन, स्वस्थ चिंतन, स्वस्थ व्यवहार और स्वस्थ रहन-सहन के बिना नही आ सकती।

२९९ जीवन की मौलिक कला समरसता है। वह हमें धर्म के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।

३०० कला का सम्बन्ध जीवन के हर अंग से है। कैसे उठना ? कैसे बैठना ? कैसे सोना ? कैसे खाना ? कैसे चलना—इन सबका समाधान जीवन-कला में निहित है।

३०१ अपनी वृत्तियों को संतुलित रखने वाला व्यक्ति ही जीवन की कला सीख सकता है।

३०२ एक व्यक्ति, जो जीवन जीने की कला जानता है, अपने आपको भयंकर स्थितियों से सहज ही उबार लेता है।

३०३ जो व्यक्ति थोडी सी खुशी में फूल जाता है और थोड़े से दुःख में संतुलन खो देता है, आपा भूल जाता है, वह जीवन-कला में निपुण नहीं हो सकता।

३०४ शान्तिमय जीवन जीना ही जीवन की सच्ची कला है।

३०५ जो जीने की कला से परिचित होता है, वह मौत को सामने देखकर भी मुरझाता नहीं है।

३०६ मोह और भय से मुक्त व्यक्ति ही कलात्मक जीवन जी सकता है।

३०७ पशु जीना नहीं जाने—यह चिंता की बात नही किंतु आदमी जीने की कला न जाने—यह आश्चर्य है।

जीवन का उद्देश्य

३०८ जीवन का उद्देश्य इतना ही नहीं है कि सुख-सुविधापूर्वक जीवन व्यतीत किया जाए, शोषण और अन्याय से धन पैदा किया जाय, बडी-बडी भव्य अट्टालिकाएं बनाई जाये, और भौतिक साधनों का यथेष्ट उपयोग किया जाए। उसका उद्देश्य है—उज्ज्वल आचरण, सात्त्विक वृत्ति और प्रतिक्षण आनन्द का अनुभव।

३०९ धन कमाना, परिवार का भरण-पोषण करना जीवन की आवश्यकता हो सकती है, पर उद्देश्य नहो।

जीवन-दर्शन

३१० जिस मनुष्य के पास जीवन का कोई दर्शन नही होता, वह अपने भविष्य के प्रति आश्वस्त नहीं हो सकता।

३११ जीवन का दर्शन जितना विशद होता है, वृत्तियां उतनी ही उदात्त हो जाती है।

जीवनदानी

३१२ जिस सस्था के साथ एक भी जीवनदानी व्यक्ति जुड जाता है, कई युगों तक उस सस्था के अस्तित्व के विषय मे समाज चिंता-मुक्त हो जाता है।

जीवन-निर्माण

३१३ यदि व्यक्ति अपना जीवन-निर्माण कर लेता है तो मानना चाहिए उसने हजारों-हजारों करणीय कार्य कर लिए।

३१४ जीवन-निर्माण के लिए तीन बातो की अपेक्षा है—

१. किसी एक व्यक्ति को अपना आराध्य मानना।

२. किसी एक को पथदर्शक मानकर चलना।

३ पथदर्शक द्वारा दिखाए गए मार्ग का अनुसरण करना।

३१५ मैं जीवन के निर्माण और विकास के लिए आस्था का होना नितान्त आवश्यक मानता हूं।

३१६ जीवन-निर्माण का उद्देश्य है—अमरत्व की प्राप्ति।

३१७ महापुरुषों की स्मृति जीवन-निर्माण में बहुत बड़ी निमित्त है।

३१८ मेरी तो निश्चित मान्यता है कि जब तक व्यक्ति सामञ्जस्य की कला नही सीखता, तब तक वह जीवन-निर्माण की कला को हस्तगत नही कर पाता।

३१९ जो जितना सरल, विनम्र व निश्छल बनकर समर्पण करेगा, वह उतना ही अधिक अपने जीवन का निर्माण कर सकेगा।

३२० हमारे जीवन के निर्माता हम स्वयं है, दूसरे केवल निमित्त बन सकते हैं।

३२१ दूसरों की आलोचना के बजाय यदि आत्मालोचन किया जाए तो जीवन-निर्माण शीघ्र हो सकता है।

३२२ दूसरों को उपदेश देना सरल बात है किन्तु अपने जीवन का निर्माण करना बहुत कठिन है।

३२३ जीवन-निर्माण की कला के सम्बन्ध में केवल पढ़ने या सुनने से जीवन नहीं बन सकता। इसके लिए लक्ष्य का निर्धारण करना जरूरी है।

३२४ मेरी दृष्टि में जोवन-निर्माण से बढ़कर और कोई रचनात्मक कार्यक्रम हो ही नही सकता।

३२५ बिना प्रशिक्षण के जीवन का निर्माण नहीं हो सकता।

जीवन-निर्वाह

३२६ समस्या जीवन-निर्वाह की नही अपितु अति निर्वाह की है, प्रदर्शन की है। क्योंकि मनुष्य चाहता है मैं ऐसे कपड़े पहनू, जिससे दुनिया केवल मुझे ही देखे। ऐसे मकान में रहूं जैसा और किसी के पास न हो। मेरे पास ऐसी कारें हों, जिनमें सब प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हों। जीवन-निर्वाह तो मोटा खा-पहनकर और झोंपड़ियों में रहकर भी किया जा सकता है।

जीवन-मूल्य

३२७ सांस्कृतिक विरासत का एक महत्त्वपूर्ण अंग है जीवन-मूल्य।

३२८ जीवन-मूल्यों को विस्मृत कर उपासना और क्रियाकाण्डों को सर्वोपरि मूल्य देने वाले लोग मुख्य को गौण एवं गौण को मुख्य मानकर अपनी जीवन-शैली को विकृत कर रहे है।

३२९ जीवन का आन्तरिक मूल्य है—ऋजुता और व्यावहारिक मूल्य है—सेवा, सहयोग।

३३० अहिंसा और मुक्ति—ये दो ऐसी आलोक रेखाएं है जिनसे जीवन के वास्तविक मूल्यों को देखने का अवसर मिलता है।

जीवन : मृत्यु

३३१ जीना ही जीवन नही बल्कि संयमपूर्वक जीना ही जीवन है। मरना ही मृत्यु नहीं बल्कि अनैतिक आचरण में जीवन को खपाना ही मृत्यु है।

जीवन-रहस्य

३३२ पौद्गलिक सुखों में अति आसक्त न बनें, यह जीवन का गूढ रहस्य है।

जीवन-विकास

३३३ जीवन-विकास में पहला स्थान संयम, अनुशासन, मर्यादा और तपस्या का है। विद्वत्ता, कला आदि का स्थान दूसरा है।

३३४ व्यक्ति आत्मा से परमात्मा बनने की ओर निरंतर अग्रसर होता रहे, यही जीवन-विकास की सही दिशा है।

३३५ ज्ञान और क्रिया के योग से ही जीवन का परम विकास हो सकता है।

३३६ जीवन-विकास के चार आधार-स्तम्भ है—

१. आत्मानुशासन
२. संयम
३. मानसिक संतुलन
४. परिस्थिति पर नियंत्रण।

३३७ जीवन-विकास के मुख्य तीन सूत्र है—श्रवण, श्रद्धा और पराक्रम ।

३३८ शक्ति के साथ ज्ञान, दर्शन और चारित्र की समन्विति ही जीवन-विकास का उपक्रम है ।

३३९ जीवन-विकास की समग्रता शरीर, बुद्धि और मन की स्वतंत्रता पर निर्भर है ।

३४० स्वप्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना और निन्दा सुनकर नाराज होना—दोनों ही जीवन-विकास में अवरोधक है ।

३४१ जीवन का विकास छोटी-छोटी बातों से प्रारम्भ होता है ।

३४२ दुष्प्रवृत्तियों का निरोध कर जीवन मे सत्प्रवृत्तियों का समावेश करना ही जीवन-विकास की सर्वोपरि साधना है ।

३४३ जीवन का सच्चा विकास आत्म-शुद्धि में है ।

३४४ संयम की लगाम से मन के अश्व को उन्मार्ग से रोको और सन्मार्ग में प्रेरित करो, इसी में जीवन का सच्चा विकास है ।

३४५ स्वस्थ चिन्तन के साथ जीवन-विकास का गहरा सम्बन्ध है ।

जीवन-विज्ञान

३४६ अखण्ड व्यक्तित्व के निर्माण की एक प्रायोगिक प्रक्रिया का नाम है—जीवन-विज्ञान ।

३४७ मूल्य-परक शिक्षा ही जीवन-विज्ञान है ।

३४८ बौद्धिक और भावात्मक विकास की संतुलित प्रक्रिया का नाम है—जीवन-विज्ञान ।

३४९ राष्ट्र की नई शिक्षा-नीति में जीवन-विज्ञान संजीवनी का काम कर सकता है ।

३५० समग्रता से जीवन का बोध और उसके अनुरूप जीवन जीना ही जीवन-विज्ञान है ।

३५१ जीवन का विज्ञान है—पथारूढ होकर उसे सदा गति देते रहना ।

३५२ व्यक्तित्व-रूपान्तरण की प्रक्रिया का नाम है—जीवन-विज्ञान ।

३५३ जीवन जीने की व्यवस्थित पद्धति का नाम जीवन-विज्ञान है।

जीवन-शुद्धि

३५४ जीवन-शुद्धि के लिए शिक्षा की ही नही, भीतरी लगन की भी जरूरत है।

३५५ नहाने-धोने से शरीर शुद्ध हो सकता है, लेकिन जीवन-शुद्धि के लिए तीन बातें अपेक्षित है—
- ० अपने कृत अपराधों का स्मरण।
- ० उनका स्वीकरण।
- ० उन्हें भविष्य में न करने का संकल्प।

३५६ जीवन की शुद्धि सात्त्विक कर्म में है।

जीवन-शैली

३५७ स्थायी और सार्थक परिवर्तन के लिए व्यक्ति की सोच को ही नहीं, उसकी जीवन-शैली को भी परिष्कृत करना आवश्यक है।

३५८ जब तक जीवन-शैली नहीं बदलती, जीने की सही दिशा उपलब्ध नहीं होती, तब तक कोल्हू के बैल की तरह जीवन की गाड़ी यों ही चलती रहती है।

जीवन-सत्य

३५९ जो व्यक्ति केवल सपनों के आधार पर जीता है और यंत्रों पर निर्भर रहता है, वह जीवन की सचाई का अनुभव नही कर सकता।

३६० जीवन का सत्य सुखैषणा में नहीं है, भौतिक वासनामय सुखाभासों में नही है। उसका सार है—अन्तस्तत्त्व को समझना उसे व्यवहार में लाना।

३६१ जीवन के अमर सत्य हैं—अहिंसा, सचाई, मैत्री, भ्रातृभाव, प्रेम और सद्‌भावना। इनके बिना जीवन उसी तरह नीरस है, जिस तरह नमक के बिना भोजन।

जीवन-सार

३६२ क्या मानव-जीवन का यही सार है—बाल्यकाल को खेलकूद में बिताना, युवावस्था को कामवासना की संपूर्ति में खोना, और वृद्धावस्था को अतीत की स्मृतियों में गुजार देना ?

जीवन-सुधार

३६३ बाहरी सज्जा व श्रृंगार से जीवन का सुधार होने का नहीं, जीवन का सुधार तो धार्मिकता से होगा।

जीवन-सूत्र

३६४ जीवन के सूत्र हैं—चिंता नहीं चिंतन करो, व्यथा नहीं व्यवस्था करो, प्रशस्ति नहीं प्रस्तुति करो।

३६५ चिन्तन, निर्णय और क्रियान्विति—ये तीन जीवन के स्वर्णिम सूत्र हैं।

जीवनाशंसा

३६६ जीने की वासना को छोड़ना बड़ी घटना है। वही है अभय, वही है अहिंसा, वही है पराक्रम और वही है वीर का वीरत्व।

जीवनी

३६७ बड़ों की जीवनियां छोटों के लिए आचार-संहिता बन सकती हैं।

३६८ जीवन जीना कला है। जीवनी-लेखन उससे भी बड़ी कला है।

३६९ जीवनी वह होती है जिसमें जीवन-वृत्त आकार ले सके और पाठक अतीत के जीवन का साक्षात्कार कर सके।

३७० हजार पुस्तकें पढ़ने से जो ज्ञान नहीं होता, वह एक व्यक्ति के जीवन को जानने-पढ़ने से हो सकता है।

जीवनी-शक्ति

३७१ जिनके सोचने या देखने का तरीका नही बदलता, जो हीनता के संस्कारो से ऊपर उठ नहीं पाते, वे धीरे धीरे अपनी जीवनी-शक्ति खो देते है।

३७२ क्षमा, निर्लोभता, सरलता और मृदुता—ये चार ऐसे तत्त्व है, जो व्यक्ति की जीवनी-शक्ति को बढ़ाते है।

जीवन्त

३७३ व्यक्ति की जीवन्तता इसी में है कि वह जीवनभर स्ववश होकर काम करता रहे।

३७४ जीवन्त व्यक्ति लचीला होता है।

जीवन्मुक्त

३७५ जिसका मन अपनी मुट्ठी में हो, कषाय शांत हों, वासनाएं शमित हों, वह होता है जीवन्मुक्त।

३७६ चरणामृत की अपेक्षा वचनामृत का पान जीवन्मुक्त होने की दिशा में सफल प्रयास हो सकता है।

३७७ जीवन्मुक्त का लक्षण है—अतीत के चिन्तन से उपरत, भविष्य की आकांक्षाओ से मुक्त और वर्तमान का अनासक्त भाव से उपयोग करना।

जीविका

३७८ जीविका जीवन का साध्य नहीं, साधन है।

३७९ वह जीविका किस काम की, जो जीवन को नीरस बना दे।

जीवितमृत

३८० जो व्यक्ति अशान्ति से जीता है, दुर्व्यसनों में पलता है, दुश्चिंतन में सांस लेता है, वह जीता हुआ भी मृत है।

जुआ

३८१ जुआ दुर्गुणों का कुआ है।

३८२ जुए से धन कमा भी लिया जाय तो वह कभी सुरक्षित नहीं रहता, वरन् मूल को भी साथ ले डूबता है।

३८३ जुआ वह भयानक घुन है, जो मनुष्य के जीवन की शांति को निरन्तर खाता रहता है।

३८४ जुए से मानवता कलंकित होती है।

३८५ जुआ आलस्य, विकार और मदान्धता का एक नशा है।

३८६ जुआ एक अग्नि है, जिसकी ज्वाला मनुष्य को सांय-सांय कर जला देती है।

३८७ जुए से न सिर्फ आत्मा का ही पतन होता है, वरन् समाज में भयंकर दुराचारो को प्रश्रय मिलने लगता है।

३८८ जुए से मनुष्य न सिर्फ चरित्र-भ्रष्ट वरन् अर्थ-भ्रष्ट और पथ-भ्रष्ट भी होता है।

३८९ प्रथम व्यसन जुओ कह्यो, सब व्यसनां शिरमोड़।
इण री जोड़ी मे जुड़ै, कुणसी दूजी खोड़ ?

३९० जुआ खेल क्या हुआ ? हुआ सो हुआ महाभारत भारी।
कौरव-पांडव की कटु घटना, बिकी द्रौपदी-सी नारी ॥

जुआरी

३९१ हारा हुआ जुआरी पुनः जुआ खेलने के लिए पैसा पाने की चेष्टा मे हिंसक बन सकता है और जीता हुआ जुआरी मदांध होकर जीवन को कौडियों के मोल बेच सकता है।

३९२ जुआरी का हृदय हर समय क्षुब्ध, व्यथित और चिंतित रहता है।

जूठन

३९३ अपनी जूठन अपने भाइयों को खिलाना और वह भी दया के नाम पर, यह मानवता का घोर अपमान है।

जेल

३९४ विवशता ही जेल है।

३९५ जेल में रहकर भी व्यक्ति आत्म-निरीक्षण करे तो वह बंधन भी मुक्ति में परिणत हो सकता है।

जैन

३९६ संसार भर के वे सभी व्यक्ति, जो सत्य और अहिंसा में विश्वास रखते है, जैन है।

३९७ शुद्ध हृदय से धर्म की आराधना करने वाला हर व्यक्ति जैन है।

३९८ जैन संस्कृति में विश्वास रखने वाला कभी परावलम्बी, आग्रही और मिथ्याभाषी नही हो सकता।

३९९ जो मिलावट करता है, धोखा देता है, झूठा माप-तौल करता है, वह जैन तो क्या, अच्छा आदमी भी नही है।

४०० जिन व्यक्तियों का पुरुषार्थ में विश्वास है, त्याग-तपस्या में विश्वास है और जो उन्हें व्यवहार में लाने का प्रयत्न करते हैं, वे सब जैन हैं।

४०१ बिना आचरण को शुद्ध बनाए कोई भी जैन कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता।

४०२ जैन वह है, जो आत्मविजय के मार्ग का अनुसरण करता है।

जैनत्व

४०३ आवेश से भरे जो व्यक्ति हृदय की गाठ नही खोलते, विरोधी के साथ बोलना तक नही चाहते, ऐसे व्यक्तियों मे जैनत्व कहां है ?

जैन दर्शन

४०४ अनेकान्त, अनाग्रह, अहिंसा और अध्यात्म का विचार ही जैन दर्शन है।

४०५ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की पहचान के बिना जैन दर्शन की पहचान अधूरी है।

जैन धर्म

४०६ जैन धर्म कहता है—आपको कोई दूसरा कष्ट नहीं दे रहा है, अपितु अपने कृत कर्मों से आप कष्ट भुगत रहे हैं।

४०७ जीने की कला बहुत धर्मों में सिखाई जाती है, पर मरने की कला जैन धर्म की अपूर्व देन है।

४०८ जैन धर्म सार्वजनिक राजपथ है, जिस पर चलने का जन-जन को अधिकार है।

४०९ जैन धर्म पुरुषार्थवादी धर्म है। वह निठल्लों, अकर्मण्यों और पलायनवादियों का धर्म नहीं है।

४१० जैन धर्म में आचरण का महत्त्व है, जाति-विशेष या व्यक्ति-विशेष का नहीं।

जैन साधना

४११ श्रद्धा, ज्ञान और आचरण—तीनों की समन्विति जैन साधना है।

जोखिम

४१२ जोखिम उठाए बिना कोई क्रांतिकारी काम नहीं हो सकता।

४१३ देखा जाता जग में जोखिम, नहीं कहीं है काया को।
पर पग-पग पर डर रहता है, इस दुनिया में माया को॥

जोश

४१४ वह निकम्मा जोश है, जो क्षण भर के लिए आए और चला जाए।

४१५ यौवनावस्था के जोश में शांत और संतुलित रहना बड़ी बात है।

४१६ जोश व ताकत कोई कहने की वस्तु नहीं, यह तो कर दिखाने की चीज है।

४१७ जोश के साथ 'विवेकपूर्ण होश होना अत्यन्त अपेक्षित है अन्यथा जोश एवं शक्ति, निर्माण की अपेक्षा ध्वंस में लगने लगती है।

जौहरी

४१८ रत्न सुरक्षित यत्न स्यूं, मजूषा में पेक।
पिण बिन जंवरी कुण करै, मूल्यांकन अतिरेक ॥

ज्ञाता-द्रष्टा

४१९ ज्ञाता-द्रष्टा वही बन सकता है, जो अतिलोभ और अति-कामना से बचकर रहता है।

ज्ञान

४२० ज्ञान एक ऐसा अन्त: चक्षु है, जिसके जागरण के बाद व्यक्ति हर समस्या से स्वयं को उबार लेता है।

४२१ मैं शरीर से भिन्न अशब्द, अरूप, अगंध, अरस, अस्पर्श और आत्मस्वरूप हूं—इस तथ्य को जानना ही सबसे बड़ा ज्ञान है।

४२२ जिसके पास ज्ञान का प्रकाश है, संसार का गहरे से गहरा अंधकार भी उसके लिए आवरण नही हो सकता।

४२३ ज्ञान सिर्फ ज्ञान के लिए नही बल्कि जीवन मे प्रयोग के लिए है।

४२४ ज्ञान एक ऐसा धागा है, जिससे बधकर रहने वाला व्यक्ति अपने जीवन के दुराहे, तिराहे या चौराहे पर कभी भटक नही पाता, किंतु यह धागा जिसके हाथ से छूट जाता है, वह अर्थ, सत्ता और कामुकता के भ्रमजाल में फंसकर अपनी मंजिल को ही नही, जीवन को भी खो देता है।

४२५ साक्षरता को मैं ज्ञान नही मानता, वह तो ज्ञान का साधन मात्र है।

४२६ ज्ञान वह है, जिससे गुण-दोष की परख आती है, हेय-उपादेय की चेतना जागृत होती है, हिताहित का बोध होता है।

४२७ वन की सुरक्षा के लिए व्यक्ति को जितना भयभीत रहना होता है, ज्ञानप्राप्ति के बाद वह उतना ही अभय बन जाता है।

४२८ चैतन्य से आवरण जितना हटता है, ज्ञान उतना ही निर्मल होता है।

४२९ सहस्रों पुस्तकें पढ डाली, धर्मशास्त्रो का अध्ययन किया पर उस ज्ञान से क्या बना यदि जीवनचर्या में किंचित् भी तदनुरूपता नहीं आई।

४३० ज्ञान ही जीवन है। ज्ञान ही सार है। ज्ञान ही तत्त्व है और ज्ञान ही आत्म-निर्माण तथा आत्म-विकास का मुख्य साधन है।

४३१ ज्ञान जीवन की मूलभूत पूजी है। उसके अभाव में मनुष्य अपने आपका खो बैठता है।

४३२ पुस्तकों के ढेर बहुत स्थानों पर मिल सकते है पर ज्ञान की चाबी गुरु के पास ही मिलती है।

४३३ कोई भी मनाषी, जो गहरे ज्ञान मे उतरा हुआ है, कोरे ज्ञान का समर्थन नही कर सकता।

४३४ जिन शिक्षित लोगो में आस्था का अभाव या कमी पायी जाती है, वह उनके ज्ञान का अधूरापन है।

४३५ यथार्थ व सार्थक ज्ञान वह है, जो सदाचार से संवलित हो।

४३६ ज्ञान की स्फुरणा मे ही मौन की सार्थकता है।

४३७ अज्ञानमात्मनि कृतास्पदमास्थितं यद्,
विश्वापकारकरणप्रवणं स्फुटं तत्।
ज्ञानात् क्षणात् क्षयमुपैति यथान्धकार-
मुद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धम्॥

(जो अज्ञान, संसार का अपकार करने के लिए आत्मा मे घर जमाए बैठा है, वह ज्ञानोदय से क्षण भर मे ऐसे ही नष्ट हो जाता है, जैसे उदित होने वाले सूर्य की किरणो से अन्धकार।)

४३८ ज्ञान से यदि संयम और विवेक का विकास होता है तो वह हमारे लिए श्लाघनीय है, अन्यथा वह जनरंजन का हेतु-मात्र बन जाता है।

४३९ ज्ञान आत्मा की शक्ति, ज्योति और प्रकाश है।

४४० ज्ञान का सबसे अधिक सशक्त साधन है—जिज्ञासा।

४४१ अगर हमारा ज्ञान जागृत हो जाए तो हमारी शक्ति और समृद्धि भी बढ़ेगी।

४४२ ज्ञान अचूक रसायन है और अमूल्य औषध है।

४४३ चरित्र के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए ज्ञान प्रेरणा-स्रोत है।

४४४ बुद्धि-विकास के साथ संयम-साधना और विवेक का पर्याप्त विकास हो, तभी ज्ञान का सदुपयोग हो सकता है।

४४५ ज्ञान का अमृत, बिना समुद्र-मंथन के ही निकला हुआ अमृत है।

४४६ ज्ञान की उत्पत्ति अपने स्वरूप में है किन्तु उसकी निष्पत्ति आचार में ही होती है।

४४७ सहज ज्ञान का स्रोत जब खुल जाता है तो कुछ जानने को अवशिष्ट नही रहता।

४४८ अभिमान, क्रोध, छलना और प्रमाद—ये चार ज्ञानप्राप्ति में बाधाएं है।

४४९ ज्ञान के साथ अमूढ़भाव विकसित हो तभी प्रगति का पथ प्रशस्त हो सकता है।

४५० अज्ञान से मनुष्य गलती कर सकता है पर दोष का ज्ञान होने पर भी गलती करता जाए तो उसके ज्ञान का क्या मूल्य होगा?

४५१ वह आदमी भटक कर भी संभल जाता है, जिसके पास ज्ञान हो।

४५२ ज्ञान का अर्थ केवल अक्षर-बोध नही है। जब तक वह दायित्व-बोध के साथ नहीं जुड़ता, तब तक सही विकास नहीं हो सकता।

४५३ बिना ज्ञान के श्रद्धा अधूरी है, अन्धी है।

४५४ पात्रता और अपात्रता के भेद से ज्ञान विनय की वृद्धि भी करता है और अहं का पोषण भी।

४५५ ज्ञान की धारा अहं के तटों को तोड़ने वाली है।

४५६ ज्ञान तब तक उपलब्ध नहीं होता, जब तक ध्यान का अभ्यास नहीं होता।

४५७ सूरज उग आए और अंधेरा रहे, यह संभव नहीं। उसी प्रकार ज्ञान हो जाए और राग, द्वेष आदि के प्रकम्पन सक्रिय रहें, यह कभी संभव नहीं।

४५८ आजीविका—पेट पालन तो एक अशिक्षित व्यक्ति भी करता है। केवल आजीविका के लिए ज्ञान की उद्दिष्टता नहीं, उसकी आवश्यकता है आत्म-विकास और चरित्र-विकास के लिए।

४५९ जहां सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंच पाता, वहां ज्ञान की किरणें पहुंच जाती है।

४६० पैसा पास मे हो और ज्ञान कंठस्थ हो, तभी वह समय पर काम आता है।

४६१ ज्ञान के अभाव में व्यक्ति कभी भी सत्य से च्युत हो सकता है।

४६२ ज्ञान की अपूर्णता या एकांगिता में सत्य भी खंडित हो जाता है।

४६३ पराक्रम-शून्य व्यक्ति ज्ञान अर्जित नहीं कर सकता।

४६४ ज्ञान और साधना किसी की बपौती नहीं। ये दोनों उसी के है जो उनकी आराधना करते है।

४६५ जब हमारा ज्ञान ही खण्डित है तब आस्था अखण्ड कैसे रह सकती है ?

४६६ ज्ञान अन्तर्दृष्टि से अनुबन्धित है, इसलिए यह अपने साथ समरसता लाता है।

४६७ वही ज्ञान सफल और सार्थक होता है, जिसका प्रतिबिम्ब व्यक्ति के आचरण में दिखाई दे सके।

४६८ चित्त की समाधि के विज्ञान को सीखे बिना ज्ञान अर्थ-शून्य है।

४६९ आत्मा जैसे-जैसे ऊपर उठती है, वैसे-वैसे वह ज्ञान-प्रधान बनती जाती है।

४७० ज्ञान न हो तो पुरुषार्थ भी उपयोगी नहीं बनता।

४७१ जब पथ का ही ज्ञान नहीं, तब मंजिल प्राप्ति की तो कल्पना ही कैसे की जा सकती है ?

४७२ ज्ञान के बिना अहिंसा की सूक्ष्मता तक नही पहुंचा जा सकता।

४७३ वास्तविक ज्ञान तो वह है, जिससे चैतन्य प्रकाश में आए तथा मोहावृत आत्मा शुद्ध बने।

४७४ जब तक मनुष्य को अच्छे बुरे का समुचित ज्ञान नहीं होगा, तब तक वह अपने जीवन में परिवर्तन कैसे लाएगा ?

ज्ञान और आचार

४७५ ज्ञान की गहराइयों तक पैठने से ही आचरण-पक्ष पुष्ट हो सकता है।

४७६ जब भी ज्ञान आचार से निरपेक्ष या आचार ज्ञान से निरपेक्ष होता है, वह समस्या बन जाता है।

४७७ बड़े से बड़ा ज्ञानी आचारभ्रष्ट हो सकता है, पर एक शुद्धाचारी ज्ञानभ्रष्ट नही हो सकता।

४७८ ज्ञान चक्षुष्मान् है किंतु गतिशील नही है। आचरण गतिमान् है किंतु चक्षुष्मान् नही। लक्ष्य तक पहुंचने के लिए चक्षु और गति दोनों चाहिए। ज्ञान और आचार—दोनों अपेक्षित है।

४७९ ज्ञान और आचार दोनों में प्रगति है तो सोने में सुगंध माननी चाहिए।

ज्ञान और क्रिया

४८० ज्ञान के अभाव में की गई क्रिया सही रूप में फलदायिनी नही हो सकती।

४८१ सद्ज्ञान और तदनुरूप क्रिया जीवन को स्फूर्त और चेतनाशील बनाती है।

४८२ ज्ञान गहराई है और कर्म उसकी ऊंचाई है। कर्म इसलिए विकसित नहीं हो रहा है कि हमारे ज्ञान में गहराई नहीं है।

ज्ञान और चरित्र

४८३ ज्ञान की जीवन मे उपादेयता है, इसमे कोई संशय नहीं, पर चरित्रशून्य ज्ञान बैल की पीठ पर लदी उन पुस्तकों जैसा है, जिनका उपयोग उस बैल के लिए सिवाय भार ढोने के कुछ नहीं है।

४८४ ज्ञान से प्रकाश मिलता है और चरित्र से जीवन पवित्र होता है।

ज्ञान और दर्शन

४८५ दर्शन की शुष्कता ज्ञान के विकास के साथ धीरे-धीरे सरसता में परिणत हो जाती है।

ज्ञान और शक्ति

४८६ शक्तिहीन ज्ञान दयनीय और ज्ञानहीन शक्ति भयंकर होती है।

४८७ ज्ञान के साथ शक्ति होनी नितान्त आवश्यक है क्योंकि ज्ञान सिर्फ जानना मात्र है जबकि शक्ति का अर्थ संयम की साधना है।

ज्ञान और श्रद्धा

४८८ ज्ञान नदी का बहता हुआ पानी है। जब उसे श्रद्धा से समन्वित कर दिया जाता है, तब वह अधिक उपयोगी बन जाता है।

४८९ ज्ञान से श्रद्धा परिपक्व बनती है।

ज्ञानकेन्द्र

४९० ज्ञानकेन्द्र मस्तिष्क में, सहस्रार अभिधान।
ज्ञानमयी जो चेतना, उसकी है पहचान॥

ज्ञानदान

४९१ ज्ञानदान परार्थ नहीं, सबसे बड़ा स्वार्थ है।

ज्ञानप्राप्ति

४६२ अपने आपको विद्यार्थी मानकर चलने से ज्ञानप्राप्ति का द्वार खुला रहता है। विद्वान् मान लेने से प्रगति की इतिश्री हो जाती है।

४६३ ज्ञानप्राप्ति केवल रट लगाने से या पुस्तक पढ़ लेने से ही नही होती। उसकी प्राप्ति के लिए विनय की आवश्यकता होती है।

ज्ञानार्जन

४६४ धन का अतिसंग्रह दुःख का कारण है पर ज्ञान का संग्रह सुख और समाधि में निमित्त बनता है।

४६५ वातावरण भी ज्ञानार्जन का सशक्त माध्यम है। पुस्तकों को पढ़ने की अपेक्षा देखने-सुनने से दिमाग अधिक विकसित होता है।

ज्ञानी

४६६ जो अपने अज्ञान को जान लेता है, वह सबसे बडा ज्ञानी है।

४६७ ज्ञानी होते हुए भी यदि व्यक्ति समाज-निर्माण में योगदान नही देता है तो उसका ज्ञान भारभूत है।

४६८ ज्ञानी की त्रुटि पश्चात्ताप और आत्मालोचना की अग्नि मे तप कर स्वर्ण की तरह शुद्ध हो जाती है।

४६९ अनुशासित, विनम्र, सच्चरित्र और पुरुषार्थी व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है, वही ज्ञानी होता है।

५०० ज्ञानी सब जीवों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

५०१ ज्ञानी सोचता है, समझता है पर चिंता नही करता।

५०२ जिसका ममकार और अहंकार छूट जाता है, वह ज्ञानी होता है।

५०३ जिसकी प्रज्ञा जाग जाती है, अन्तर्दृष्टि खुल जाती है, वह ज्ञानी है।

५०४ प्राप्त दुःख को समभाव से सहने वाला ज्ञानी होता है।

५०५ यदि ज्ञानी में श्रद्धा की कमी है तो वह ज्ञान खो बैठता है।

५०६ ज्ञानी बनकर भी अगर मन पर अंकुश नहीं है तो फिर ज्ञान बेकार है।

ज्ञानोपासना

५०७ एकाग्रता के अभाव में ज्ञानोपासना का क्रम शिथिल हो जाता है।

५०८ ज्ञान की उपासना और भगवान् की उपासना में कोई विशेष अन्तर नहीं है। हम ज्ञान के द्वारा ही भगवान् को पहचान सकते हैं।

ज्योतिकेन्द्र

५०९ ज्योति केन्द्र पर ध्यान से, आत्मिक अभ्युत्थान।
ज्योतित कण-कण को करे, यह सुन्दर अनुपान ॥

ज्योतिष

५१० ज्योतिष पर अधिक विश्वास रखने वाला व्यक्ति अपने पुरुषार्थ को खो बैठता है।

५११ आयुष्य के बारे में ज्योतिष का अधिक विश्वास करना अन्धकार में रहना है।

झगड़ा

१ "मैं जो कुछ कहता हूं, वही सत्य है और संसार कहे, वह झूठ"—यही झगड़े का सबसे बड़ा मूल है।

२ जो झगड़ों को खडा करता है, वह सम्प्रदाय हो सकता है, धर्म नही।

३ दुनिया में जितने झगड़े होते है, वे वास्तविक नहीं होते—ऊपरी होते है।

४ झगड़ भाई से कभी, सुख चैन पाएगा नहीं।
राज्य, वैभव तो किसी के साथ जाएगा नही।।

५ कहने वाला कुछ कहना चाहता है और लेने वाला उसे किसी दूसरे अर्थ में ही लेता है, यही झगड़े का मूल कारण है।

झमेला

६ जिसे झमेला खड़ा करने का बहाना ही खोजना हो, वह किसी भी बात का बहाना बना सकता है।

७ झमेला वहां खडा होता है, जहां मजहब और धर्म को एक कर दिया जाता है।

८ विवाद या झमेले समाज में विघटन और संघर्ष पैदा करते हैं।

झुंझलाहट

ता की

झुकना

१० स्वयं झुकने वाला ही दूसरों को झुकाने में समर्थ हो सकता है।

११ पतन के गड्ढे में गिरे व्यक्ति को अकड़ कर नहीं निकाला जा सकता। गड्ढे में पड़े व्यक्ति को झुककर, विनम्र बनकर निकाला जाता है।

१२ झुकना महत्ता का प्रतीक है।

झूठ

१३ झूठी साक्षियां देकर दूसरे के जीवन को संकट में डालने वाले स्वयं भी नारकीय यातना से नहीं छूट पाते।

१४ झूठ और कपट ग्रीष्म ऋतु की लू की तरह सब जगह व्याप्त हो रहे हैं। यही कारण है कि जनजीवन भारभूत बनता जा रहा है।

१५ सत्यवादिता सझै न थांस्यूं, तो रहणो चुपचाप है।
कपटाई कर झूठ बोलणो, जग में मोटो पाप है॥

१६ जहां झूठ को प्रश्रय मिलेगा, वहां हिंसा कहीं न कहीं से आ ही जाएगी।

१७ एक झूठ को सत्य सिद्ध करने के लिए झूठ का बड़ा जाल बिछाना पडता है।

१८ झूठ हर परिस्थिति में झूठ ही है। आवश्यकता की परिधि में वह सत्य नहीं हो सकता।

१९ झूठ बोलकर समाज-हित की कामना करना अपने आपको भ्रमित करना है।

२० झूठ जीवन को अन्धकार की ओर ले जाता है।

२१ यदि मनुष्य अपने घर में झूठ बोलने लग जाए तो परिवार नाम की कोई चीज ही नहीं रह जाएगी।

२२ झूठ बोलना हिड़काव की बीमारी है। यह न लगे उतनी ही अच्छी है।

२३ एक बार तो झूठ सांच कर, काम सारलै आप रो।
मोड़ो बेगो फूट्यां सरसी, घड़ो भरीज्यां पाप रो।।

२४ झूठ का संस्कार विष की बेल की तरह बढ़ता ही जाता है।

२५ दूसरों के साथ झूठ बोलना स्वयं के साथ झूठ बोलना है।

२६ एक झूठ नै ढांकण कित्ती, झूठ पड़ै है बोलणी,
दांवपेच कर गल्यां घूंचल्यां कित्ती पडै टटोलणी।
फंसा दूसरे नै फंदे में, बचणो चावै आप है,
कपटाई कर झूठ बोलणो जग में मोटो पाप है।।

२७ झूठ के बिना आज के युग में कैसे काम चल सकता है?
यह सोच श्रद्धाहीनता का प्रत्यक्ष नमूना है।

२८ छुटपुट झूठ बोलणो भी है नादानी रो दान।
कितो पाप है आल देण में, कुण करसी अनुमान।।

२९ वही राष्ट्र और समाज समुन्नत होगा, जहां के नागरिक झूठ नहीं बोलते।

३० क्रोध, लोभ, भय, हास झूठ रा, कारण प्रभु फरमावै।
अन्तर्मन री आ कमजोरी, कायर जन दिखलावै।।

३१ झूठ अधिक दिनों तक नही चल सकता। जितना चलता है, उतना सत्य के आवरण में ही चलता है।

३२ लोग झूठ बोलते हैं इसकी मुझे चिन्ता नहीं, जितनी इसकी है कि सत्य पर लोगों की आस्था नही है। वे मान बैठे है कि सत्य से जीवन नहीं चल सकता।
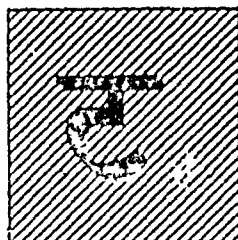
टकराहट

१ जो व्यक्ति टकराहट में उलझ जाते है, वे वही रह जाते हैं और जो वहां से छूटकर आगे वढ़ जाते है, वे अपनी अप्रतिम मंजिल को पा लेते हैं।

२ टकराहट से वचना ही मवसे वडी बुद्धिमत्ता है।

३ टकराहट और संघर्प वहां होता है, जहां थोथे आदर्श के आघार पर अस्मिता स्थापित करने का लक्ष्य रहता है।

४ टकराव वहां होता है, जहां पक्ष और विपक्ष के बीच दुश्मनी का रिश्ता स्थापित हो जाता है।

५ निरपेक्ष और सापेक्ष जो आदर्श जिस रूप में है, उसे उसी रूप में मान्य करने से टकराव की स्थिति उत्पन्न ही नही होती।

६ धर्मों में होने वाला आपसी टकराव तभी मिटेगा, जव हम धर्म को अपने जीवन में लीन करेंगे . किंतु उसकी व्यापक सत्ता को अपने में विलीन नहीं करेंगे।

टूटन

७ समता, सहिष्णुता और आत्मानुशासन को साधने वाला व्यक्ति न शरीर से टूटता है और न मन से।

८ जो छोटों और बड़ों—सबको सहन कर सकता है, सबके साथ तालमेल बिठा सकता है, वह कभी टूटता नही है।

टेढ़ापन

९ टेढा न बोलना अच्छा है, न चलना अच्छा है और न सोचना अच्छा है।

१० नीति कभी टेढी नहीं होती, टेढी होती है—अनीति।
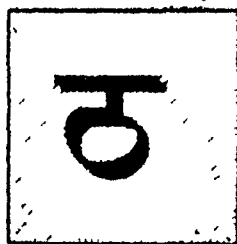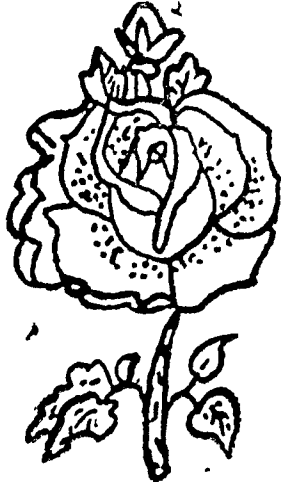
ठगाई

१ अगर आप अपने भाई को ही ठगना चाहते हैं तो आप अपनी आत्मा एवं ईश्वर को भी ठगने से नहीं वच सकते।

ठहराव

२ युग में आए ठहराव का प्रभाव संस्कृति पर होता है, समाज-व्यवस्था पर होता है, राजतन्त्र पर होता है और सबसे अधिक प्रभाव होता है मनुष्य की जीवन-शैली पर।

३ कहीं-कहीं ठहराव भी आवश्यक होता है, पर जिस ठहराव में पुनः गति की संभावना नहीं रहती, वह चेतना को कुंठित कर देता है।

४ प्रवाह स्वच्छता का प्रतीक है, जबकि ठहराव में गन्दगी की संभावना बनी रहती है। प्रवाह में जीवनी-शक्ति है, जबकि ठहराव में अस्तित्व का लोप संभव है।

ठोकर

५ जो ठोकरें खाते हैं और उनसे भविष्य में संभलकर चलने का सबक सीख लेते हैं, वे अस्खलित रूप से चलना सीख लेते हैं।

डंडा

१ डंडे के द्वारा आप पशु को हांक सकते हैं, किन्तु मनुष्य को नहीं।

२ डंडे के बल पर शरीर को पकडा जा सकता है, आत्मा को नहीं।

३ डंडे के बल पर होने वाला कार्य स्थायी नहीं होता।

डर

४ डर होना चाहिए पापों का, दुष्कृत्यों का, अपने आपका, परमात्मा का तथा गुरु का।

५ मानव ने मौत और अपहरण के डर से शस्त्र बनाने की बात सोची और उसके विकास में वह अणुअस्त्र के युग तक या पराजय की चोटी तक पहुंच गया।

६ डर डरने वाले को डराता है, उसके सामने डट जाने वाले के लिए वह कुछ भी नहीं कर सकता।

७ यदि सत्य का आधार साथ है तो डर किस बात का? डर वहां होता है, जहां झूठ पलता है।

८ डरना हिंसा का परिणाम है।

९ डरना कमजोरी और डराना क्रूरता है।

१० जो डरता है, वह बुराइयों से अपना बचाव कर लेता है।

डरपोक

११ डरने वाला दूसरों को भी डराता है।

१२ महापुरुष जिस पथ पर चलते हैं, उस पर कोई डरपोक व्यक्ति चल ही नहीं सकता।

१३ डरपोक मनुष्य किवाड़ों से बंद आश्रय में सोकर भी सुख की नींद नहीं ले सकता।

१४ समस्याओं से डरने वाला व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में आगे नही बढ़ सकता।

१५ मौत से भयभीत होने वाला व्यक्ति कायर और डरपोक होता है।

डाक्टर

१६ डाक्टर का लक्ष्य अगर केवल पैसा कमाना हो तो वह मरीजों की सेवा कैसे कर सकता है ?

डावांडोल

१७ हर किसी के विचारों से प्रभावित होने वाला व्यक्ति कभी भी अपना हित सम्पादित नहीं कर सकता।

१८ अतीत की चिंता और भविष्य की संभावित परेशानियों से वह व्यक्ति डावांडोल हो जाता है, जो वर्तमान में जीना नहीं जानता।

१९ डावांडोल स्थिति में विकास के मार्ग पर चरण बढ़ते-बढ़ते रुक जाते हैं।

२० जिस प्रकार दुर्बल व्यक्ति के हाथ में गया रत्न सुरक्षित नहीं रहता, उसी प्रकार डावांडोल मन:स्थिति वाला व्यक्ति कभी सम्यक्त्व को सुरक्षित नहीं रख सकता।
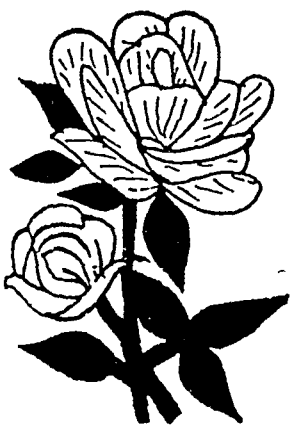
तंत्र

१ सफल तंत्र वह होता है, जहां जनता स्वयं अपने कर्त्तव्यों को समझकर आत्मानुशासित रहती है।

२ जिस तंत्र के साथ चरित्र का योग नही होगा, वह तंत्र थोड़े दिन चाहे टिक जाए लेकिन बहुत दिनों तक सफल नहीं हो सकता।

३ वीतरागी व्यक्ति को अपनी जीवन-यात्रा चलाने में किसी भी तंत्र की अपेक्षा नहीं रहती।

४ जहां स्व का तन्त्र मजबूत नहीं होता, वही दूसरे हस्तक्षेप करते है।

५ कोई भी तंत्र तभी सफल हो सकता है, जब उसका सचालन करने वाला व्यक्ति सही हो।

तकदीर

६ केवल तकदीरी उपलब्धियों में विश्वास करने वाला व्यक्ति जीवन में कोई नया काम नही कर सकता।

७ पुरुषार्थ के बिना तकदीर भी साथ नही देती।

तकलीफ

८ संसार का कोई भी आदमी ऐसा नहीं, जिसके जीवन में तकलीफ न आई हो।

९ जो तकलीफों को सहन कर आगे बढ जाते है, वे महामानव की कोटि में आ जाते हैं।

१० बिना कठिनाई तो रोटी भी नही खाई जाती तो फिर साध्य को बिना तकलीफ कैसे पाया जा सकता है ?

११ जो व्यक्ति तकलीफों से घबरा जाता है, वह जीवन में हार जाता है।

१२ परिश्रम को तकलीफ मानना मनुष्य की भूल है।

१३ तकलीफ सहे बिना कोई महान् नहीं बनता।

१४ यह भूल भरा चिंतन है कि धार्मिक व्यक्ति को तकलीफ नही आनी चाहिए। तकलीफें आती हैं पर धार्मिक व्यक्ति तकलीफ में बेचैन नहीं होता।

१५ तकलीफ हमेशा निखार लाती है।

१६ तकलीफ आना बुरी बात नही है, पर तकलीफ में घुटने टेकना बुरा है।

तटस्थता

१७ तटस्थ व्यक्ति की निंदा और आलोचना का आयुष्य क्रमशः क्षीण हो जाता है, इसीलिए उसमें रस लेने वालों को अनुताप होता है।

१८ अच्छे-बुरे पदार्थ के प्रति तटस्थ दृष्टिकोण का निर्माण समत्व की दिशा में आगे बढ़ना है।

१९ शक्तिशाली की तटस्थता ही मूल्य रखती है।

२० अपने और पराये के भेद को छोड़कर तटस्थता से चिन्तन करने वाला व्यक्ति तत्त्व को पा सकता है।

तड़प

२१ बिना आंतरिक तड़प के कोई भी कार्य कैसे सफल हो सकता है ?

२२ जिनमें कुछ करने की तड़प है, वे नएपन या पुरानेपन के बंधन की परवाह नहीं करते।

२३ गहरी तड़प पथ की उपलब्धि सहजता से करा देती है

तत्त्व

२४ पुरुषार्थहीन, समय की प्रतीक्षा करने वाले, जनापवाद से घबराने वाले, निःसत्त्व और दम्भी व्यक्ति कभी तत्त्व को नहीं पा सकते।

२५ तत्त्व शब्दों में नहो, आचरण में रहता है।

२६ सरल होने मात्र से कोई तत्त्व ग्रहणीय नहीं हो जाता।

२७ जब तक दृष्टिकोण स्पष्ट और शुद्ध नही होता, कोई भी तत्त्व हृदयङ्गम नही हो सकता।

२८ किसी भी धर्म की मूल भित्ति उसका तत्त्व होता है। उसके बिना कोई भी दर्शन स्थिर नहीं हो पाता।

२९ तत्त्व को समझा, उसका गहरा परिशीलन किया पर जीवन उसके अनुरूप नही बना, तब उस समझ तथा परिशीलन से क्या ?

तत्त्व-ज्ञान

३० तत्त्वज्ञान की प्रशस्त पगडंडियों से गुजर जाने के बाद सत्य का राजपथ स्वयं तुम्हारे सामने आ जाएगा और तुम उस पर निश्चिन्तता एवं निर्भयता के साथ आगे बढ़ सकोगे।

३१ तत्त्व का ज्ञान कलह से नहीं, प्रेम से होता है।

३२ तत्त्वज्ञान जीवन की नींव है, सम्यक्त्व का आधार है और मोक्ष का साधन है।

३३ तत्त्वज्ञान के बिना विद्या भार बन जाती है।

३४ उपासना का जहां तक सवाल है, पढ़ा-लिखा, अनपढ़, बूढ़ा, जवान, महिला, पुरुष हर व्यक्ति उपासना कर सकता है। किन्तु तत्त्वज्ञान की गहराई में उतरने का पुरुषार्थ सब लोग नहीं कर सकते।

३५ तत्त्वचिंतन का जहां प्रश्न है, वहां जय-पराजय की भावना रखना जघन्यता है।

३६ तत्त्व का यथार्थ ज्ञान विवेक-सापेक्ष होता है।

३७ तत्त्वज्ञान की पूर्णता साधक की मंजिल है।

३८ किसी भी तत्त्व को आत्मसात् किए विना उसके वारे में वोलना वाग्विलोडन मात्र है।

३९ तत्त्वदर्शन केवल चिंतन का विषय नही, वह तो सत्य की खोज है।

तत्त्वद्रष्टा

४० तत्त्वद्रष्टा का अनन्यतम साथी विवेक होता है।

तथाकथित धर्म

४१ धर्म का जामा पहने आज कितने धर्म खरे सिक्के के साथ खोटे सिक्के की तरह चल रहे है, निस्संदेह धर्म इससे वदनाम हो रहा है।

४२ वह तथाकथित धर्म जहर है, जो वर्तमान जीवन को निखारने की अपेक्षा उसे धूमिल वनाता है।

तथाकथित धार्मिक

४३ धर्म की सवसे वडी अवहेलना नास्तिक लोग नहीं, वल्कि तथाकथित धार्मिक लोग कर रहे हैं।

४४ धर्म एक व्यापक तत्त्व है, लेकिन तथाकथित धार्मिकों ने उसको विभक्त और दूषित कर दिया।

४५ नास्तिक तो खुले कुए के समान हैं, उधर से कोई भी गुजरता है, वह सचेप्ट रहता है। लेकिन ये तथाकथित धार्मिक दरी बिछे हुए कुए के समान है। उस पर वैठने वाला अवश्य ही कुए में गिर जाता है।

४६ मेरा विश्वास अधार्मिक को धार्मिक बनाने से पूर्व धार्मिक को सच्चा धार्मिक वनाने मे है, क्योंकि अधार्मिक को धार्मिक बनाना उतना कठिन नही, जितना तथाकथित धार्मिक को वास्तविक धार्मिक वनाना है।

४७ तथाकथित धार्मिको से तो नास्तिक ही भले, जो धर्म को स्वीकार नहीं करते, किन्तु धर्म के नाम पर ठगी तो नहीं करते।

४८ तथाकथित धार्मिक लोग हथियार नही रखते, पर कलम से न जाने कितनों के गले काटते है।

४९ तथाकथित धार्मिक धर्म को इसलिए नही चाहते कि उससे जीवन पवित्र बने, किन्तु वे उसे इसलिए चाहते है कि उससे भोग मिले।

तथाकथित धार्मिकता

५० एक ओर दया तथा दूसरी ओर शोपण—क्या यह योग किसी विचारशील व्यक्ति को धर्म की ओर आकृष्ट करने वाला है? एक ओर उपासना तथा दूसरी ओर घृणा—क्या यह योग किसी बुद्धिवादी व्यक्ति को धर्म की ओर आकृष्ट करने वाला है?

तन

५१ मूल मलिन है ओ तन थारो, चाहे जितो न्हुवालै।
काक कालिमा कदे न छूटै, कोटि उपाय सझालै॥

५२ नाना रोग-सोग को साधन, प्रतिपल मल बरसावै।
पावन मान अज्ञान मानवी, नव-नव रंग रचावै॥

५३ कुण-कुण सा कार्य आर्य जन तन-हित जो न करावै॥
पर आ अपणी परम अशुचिता छण भी नहीं छिटकावै॥

५४ जिण नै तू अपणो कर मानै, ठानै प्रतिपल प्यार।
तिण तन री तनुता दिखलाई, 'चक्री सनतकुमार'॥

५५ तन और मन दोनों अन्योन्याश्रित हैं—एक का प्रभाव दूसरे पर पडता ही है।

५६ ऊपर स्यूं तन दीसै आछो, मोहनगारो,
अन्तर अशुचि असार वस्तु रो है भंडारो।
केवल सलिल स्नान स्यूं पावन व्यर्थ विचारो,
सब तीर्थां में न्हायो, तो भी तूम्बो खारो॥

५७ सुन्दर अशन, वसन, भूषण रो, करै बिगारो।
उदाहरण ओ 'मल्लीकुंवरी' दियो करारो॥

५८ नव-नव वेष ड्रेस स्यूं सज्जित, जो तनु प्यारो।
नव-नव स्रोत बहै, मल पल-पल लागै खारो॥

तनाव

५९ तनाव मानसिक व्यथा है।

६० तनाव ऐसी बीमारी है, जिसकी चिकित्सा डॉक्टर या वैद्य के पास नहीं है। इसके शमन का उपाय है—योग-साधना और समता का अभ्यास।

६१ पदार्थ-प्रतिबद्धता तनाव का कारण है।

६२ तनाव अशांति को जन्म देता है।

६३ तनाव के कारण हैं—सुबह से सांझ तक अन्तहीन भागदौड़, अर्थार्जन की प्रतिस्पर्धा, शस्त्र-निर्माण की होड़ और तथाकथित विकास का व्यामोह।

६४ तनाव का मूलभूत कारण है—मानसिक असन्तुलन।

६५ समय का सम्यक् नियोजन नहीं होना तनाव का प्रमुख कारण है।

६६ तनावों से भरा हुआ व्यक्ति स्वस्थ जीवन नहीं जी सकता।

६७ जहां भी पकड है, वहां तनाव होता ही है।

६८ बिना सोचे विचारे काम करने का तात्पर्य है—दिमाग को तनाव से भरना।

६९ तनाव से ग्रस्त व्यक्ति अपने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन के साथ न्याय नहीं कर सकता।

तनाव-मुक्ति

७० तनाव का समाधान है—मन को साधना, आत्मा को साधना।

७१ तनाव-मुक्ति हेतु व्यक्ति को प्रेक्षा के प्रायोगिक जीवन से गुजरना आवश्यक है।

७२ तनाव-मुक्त होने की सीधी और सरल प्रक्रिया है—क्षमा का आदान-प्रदान।

७३ अपने आप में रहने का अभ्यास होने के बाद जीवन तनाव-मुक्त हो जाता है।

७४ मन के तनाव को समाप्त करने के लिए स्मृति, कल्पना और चिंतन को कम करना होगा।

तन्मय

७५ करणीय के साथ तन्मय बने बिना किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिलती।

७६ तन्मय होकर काम करने वाला कभी व्यर्थ की दुश्चिन्ताओं में नहीं डूबता।

तन्मयता

७७ जिस समय जो काम करे, उसी में लीन हो जाना, अपने अस्तित्व को उससे भिन्न नही रखना ही तन्मयता है।

७८ कैसे तन्मयता बढ़े, हो जब मन बेचैन।
शांति नहीं क्षणभर मिले, जीवन में दिन रैन ॥

७९ जो कुछ तुम बनना चाहते हो, पहले उसका संकल्प करो, फिर तन्मय बन जाओ।

८० गहरी आस्था, लम्बा समय और अनवरत अभ्यास से तन्मयता निष्पन्न हो सकती है।

८१ जीवन के किसी भी क्षेत्र में यदि किसी को विजय प्राप्त करनी है, सफल होना है तो उसे उस कार्य में पागल हो जाना जरूरी है।

तप

८२ तपे बिना खेती नहीं होती, तपे बिना पैसा नही मिलता, फिर तपे बिना आत्मकल्याण या आत्मिक प्रभुता मिलना कैसे संभव होगा ?

८३ तप वह है, जो आत्मा को पवित्र बनाता है। तप वह है, जो साधना का मार्ग प्रशस्त करता है। तप वह है, जो लक्ष्य की दूरी को मिटाता है।

८४ तप का वर्चस्व देवीशक्ति को भी प्रतिहत कर सकता है।

८५ श्रद्धापूर्वक किया गया तप भारभूत नहीं होता।

८६ वे समस्त प्रवृत्तियां तप के अन्तर्गत आती है, जो हमारे मन, वचन और शरीर को शुद्ध कर हमें कर्म-मुक्ति की ओर अग्रसर करती हैं।

८७ तप सुख का निधान है।

८८ तप और त्याग का अग्निस्नान करके ही साधना का सोना चमकता-दमकता है।

८९ वह तप तप नही, जिस तप के कारण औरों की हत्या होती है।

९० मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि तप का तेज हिंसा की शक्ति को निरस्त् कर सकता है।

तपस्या

९१ मनोयोग से किसी भी अच्छे कार्य मे लग जाना ही तपस्या है।

९२ तपस्या का अर्थ है—मन और इन्द्रियों की आसक्ति पर अंकुश लगाना।

९३ विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से की गई तपस्या से ही जीवन को सार्थक दिशा मिलती है।

९४ बिना तपस्या सफलता का द्वार नहीं खुल सकता।

९५ मन में कुटिलता है, हृदय साफ नहीं है तो बाहरी तपस्याओं से कोई लाभ होने वाला नहीं है।

९६ तपस्या सही माने में तभी सार्थक होती है, जब उसमें मानसिक समाधि हो।

९७ ध्यान, स्वाध्याय, मौन आदि के अभाव में तपस्या अधूरी है।

९८ बुराइयों के प्रति अनुताप, पश्चात्ताप और भीतर की बुराइयों को मिटाने के प्रयास भी तपस्या के अन्तर्गत हैं।

९९ तपस्या शरीर को क्लान्त करने के लिए नहीं, शांति के लिए होती है।

१०० तपस्या निर्ममत्व का एक प्रयोग है। उससे पराक्रम की ज्योति प्रज्वलित होती है।

१०१ तपस्या जीवन को जगाने का सफल उपक्रम है।

१०२ स्वप्रशंसा सुनकर न फूले, इसे मैं कठिन तपस्या मानता हूं।

१०३ तपस्या की गंगा में स्नान कर आत्मा को निर्मल बनाने का काम कठिन तो बहुत है, पर जिनको इसमें रस आने लगता है, वे हर कठिनाई को लांघकर अपना मनोरथ पूरा कर लेते हैं।

१०४ तपस्या आनन्द का स्रोत है।

१०५ शश्वज्जडोऽपि जडजोऽपि सदाश्रयेण,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदविदुः।
मिथ्यात्विनोऽप्यसुमतस्तपसाश्रितस्य,
धर्मित्वमस्तु विषये विरुणद्धि कोऽत्र॥

(जड मेघ से उत्पन्न पानी की एक बूद सीप का आश्रय पाकर मोती बन जाती है। उसी प्रकार मिथ्यात्वी भी तपस्या के आश्रय से धर्म का आशिक आराधक बन जाता है। इस विषय मे किसका विरोध हो सकता है ?)

१०६ क्षमायुक्त तपस्या बहुत फलवती होती है। जिस तपस्या के साथ क्षमा नही जुड़ती, वह अकिंचित्कर हो जाती है।

१०७ पहलो दुख भूख, मुख थूकणी चलावै भावै,
आवै है उवाक आ भी वाकवी तपस्या में।
जी घबरावै, रवि-घाम पसरावै जद,
आन्त भी तपावै, होवै वांत भी तपस्या में।
नींद कम आवै, दूंद सारी सूख ज्यावै,
अंग रंग पलटावै, पडै कष्ट जो तपस्या में।
तो भी मन-माझी राखै जोरदार वाजी,
ता ते ताजी वीर वृत्ति को नमूनो है तपस्या में॥

१०८ तपस्या चाहे कोई करे, सबकी अच्छी है। मिश्री खाने से क्या मुसलमान और क्या हरिजन—किसका मुख खट्टा होगा ?

१०९ इष्ट के वियोग में संतुलित रहना बहुत बड़ी तपस्या है।

११० अभिनन्दन की चाह तपस्या के फल को दुर्बल और कमजोर बना देती है।

१११ तपस्या का अर्थ है—आत्मा से विजातीय तत्त्वों को दूर करना।

११२ शरीर में शैथिल्य एवं दौर्बल्य आने के बावजूद भी तपस्या से आत्मशक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है।

११३ जो व्यक्ति अपने शरीर, इन्द्रिय और मन का संयम कर सकता है, वही तपस्या के क्षेत्र में गति कर सकता है।

११४ तपस्या का वास्तविक आनन्द तपस्वी ही भोग सकता है।

११५ तपस्या भी यदि बलात् करनी पड़े तो वह हठयोग है।

११६ तपस्या से आदमी को कष्ट जरूर होता है पर वह कष्ट परमसुख की ओर ले जाने वाला है।

११७ तपस्या एक सुरक्षा-कवच है। इस कवच को जो पहन लेता है, वह अनेक खतरों से बच जाता है।

११८ तपस्या से निखरा व्यक्तित्व न केवल स्वयं ही तेजस्वी बनता है अपितु अपने आस-पास को भी प्रभावित बना देता है।

११९ ध्यान करना तपस्या है तो जनकल्याण के लिए चलना भी तपस्या है। मौनव्रत तपस्या है तो जनकल्याण के लिए बोलना भी तपस्या है। भूखे रहना तपस्या है तो संयम की परिधि में खाना भी तपस्या है।

१२० तपोवन में की जाने वाली तपस्या एकांगी है। वास्तविक तपस्या जीवन के हर क्षण के साथ जुड़ी हुई है।

१२१ दिखावटी तपस्या समाज को अज्ञान के अंधेरे की ओर ले जाती है।

१२२ बिना आकांक्षा से की जाने वाली तपस्या अतिरिक्त आंतरिक प्रसन्नता की अनुभूति देती है।

१२३ तपस्या शरीर है तो मौन, मानसिक संतुलन, आत्मिक शांति और श्रम उसके अलंकरण हैं।

१२४ तपस्या का मूल साधना ही है, देह-पीड़ा या किसी प्रकार के सम्मान या यश को प्राप्त करना नहीं।

१२५ तपस्या के साथ जप का योग होने से तपस्या में निखार आ जाता है।

१२६ तपस्या में सहिष्णुता की शक्ति विकसित होती है ।

१२७ स्वाध्याय, सत्-सेवा आदि कार्य भी तपस्या है ।

१२८ तपस्या भी उतनी ही की जानी चाहिए जिससे मानसिक प्रसन्नता भंग न हो ।

१२९ तपस्या आत्मशुद्धि और शाति का परम साधन है, यदि वह मानसिक समाधिपूर्वक और निष्काम भाव से की जाए ।

१३० तपस्या औषध भी है ।

१३१ दृढ़ मनोबल के बिना कोई भी व्यक्ति तप नही तप सकता और न उसके अजीर्ण से बच सकता है ।

तपस्वी

१३२ तपस्वी भी यदि सहनशील नही है, क्रोध करता है, कलह करता है तो उसकी तपस्या सफल नहीं होती ।

१३३ आज्ञा और अनुशासन में चलने वाला ही तपस्वी हो सकता है ।

तपोबल

१३४ जिस राष्ट्र के पास तपोबल नहीं होगा, उस राष्ट्र की श क्त क्षीण हो जाएगी ।

तम्बाकू

१३५ व्यसन मात्र हैं बुरे अरे ! क्या तम्बाकू में धरा पड़ा ।
श्वास कास कैंसर तक होते, और फेफडा सडा पड़ा ॥

तरुण

१३६ तरुण-पीढी से मैं तीन अपेक्षाएं रखता हूं—

१. आचार-व्यवहार, खान-पान और रहन-सहन सादा और सात्त्विक हो ।

२ विघटनमूलक प्रवृत्तियों से ऊपर उठकर अपने संगठन पक्ष को सुदृढ़ बनाएं ।

३. जीर्ण शीर्ण, अर्थहीन समाज के लिए भारभूत रूढ परम्पराओं को समाप्त करने के लिए कटिवद्ध हों ।

१३७ मेरी दृष्टि में तरुण वह होता है जो जागृत, उत्साही, कर्मठ और जोखिम उठाने के लिए उत्सुक रहता है और यंत्र न बनकर स्वतंत्र चिन्तन करता है ।

१३८ तरुणों में कार्यजा शक्ति की प्रबलता होती है, यदि उसका उचित संयोजन हो ।

१३९ जिसका लक्ष्य स्थिर नहीं और लक्ष्य तक पहुंचने का संकल्प दृढ नहीं, वह लक्ष्यहीन और संकल्पहीन तरुण कुछ कर सकेगा, इस संभावना को ही समाप्त कर देना चाहिए ।

१४० तरुण वह होता है जो वर्तमान को समझता है और वार्तमानिक समस्याओं का समाधान वर्तमान के धरातल पर खोजता है ।

१४१ तरुण पुरुपार्थ के प्रतीक होते हैं । उनकी सांसों पर समूचे राष्ट्र की धडकनें निर्भर रहती है ।

१४२ जिस देश या वर्ग की तरुण पीढ़ी जितनी सक्षम होती है, वह देश और वर्ग उतना ही सक्षम बन जाता है ।

१४३ किसी भी समाज की तरुण पीढी उसके लिए वरदान भी हो सकती है और अभिशाप भी ।

१४४ किसी भी देश की तरुणपीढी आंदोलन, तोड-फोड अपराधों के दौर से तभी गुजरती है, जब उसके सामने कोई ठोस रचनात्मक काम नहीं होता ।

तर्क

१४५ तर्क के तीखे बाण आस्था की आत्मा को बींध डालते है ।

१४६ तर्क सत्य की कसौटी नहीं है ।

१४७ श्रद्धा का चरम रूप ही तर्क है—यह मैं इस अर्थ में कहता हूं कि जिस विषय में हमारी श्रद्धा प्रबल होती है, उसी विषय में हमारे अपने तर्क दौडते है ।

१४८ तर्कों की बीहड घाटी में पग-पग पर खतरे का भय बना रहता है और मंजिल कहीं दूर छूट जाती है ।

१४९ जो व्यक्ति कोरे तर्क-जाल में फंस जाता है, वह न कुछ पा सकता है और न आगे बढ़ सकता है।

१५० तर्क वहां उठता है, जहां पूर्ण विश्वास का अभाव हो।

१५१ जहां व्यवहार में तर्क का अतिशय प्रवेश हो जाता है, वहां पारस्परिक सम्बन्ध शिथिल पड़ जाते है।

१५२ जिज्ञासायुक्त तर्क श्रेयस् का हेतु है जबकि शुष्क तर्क केवल वाग्विलास व दिमागी व्यायाम है।

१५३ विषमता में तर्क का जाल फैलता ही जाता है, साम्य में कोई तर्क नही होता।

१५४ चाहे तर्क कितना ही आगे बढ़ जाए, आखिर मंजिल को पाने के लिए श्रद्धा का संबल लेना ही होगा।

१५५ मैं तर्क का सर्वथा खण्डन नहीं करता, वह भी एक सीमा तक उपयोगी है, पर सभी जगह तर्क नहीं होना चाहिए।

१५६ श्रद्धागम्य-तत्त्व तर्क से समझ में नही आता।

१५७ तर्क तो कुरेदने के लिए होता है। समझने के लिए श्रद्धा ही महत्त्वपूर्ण है।

तलाक

१५८ तलाक समाधान नही, विवशता है।

१५९ तलाक का मूल कारण है—प्रकृति का असामजस्य।

१६० जिन समाजों में तलाक प्रथा का प्रचलन है, वे ज्यादा सुखी नहीं है।

तल्लीनता

१६१ बिना तल्लीनता और एकाग्रता के किसी भी क्षेत्र में सफलता नहीं मिल सकती।

१६२ जिसकी तल्लीनता सध जाती है, उसे और कुछ दिखाई नही देता। भारी कोलाहल मे भी उसे कुछ सुनाई नही देता। उसकी आंखों में एक ही दृश्य, एक ही सपना और एक ही उत्सुकता रहती है।

१६३ जो व्यक्ति जिस कार्य में लगा है, उसमें यदि लीन नहीं होगा, उससे भावित नही होगा, उसके रंग में नहीं रंगेगा, तब तक उसे अच्छे ढंग से कर नही सकेगा।

१६४ तल्लीनता हर कार्य में अपेक्षित है। बुराई करने वाला भी अपने कार्य में बिलकुल तल्लीन हो जाता है, तभी सफलता मिलती है।

तव-मम

१६५ तेरे-मेरे से उपरत व्यक्ति के लिए सारा संसार ही अपना बन जाता है।

१६६ तेरी मेरी वस्तु कह, जो करता व्यवहार।
उसकी संयम साधना, बन जाती बेकार॥

१६७ तव-मम का भेदभाव रहने तक कोई भी समस्या पूरी तरह सरल नहीं हो सकती।

तादात्म्य

१६८ जो व्यक्ति विश्वचेतना के साथ तादात्म्य की अनुभूति कर लेता है, वह किसी भी प्राणी की व्यथा को अपनी व्यथा अनुभूत कर सकता है।

१६९ तादात्म्य जुड़े बिना किसी भी समस्या को समझना और उसका समाधान प्रस्तुत करना कठिन हो जाता है।

१७० समुद्र में तैरने वाले का उसके साथ तादात्म्य हो जाता है, इसलिए अपार जलराशि के नीचे आ जाने पर भी उसे भारानुभूति नही होती। पतले से वृन्त बड़े-बड़े फलों को धारण कर लेते है पर तादात्म्य के अभाव में ऐसा नहीं हो सकता।

तानाशाही

१७१ जहां-जहां सत्ता केन्द्रित हुई है, तानाशाही को पनपने का अवसर मिला है।

१७२ भय और विषमता तानाशाही के सूचक है।

तारुण्य

१७३ जीवन में तारुण्य की अनुभूति का भी अपना एक स्वाद है और ऐसा स्वाद है जिसके आकर्षण से छुटकारा ही नहीं मिलता।

१७४ तारुण्य का सम्बन्ध अवस्था से अधिक विचारों से है।

१७५ तारुण्य वह अवस्था है, जहां विकास की नई संभावनाओं का उदय होता है।

१७६ तारुण्य का अमूल्य रत्न जब वार्धक्य की अंधेरी गलियों मे खो जाता है, तब खोजने पर भी फिर उपलब्ध नहीं होता।

१७७ क्रियाशीलता, ओजस्विता, शक्तिसम्पन्नता, पुरुषार्थवादिता, मुसीबतों को झेलने की क्षमता, नई-नई मुसीबतों को मोल लेने की चाह, आग से खेलने की तड़प—ये ऐसी स्थितियां है, जिन्हें तारुण्य का प्रतीक कहा जा सकता है।

१७८ तारुण्य जीवन की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अवस्था है। उसके कुछ विशेष चिह्न हैं, जो बचपन और बुढापे से उसे पृथक् करते है।

१७९ तारुण्य जीवन की स्वर्णिम अवस्था है।

१८० प्रारम्भ में जो उत्साह होता है, उसका अंत तक स्थायी रहना, शुरू किए गए कार्य को पूरा करने का दृढ संकल्प तारुण्य का विशेष चिह्न है।

तार्किक

१८१ तार्किक व्यक्ति में स्थायित्व नहीं आ पाता।

१८२ तार्किक व्यक्ति ज्ञान का विकास तो कर सकता है पर जीवन का नही।

तितिक्षा

१८३ तितिक्षा का अर्थ गलत प्रवृत्तियों के प्रति सहानुभूति दिखाना कतई नहीं है।

तिथि

१८४ महापुरुषों के जीवन के साथ जुड़कर हर तिथि पुण्यमयी वन जाती है।

तीर्थ

१८५ हर व्यक्ति का जीवन तीर्थ वन सकता है, अगर उसकी चिंतनधारा में आग्रह और अहं न हो तथा आचार और विचार समन्वित हों।

१८६ जिस ज्ञान रूपी घाट के द्वारा ससार-समुद्र का पार पाया जाता है, वह तीर्थ कहलाता है।

तीर्थंकर

१८७ तीर्थंकर जो कहते है, वही शास्त्र वन जाता है और वे जो करते है, वही विधि वन जाती है।

१८८ तीर्थंकर वही हो सकता है, जो न केवल आत्मा से किन्तु शरीर से भी शक्ति-सम्पन्न होता है।

तीर्थस्थल

१८९ महापुरुष के चरण जहां टिकते हैं, वही तीर्थस्थल हो जाता है।

तीव्रता

१९० तीव्रता के विना व्यक्ति पूर्णता तक नहीं पहुंच सकता।

तुच्छता

१९१ किसी के प्रति तुच्छ जवान वोलना अपनी तुच्छता प्रकट करना है।

तृप्ति

१९२ अगर आत्मा मे तृप्ति है तो कुछ मिले या न मिले, व्यक्ति संतुष्ट रहता है।

१९३ तृप्ति आत्मशांति की उपलब्धि की सूचक है।

१९४ जिसको ज्यादा तृप्ति होने लगती है, उसकी अतृप्ति भी उसी वेग से बढने लगती है।

तृष्णा

१९५ तृष्णा आत्ममदिर मे जलने वाली भयकर आग है, जो जीवन की हरी-भरी फुलवारी को दग्ध कर डालती है।

१९६ तृष्णा एक दुर्जेय शत्रु है। जिसने तृष्णा पर काबू पा लिया, उसने सारे संसार को जीत लिया।

१९७ मानव का पेट तो आसानी से भर सकता है, पर तृष्णा का पेट नही भरता। सारी समस्याएं उसी से उत्पन्न होती है।

१९८ तृष्णा स्वयं परिग्रह है।

१९९ रूप, तेज और यौवन के चले जाने पर भी तृष्णा एक ऐसी वस्तु है, जो दिन-रात बढ़ती रहती है।

२०० तन री तृष्णा तनिक कहावै।
मन री तृष्णा मिणी न जावै॥

२०१ भूमि और मन के गड्ढे कभी नही भरते।

२०२ तृष्णा शीघ्र बुझती नही है पर उसको शांत करने का उपाय त्याग और संकल्प है।

२०३ भविष्य की अनन्त आवश्यकताएं तृष्णा के रूप में फलित होती है।

२०४ जीवन को सयमी, सुसंस्कृत, समुज्ज्वल व समुन्नत बनाने के लिए भोग और तृष्णा की ज्वालाओं से त्राण पाना आवश्यक है।

तेज

२०५ संख्यया नैधते तेजः, तेजः शक्त्याभिवर्धते।
नयन्ति गौरवं संघमपि चाल्पे तपस्विनः॥
(तेज सख्या से नही, शक्ति से वढता है। थोड़े से तपस्वी भी सघ की गौरववृद्धि कर सकते हैं।)

तेजस्विता

२०६ तेजस्विता का रहस्य है—हिमालय जैसी अविचल संकल्प-शक्ति, परम अर्थ से अनुप्राणित समर्पण और अडिग आत्म-विश्वास ।

२०७ जीवन में तेजस्विता तभी आएगी, जब सत्य, अहिंसा की साधना होगी ।

तेजस्वी

२०८ कोई भी संघ या व्यक्ति तेजस्वी तभी बनता है जब उसमें बलिदान की भावना जागती है ।

२०९ जो व्यक्ति तेजस्वी होता है, वही इस संसार में टिक सकता है, अन्यथा युग के थपेडों में वह कभी का समाप्त हो जाता है ।

२१० जो अपने आप पर नियंत्रण नही रख सकता, वह तेजस्वी नहीं बन सकता ।

तेजोलेश्या

२११ तेजोलेश्या छोड़ती, मन पर दिव्य प्रभाव ।
उजले आभावलय से, सुख का प्रादुर्भाव ।।
आकर्षण आभाजनित, आकृति पर मृदु हास ।
पतझर में भी फूलता, कोई नव मधुमास ।।

२१२ तेजोलेश्या के जागने पर चित्त की अस्थिरता से होने वाले द्वन्द्व समाप्त हो जाते है और भीड़ मे भी अकेलेपन के आनंद की अनुभूति होने लगती है ।

तेरापंथ

२१३ परिस्थितियों के सामने घुटने न टेकने का जो महान् संकल्प है, वही है—तेरापंथ ।

२१४ आचार-शिथिलता को जो चुनौती है, वही है—तेरापंथ।

२१५ अनुशासनहीनता के प्रति जो विद्रोह है, वही है—तेरापंथ।

२१६ धर्म के स्वरूप को अविकृत रखने का जो प्रयत्न है, वही है—तेरापथ।

२१७ सत्य-शोध की जो सतत प्रवृत्ति है, वही है—तेरापंथ।

२१८ धर्म की जो वैज्ञानिक व्याख्या है, वही है—तेरापंथ।

२१९ प्रभो! तुम्हारे पथ पर हमने, लो अपना बलिदान किया।
तेरापंथ हमारा प्यारा, सब पंथों को छान लिया॥

२२० संघ शक्ति का उदाहरण है, तेरापंथ महान्।
अंगद-पद बन खड़ा निरन्तर, जिसका अटल विधान॥

२२१ तेरापंथ किसी व्यक्ति-विशेष या वर्ग-विशेष की थाती नहीं है, वह मानव-मात्र का है।

२२२ तेरापंथ अनंत शान्ति रो, साधन है, शोधन है।
अनुशासन रो उदाहरण है, विघन-हरण अविघन है॥

२२३ तेरापथ री के पहचाण? एक गुरु अरु एक विधान।
तेरापथ री के पहचाण? धर्म, अहिंसा, त्याग-प्रधान॥

२२४ तेरापंथ धर्मसंघ की मूल भित्ति है—स्वस्थ विचार, शुद्ध आचार और सुनियोजित संगठन।

२२५ आचार्य भिक्षु ने मस्तिष्क के कागज पर अनुभव की कलम से जिस प्रज्ञा को अंकित किया, वही विधान तेरापंथ बन गया।

२२६ भारी-भारी तपसी संता, स्यूं सींच्योड़ी नींव।
इण शासन रो सदा सुरक्षित, है इतिहास सजीव॥

२२७ सारां पेली आ बात बड़ी, है एक सुगुरु रो हाल-हुकम,
पत्तो भी एक नहीं हालै, आज्ञा री हलचल है हरदम।
चेला-चेली पुस्तक पाना, सब एक धणी री सम्पत् है,
धणियाप नहीं इण पर किणरो, किणरो हक है, न हुकूमत है।

२२८ परमारथ प्रतिपथिक हित, पापपान्थ पलिमंथ।
जयतु जयतु जगतीतले, त्रैशल! तेरापंथ॥

२२९ शरद, ग्रीष्म, हेमंत, शिशिर, वर्षा वसंत सब इस गण में ।
उत्साही नर सदा सफल, होता जीवन समरांगण में ॥

तैजसशक्ति

२३० तैजसशक्ति जग जाती है तो जीवन मे लयबद्धता स्वयं आ जाती है ।

त्याग

२३१ त्याग की महत्ता वहां अधिक है, जहां मनुष्य सुलभता से मिलने वाली भोग्य सामग्री का परित्याग कर दे ।

२३२ जिसने सब कुछ त्याग कर दिया, समझना चाहिए उसने ही सब कुछ प्राप्त कर लिया ।

२३३ त्याग को विकसित करने के लिए सर्वप्रथम अहिंसा के द्वार खटखटाने होंगे ।

२३४ त्याग का अर्थ है—वासना को मिटाना और असद्वृत्तियों को छोड़ना ।

२३५ त्याग-भाव एक ऐसा प्रहरी है, जो प्रतिपल बुराइयों का आगमन रोकता रहता है ।

२३६ जीवन-शुद्धि के लिए जो कुछ किया जाता है, वह सब त्याग और तपस्या में समाविष्ट हो जाता है ।

२३७ जो केवल भोग करना जानते है, किन्तु त्याग करना नही जानते, उन्हें न प्रकाश प्राप्त होता है और न स्वास्थ्य ।

२३८ त्याग की कीमत साधारण नही है । उसके लिए तो आत्मोत्सर्ग करना होता है ।

२३९ व्यक्ति अपने त्याग, तपश्चर्या, साधना से स्वय समष्टि बन जाता है, संस्था बन जाता है ।

२४० मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति त्यागने से जो उपलब्ध होता है, वह अपने आप में विलक्षण है ।

२४१ त्याग के बिना लोकतंत्र कभी सफल नहीं हो सकता ।

२४२ जीवन मे त्याग को जितना अधिक प्रश्रय मिलेगा, जीवन उतना ही सुखी, शान्त और उद्‌बुद्ध होगा।

२४३ त्याग जीवन का अभ्युदय है।

२४४ त्याग-चेतना के बिना न तो आजादी मिल सकती है और न उसे सुरक्षित रखा जा सकता है।

२४५ त्याग से घबराना हिसा की ओर गति है।

२४६ त्याग और परिश्रम के बिना कोई दूसरों को कुछ कहेगा, तो उसकी बात कोई सुनना भी नहीं चाहेगा।

२४७ जहां त्याग होता है, वहां लोगों के सिर अपने आप झुक जाते हैं।

२४८ त्याग की शिक्षा लेने के लिए हमें कहो बाहर की ओर नही झांकना होगा। वह भारत के चप्पे-चप्पे में भरी पडी है।

२४९ जो लोग त्याग-भग होने के बहाने त्याग से कतराते है, वे वास्तव में त्याग करना ही नहीं चाहते।

२५० त्याग जीवन को ऊंचाई की ओर ले जाने वाली सरणि है, आनन्द-अनुभूति की प्रक्रिया है।

२५१ सक्षम शिव-संधान मनुज तन, सार निकारो।
'तुलसी' त्याग, तपस्या स्यूं, निज नैया तारो॥

२५२ त्याग को मुख्यता देने से ही व्यक्ति, समाज और राज्य की समस्त व्यवस्थायें सुन्दर रूप से संचालित हो सकती है।

२५३ त्याग की परम्परा अक्षुण्ण रखकर ही जीवन की विषम व गहन खाइयों को पाटा जा सकता है।

२५४ त्याग के अभाव में तृप्ति भी अतृप्ति को बढ़ावा देने वाली होती है।

२५५ जब त्याग में आनन्द आने लगेगा तो भोग अपने आप छट जाएगे।

२५६ त्याग की पावन प्रतिष्ठा, सत्य सरिता मे नहा।
त्यागियों के चरण में, नत शीष जनमानस रहा॥

२५७ दुःख के विष-वृक्ष की जड़ काटने के लिए त्याग का कुठार चलाना ही होगा।

२५८ हतभाग्य मनुष्य ही त्याग से विमुख रहते हैं।

२५९ त्यागभाव एक ऐसा अमूल्य रत्न है, जिसके सामने सारी सम्पदाएं गौण हो जाती हैं।

२६० त्याग का सम्बन्ध वस्तु के भाव या अभाव से नहीं, आकांक्षाओं के अभाव से है।

२६१ जो व्यक्ति त्याग या विसर्जन की प्रक्रिया से परिचित है, वही खोने के आनन्द का अनुभव कर सकता है।

२६२ झूठ त्याग देंगे तो सचाई अपने आप निखर उठेगी, दूसरों के प्रति संयम बरतेंगे तो सद्भावना अपने आप बढेगी, अपने आपमें संयत रहेंगे तो शांति स्वयं बढ़ेगी।

२६३ त्याग के फलित हैं—संकल्पशक्ति का विकास, अनुराग के केन्द्र का बदलाव, विषय और उससे होने वाली वासना तथा आसक्ति को छोड़ने का संकल्प।

२६४ सादगी और सरलता गरीबी की स्थिति नहीं है, किन्तु त्याग की महिमा है।

२६५ जिन्हें त्याग का अभ्यास नही, उन्हें नश्वर भोगलीलाओं के आवर्तन-परिवर्तन में बडी यातनाएं झेलनी पड़ती है।

२६६ त्याग की महत्ता को किसी भी युग में कम नहीं किया जा सकता।

२६७ त्याग की सार्थकता है—मन का बदलाव।

२६८ त्याग वस्तुत: भाग्य का जागरण है।

२६९ खाने को रोटी नहीं मिली, यह त्याग नहीं है, पर मिली हुई रोटी स्वेच्छा से नहीं खाई—यह त्याग है।

२७० प्रतिष्ठा, मान, सम्मान सदा त्याग का रहा है, भोग और विलास का नहीं।

२७१ स्वयं अर्थ और सत्ता से चिपक कर रहने वाला व्यक्ति जब दूसरों के सामने त्याग की दुहाई देता है, तो वह हास्यास्पद बन जाता है।

२७२ स्त्रियों के लिए आत्म-सौन्दर्य का सच्चा आभूषण तो त्याग ही है।

२७३ त्याग का आदर्श तो यही है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं से अधिक पदार्थ रखने की चेष्टा न करे।

२७४ त्यागबल मे ही चरित्र की ऊंचाई संभव है।

२७५ त्याग तो वीरों का मार्ग है, फिर उससे संकोच कैसा ?

त्याग और भोग

२७६ भोग में स्पर्धा हो सकती है, पर त्याग में प्रतिस्पर्धा करना कठिन है।

२७७ भोग-पिपासा में जहा वीभत्सता है, वहां त्याग—तितिक्षा मे रमणीयता है।

२७८ भोग जीवन की दुर्बलता है और त्याग शक्ति का जीता-जागता उदाहरण।

२७९ त्याग के द्वार पर पहुंचने मे जो ऊर्जा मिलती है, वह भोग से नहीं मिल सकती।

२८० त्याग के आनंद की अनुभूति भोग में कभी नही हो सकती।

त्यागी

२८१ उत्कृष्ट त्याग उनका है, जो सब प्रकार की सुविधाओं व अनुकूलताओं के बावजूद भी अपने आपको आत्मसाधना में समर्पित करते हुए स्वेच्छा से भोगोपभोग को तिलांजलि दे देते है।

२८२ अतिभाव मे पदार्थ का विसर्जन करने वाला उच्चकोटि का त्यागी नहीं हो सकता।

२८३ दरिद्र और त्यागी दोनो अकिंचन होते हुए भी एक नही होते।

२८४ जो अभाव या विवशता से पदार्थ का भोग कर नही पाता, वह त्यागी नहीं है।

त्यागी और भोगी

२८५ जहां भोग छूटने पर भोगी दुःख पाता है, वहां त्यागी आनंद का अनुभव करता है।

२८६ त्यागी लाखों रुपए खोकर भी दुःखी नही होगा और त्याग को न समझने वाला लाखों रुपए पाकर भी सुखी नही होगा।

त्यौहार

२८७ त्यौहार आए और मन में उल्लास न हो, यह ऐसी ही बात है कि सूरज तो उगा, पर रोशनी नहीं मिली।

त्राण

२८८ त्राण और शरण मिलने पर व्यक्ति की शक्ति बहुगुणित हो जाती है।

२८९ व्यक्ति की अपनी आत्मा ही त्राण और शरण है।

त्रासदी

२९० किसी भी युग की सबसे बडी त्रासदी है—जीवन-मूल्यों की उपेक्षा।

त्रिपदी

२९१ समता, क्षमता और ममता की त्रिपदी को आत्मसात् करने के बाद न किसी को धोखा दिया जा सकता है, न किसी का शोषण किया जा सकता है, न हिंसाजनित विलास-सामग्री का उपभोग किया जा सकता है और न किसी जानवर का शिकार किया जा सकता है।

त्रिपुटी

२९२ वात, पित्त और कफ के संतुलन की भांति जीवन में सम्यग्-ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की त्रिपुटी का होना आवश्यक है, अन्यथा जीवन-विकास संभव नही है।

२९३ शिक्षा, साधना और सेवा की त्रिपुटी किसी भी व्यक्ति या वर्ग को कहीं से कहीं पहुंचा सकती है ।

त्रिलोकीनाथ

२९४ एक अकिंचन ही त्रिलोकीनाथ हो सकता है ।

त्रिवेणी

२९५ मनन, चिंतन और तादात्म्य की त्रिवेणी में ही आत्मस्थिति का अनुभव संभव है ।

२९६ लक्ष्यबद्धता, तादात्म्य और समर्पण की त्रिवेणी जिस मार्ग से बहे, वहां धरा अंकुरित न हो, यह कभी नहीं हो सकता ।

२९७ ज्ञान, आस्था और क्रियाशीलता ऐसी त्रिवेणी है, जो जीवन में सच्ची पावनता और उत्तमता का संचार करने वाली है ।

त्रुटि

२९८ छोटी दीखने वाली त्रुटियां भी व्यक्ति को विनाश के भीषण गर्त में ढकेल देती हैं ।

२९९ हर व्यक्ति के पास एक ऐसी आंख होनी चाहिए, जिससे वह अपनी त्रुटियों को, कमियों को देख सके और करणीय के प्रति सचेत हो सके ।

३०० आत्मनिरीक्षण के अभाव में व्यक्ति बहुत-सी त्रुटियों को दोहराता रहता है ।

३०१ यदि हमें त्रुटियां खोजनी हैं तो स्वयं के जीवन में खोजनी चाहिए ।

त्रैकालिक सत्य

३०२ त्रैकालिक सत्य हर युग के लिए मूल्यवान है ।
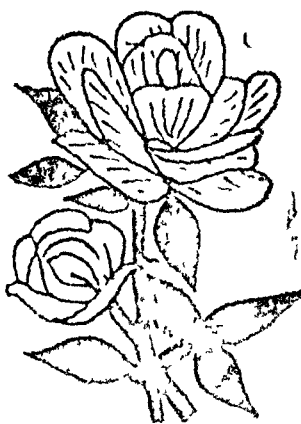
थकान

१ विना लक्ष्य के चलने वाला व्यक्ति शीघ्र ही थककर चलने मे विरत हो जाता है ।

२ शारीरिक बुढ़ापे की अपेक्षा मन का बुढापा अधिक थकान लाता है ।

३ शरीर या मन थकान का अनुभव करे, उस समय उन पर दवाव डालना हानिप्रद हो सकता है।

४ कार्य थकान पैदा नही करता। मानसिक व्यग्रता थकान ला देती है ।

५ वहुत अधिक गुस्सा करने के वाद आदमी थक जाता है। यह थकान उसे शान्त होने की प्रेरणा देती है।

६ लक्ष्य कितना ही दूर क्यों न हो, विना थके और विना रुके चलने वाले वहां तक पहुंच ही जाते हैं ।

७ उत्साही मन थकान को रोकता है और निरुत्साही मन से शरीर पर थकान उतरती है ।

थाह

८ गुरु-गरिमा की थाह नही पाई जा सकती ।

९ जीवन भर अध्ययन करने पर भी विद्या की थाह नहीं पाई जा सकती ।

१० समुद्र गहरा होता है उसकी थाह पाई जा सकती है। पर मानव मन की थाह पाना असंभव है।

थाती

११ पूर्वजों से प्राप्त थाती को सुरक्षित रखना सरल काम नहीं है। प्रमादी व्यक्ति पूर्वजों की थाती को खो देते हैं।

१२ मनुष्य अपनी सांस्कृतिक थाती को बढ़ा न सके, रोहिणी न बन सके, तो कम से कम रक्षिता की भूमिका में तो खड़ा रहे।

१३ आगम हमारी बहुमूल्य थाती है। उसकी रक्षा संस्कृति की सुरक्षा है।

थूहर

१४ थूहर केवल 'शो' के लिए ही नहीं, वह सुरक्षा-पंक्ति (बाड) के रूप में भी उपयोगी है।

१५ थूहर में कांटे होते हैं। वे बुरे ही नही होते। वे प्रत्येक व्यक्ति मे जागरूक रहने की चेतना जागृत करते हैं।

१६ थूहर के कीडा (थोहरिया) लग जाता है तो पूरी थूहर जाति के अस्तित्व को खतरा हो जाता है।
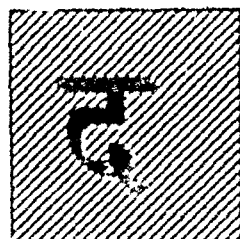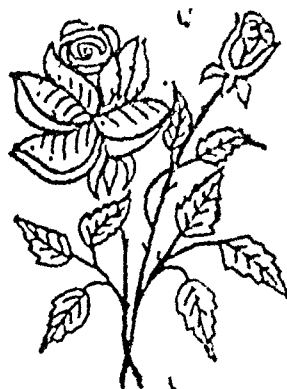
दंभ

१ जाति, कुल, विद्या, शक्ति, शरीर, धन और हुकूमत का अह करता हुआ मानव यह भूल जाता है कि ऐसा करना दंभ—पाखंड है।

२ जब तक जीवन-व्यवहार मे दंभ रहेगा, हिंसक प्रवृत्तियां रहेंगी, तब तक जीवन में शांति का समावेश हो सके, यह कम संभव लगता है।

३ आत्मसाधना के बिना जनकल्याण का दावा करना दम्भ है।

४ दम्भचर्या से मनुष्य अपनी प्रतिष्ठा और विश्वास को गंवा देता है।

दंभी

५ ज्यों-ज्यों जीवन में कृत्रिमता आई, वैषयिकता आई, त्यों-त्यों मानव दंभी बनता गया।

६ मृत्युदर्शन यदि सामने रहे तो व्यक्ति दम्भी नहीं हो सकता।

दक्षता

७ वह दक्षता भी अपराध है, जिससे समाज का शोषण होता है।

८ यह मानव की दक्षता है कि जहां अपने स्वार्थ का हनन होता है, वहां वह अपने बचाव का साधन खोज लेता है अन्यथा मध्यस्थ रहता है।

दण्ड

९ दण्ड की व्यवस्था उन्ही के लिए होती है, जो अपने आप पर शासन नहीं कर सकते।

१० मनुष्य दण्ड की भाषा को जितना समझता है, उतना हृदय की भाषा को नहीं समझता।

११ जहां कोरा दंड ही दंड चले, वह राष्ट्र स्वस्थ नहीं रह सकता।

१२ दण्ड ऐसा नहीं होना चाहिए, जो मानवीय नीति की सीमा को लांघ जाए।

१३ दण्ड और व्यवस्था के आधार पर जो काम होता है, उसमें आरोपण हो सकता है, स्वीकरण नहीं।

दबाव

१४ दबाव की प्रक्रिया में चाहे, वह अहिंसात्मक ही क्यों न हो, सूक्ष्म मानसिक हिंसा का समावेश होता ही है।

१५ दबाव या प्रभाववश लिए गए व्रतों में तेज नहीं आ सकता।

१६ अपनी बात दूसरों को दृढ़ता से बताई जाए, इसमें कोई कठिनाई नही। पर अपनी बात मनवाने के लिए दबाव डालना, संघर्ष करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं।

दमन

१७ दमन बाध्यता है, जिसमें से कुण्ठा ही आ सकती है, आनन्द नहीं।

१८ जीभ पर नियंत्रण किए बिना दमन का पाठ अधूरा रहता है।

१९ दमन बलपूर्वक होता है और उदात्तीकरण समझपूर्वक।

२० दूसरों के द्वारा बलपूर्वक किया गया दमन आत्म-सम्मान में बाधक है।

२१ दमित वृत्तियां व्यक्ति को किसी भी क्षण उत्पथ में ले जा सकती हैं।

२२ दमन का काम सुगम तो हो सकता है, पर उसमें स्थायित्व नहीं हो सकता।

२३ जहां दमन होता है, वहां स्वतन्त्रता का हनन होता है।

२४ दमन से व्यक्ति की शक्तियां कुंठित होती हैं।

दयनीय

२५ जगत् में सबसे अधिक दयनीय वे हैं, जिनका जीवन विकारों में फंसा है और जो दुर्व्यसनी है।

दया

२६ पापमय आचरण से अपनी या दूसरे की आत्मा को बचाना दया है।

२७ जिसे तू मारना चाहता है, वह तू ही है—यह दया का मौलिक मंत्र है।

२८ आंतरिक रोगों से पीडित आत्मा को स्वस्थ करना दया है।

२९ मरने वाले का प्राणनाश होता है और मारने वाले का आत्मनाश—यह तत्त्व जब तक हृदय में नहीं बैठता, तब तक दया सजीव नहीं बनती।

३० दोषों और आंतरिक रोगों से पीड़ित आत्मा को मुक्त कर उसे सही रास्ते पर ला देना दया है, अहिंसा है।

३१ राग-द्वेष की भावना से मुक्त होकर प्राणिमात्र के प्रति समता की भावना का नाम अहिंसा है। इस का ही दूसरा नाम दया है और दया का फलित ही अभयदान है।

३२ दूसरों को न मारना वस्तुतः अपने प्रति की हुई दया है, दूसरे के प्रति नहीं।

३३ जो स्वदया करता है, उसके लिए परदया अपने आप होती है।

३४ यदि दया करनी है तो अपनी हीनता के प्रति कीजिए, किसी को 'बेचारा' मानकर नही।

३५ यत्र अहिंसा तत्रैव दया, यत्र नाहिंसा न च तत्र दया।
(जहां अहिंसा है, वहां दया होती है और जहां अहिंसा नहीं होती, वहां दया नही होती।)

३६ किसी को न मारूं, न सताऊं—यह करुणा का निर्मल स्रोत दया है।

दयापात्र

३७ दयापात्र हैं वे बेचारे, क्या उन पर हम रोष करे?
अपना पाप छुपाने करते, पर-निंदा जो जोशभरे।।

दरार

३८ छोटी सी भी बात डाल देती है बड़ी दरारें।
गलतफहमियों से खिच जाती, आंगन में दीवारें।।

दरिद्र

३९ मै मुफ्तखोर करोडपति को सबसे ज्यादा दरिद्र मानता हू।

४० शोषण और अन्यायाचरण से बना धार्मिक आंतरिक दृष्टि से दरिद्र होता है।

४१ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की सम्पदा जिसके पास हो, वह कभी दरिद्र नहीं हो सकता।

४२ एक दरिद्र आदमी भी यदि निश्चितता की जिन्दगी जीता है तो मै उसे श्रेष्ठ मानता हूं।

४३ व्यक्ति धन-कुवेर होने पर भी यदि चरित्रहीन है तो वह सबसे बड़ा दरिद्र है।

४४ यदि पैसा नहीं होने से कोई दरिद्र हो जाता, तो सबसे बड़े दरिद्र तो साधु होते। पर उनके सामने तो सम्राटों के भी सिर झुक जाते हैं।

दरिद्रता

४५ दरिद्रता समाज के लिए अभिशाप है। इस अभिशाप से मुक्त हुए विना कोई भी समाज आगे नहीं बढ सकता।

४६ व्यापारियों के अभाव में आर्थिक दरिद्रता आती है और दार्शनिकों के अभाव में वैचारिक दरिद्रता।

दर्प

४७ मिथ्या दर्प छोड़ने से ही ज्ञान की आराधना और मोक्ष की साधना फलित होती है।

४८ धर्म की मजाक उड़ाने वाले अथवा इसके अस्तित्व को उखाड़ फेंकने के लिए प्रयत्नशील व्यक्तियों का दर्प सदा आहत हुआ है और होता रहेगा।

४९ दर्प दूसरे के प्रति घृणा के भाव पैदा करता है।

५० विकास की शृंखला तब तक आगे वढती रहेगी, जव तक मन में दर्प नही आएगा।

दर्पण

५१ दर्पण गुण-दोष दिखा सकता है, वना नहीं सकता।

५२ जिस दर्पण में व्यक्ति झांककर देखता है, वह यदि धुंधला है तो उसमें प्रतिविम्वित छवि साफ-सुथरी कैसे होगी ?

दर्शन

५३ दर्शन संसार की आध्यात्मिक भूख को शान्त करने का अमोघ साधन है।

५४ दर्शन का अर्थ है—जीवन का निरीक्षण, आत्मा का अन्वेषण।

५५ जो दर्शन तत्त्वों पर टिका हुआ होता है, उसके अनुयायी चाहे कम हों पर वह अधिक वजनदार होता है।

५६ वीतराग की जो स्वानुभूत सत्यमूलक वाणी है, उसका नाम दर्शन है।

५७ दर्शन चिंतन-धारा का नाम है। वह किसी व्यक्ति विशेष या वर्ग विशेष से बंधा हुआ नहीं है।

५८ उलझनों को सुलझाने के लिए दर्शन की विशेष अपेक्षा रहती है।

५९ प्रारम्भ में दर्शन का विषय अत्यन्त रूखा और नीरस-सा प्रतीत होता है, किंतु ज्यों-ज्यों उसकी तह में पहुंचते हैं वह रसीला, स्निग्ध, रुचिकर और आनन्दप्रद अनुभव होने लगता है।

६० आत्मना आत्मावलोकन है यही दर्शन।
अन्तरात्मा में सहज हो सत्य का स्पर्शन ॥

६१ दर्शन मिथ्या हो तो व्यक्ति हर बात को उल्टी ग्रहण करता है।

६२ 'मैं कौन हूं'—इसे जानना ही दर्शन है।

६३ जो धर्म या दर्शन जन-जीवन की समस्याओं को अनदेखा छोड़ देता है, वह दीर्घकाल तक अपने अस्तित्व को सुरक्षित नहीं रख सकता।

६४ दर्शन समाज-विकास की चाबी है।

६५ आत्मा का निश्चय दर्शन है।

६६ दर्शन मनुष्य की सत्याभिमुखी प्रगति का स्वाभाविक क्रम है।

६७ जो दर्शन वर्तमान में नया बोध नहीं दे सकता, वह अतीत में चाहे कितना ही बड़ा क्यों न रहा हो, पर आज उसका कोई मूल्य नहीं हो सकता।

६८ ज्ञान और आचरण का सही होना दर्शन के सहीपन पर निर्भर करता है। दर्शन का मिथ्यात्व ज्ञान और आचरण को भी दूषित कर देता है।

६९ आज दर्शन ऐसा आकर्षक शब्द बन गया है कि राह चलते व्यक्ति के चिंतन को भी दर्शन के लेबल से मंडित कर दिया जाता है।

७० विचारों की विविधता दर्शन को जन्म देती है। जितने विचार उतने दर्शन।

७१ कषाय को कृश किए विना मोह कृश नहीं होगा और मोह की कृशता के विना दर्शन निर्मल नहीं होगा।

७२ उसी दर्शन का अस्तित्व सुरक्षित रह सकता है, जिसमें वौद्धिक चुनौतियों को झेलने की क्षमता है।

७३ दर्शन का अध्येता कभी संकीर्ण विचारधारा से प्रभावित नहीं हो सकता।

७४ दर्शन से जीवन को अलग नही किया जा सकता। कहीं वह उत्तेजक बनता है, कहीं अवरोधक और कहीं व्यापक। वह सत्प्रकृति का उत्तेजक, असत्-प्रकृति का अवरोधक और सदाचार की दिशा में व्यापक है।

७५ जव तक किसी वस्तु को साक्षात् नही देख लिया जाता, तव तक सुने-सुनाए या पढ़े-पढ़ाए के आधार पर उसे जानना अधूरा दर्शन है।

७६ जिस जीवन में कोई दर्शन नही, वह जीवन, जीवन नहीं कहा जा सकता।

७७ दर्शन आग्रह, हठ व पकड़ नहीं सिखाता, तत्त्व का साक्षात्कार कराता है।

७८ दर्शन और कुछ नही, जीवन की व्याख्या है, विश्लेषण है।

८९ चैतन्य के विकास से दर्शन का उदय होता है और चैतन्य-विकास में वह विलीन हो जाता है।

८० जो दर्शन जितना विशद होता है, उतना ही आत्मस्पर्शी होता है।

८१ दर्शन व्यक्ति को अतीत का लेखा-जोखा और भविष्य के लिए स्वस्थ निर्णय देता है।

८२ स्वयं सत्य का अन्वेषण करना और प्राणिमात्र के साथ मैत्री रखना—यह दर्शन का मौलिक सूत्र है।

दर्शन और आचरण

८३ कोरा दर्शन जीवन को रूपान्तरित नहीं कर सकता और कोरा आचरण मानदण्ड नहीं बन सकता। दर्शन की धरती पर उगा हुआ आचरण का पौधा ही अच्छी तरह से फलता-फूलता है।

८४ दर्शन जितना विशुद्ध होगा, आचरण पक्ष भी उतना ही उज्ज्वल हो जाएगा।

८५ दर्शन के अनुरूप आचरण न हो, यह अधूरापन है। आचरण हो और उसके पीछे कोई दर्शन न हो, यह भी अधूरापन है।

८६ दृष्टि और आचरण—इन दो तटों के बीच में ही सुख-दुःख अथवा सौभाग्य और दुर्भाग्य की नदी बहती है।

दर्शन और प्रदर्शन

८७ जहां प्रदर्शन होता है, वहां दर्शन गौण हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप अच्छी से अच्छी चीज भी दोषपूर्ण हो जाती है।

८८ दर्शन व्यक्ति को आत्म-केन्द्रित बनाता है, प्रदर्शन उसको भटकाने वाला सिद्ध होता है।

दर्शन और विज्ञान

८९ विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ दर्शन की प्रगति का सन्तुलन रहे, यह आवश्यक है।

९० जीवन का गतिरोध तभी मिटेगा, जब विज्ञान के साथ दर्शन का भी विकास होगा।

दर्शन और साहित्य

९१ दर्शन के बिना साहित्य सक्षम नहीं बनता और साहित्य के बिना दर्शन नीरस बन जाता है।

दर्शनकेन्द्र

९२ दर्शन-केन्द्र प्रसिद्ध है, हितकर आज्ञाचक्र।
भृकुटि-मध्य प्रेक्षा सफल, जो मन रहे अवक्र॥

दल

९३ दलों को रोका नही जा सकता, किंतु जब उनकी बाढ आ जाती है, तब दलदल की स्थिति पैदा हो जाती है।

९४ दल शक्ति के माध्यम हैं, इस मान्यता का मैं विरोध नहीं करता; पर वे मनुष्य-जाति को खण्डित करने में लग जाएं, तब समस्या उलझती है।

९५ यदि दल का मूल्य मानवता से अधिक हो जाता है तो उसका रस सूख जाता है।

९६ जो दल अपने सदस्यों के दिलों में अपने सिद्धान्तों के प्रति आस्था पैदा नहीं कर सकता, उनमें अनुशासन नही रख सकता, वह दल देश की बागडोर संभाल सकेगा, मुझे इसमें सन्देह है।

दलबंदी

९७ तुच्छ स्वार्थ के लिए दल विशेष का घेरा तैयार करने वाला व्यक्ति महान् हितों से वंचित रहता है।

९८ किसी भी संगठन में दलबंदी होना दुःखद बात है।

९९ जो दलबंदी अर दल-दल स्यूं, दूर रहै दश हाथ।
संघ हितेच्छू तिण री तुलना, रखिया रोहिणी साथ॥

१०० जहां पदलिप्सा होती है, वहां दलबंदी होती है।

१०१ मजा किरकिरा कर देती है, आपस की तकरार।
काम नही करने देती, दलबन्दी की दीवार॥

दहेज

१०२ मां अपनी बेटी की व्यथा से व्यथित होकर भी बहू की व्यथा को अनुभव नहीं करती। इस स्थिति के कारण दहेज जैसी मर्मान्तक पीड़ाए समाज को भोगनी पड़ रही है।

१०३ दहेज कभी प्रेम का प्रतीक था, पर आज वह अभिशाप बन गया है।

१०४ दहेज की प्रतिस्पर्धा से जीवन इतना बोझिल बन जाता है कि मानव का मूल्यांकन मानवता से न होकर पैसे से होने लगता है।

१०५ मेरी दृष्टि में जो वस्तु लालसा से ली जाती है, वह दहेज की श्रेणी में आती है।

१०६ लालसा की मनोदशा ने ही दहेज को दानव बनाकर समाज के सामने खडा कर दिया है।

१०७ जहां एक ओर लाखों लोग अन्न के अभाव में भूखे मरते हों, वहां दहेज के नाम पर लाखों करोडों के प्रदर्शन का क्या औचित्य हो सकता है ?

१०८ लड़का और लड़की दोनो अपने माता-पिता की सन्तान है, फिर भी लड़की के प्रति उपेक्षा और इससे भी आगे उसे भारभूत मानने का बड़ा कारण दहेज की रूढ़ि है।

१०९ प्रदर्शन की भावना से दी जाने वाली वस्तु ही वास्तव में दहेज है।

११० अपनी पीढी की तेजस्विता और यशस्विता के पहरुए बनकर एक साथ सैकडों हजारों युवक-युवतियां जिस दिन बुलंदी के साथ दहेज के विरुद्ध आवाज उठाएगे, दहेज की परम्परा चरमराकर टूट पड़ेगी।

१११ दहेज वह कॅसर है, जिसने समाज को जर्जर बना दिया है।

११२ दहेज के कारण होने वाली हत्या बर्बरता है।

११३ दहेज को मैं नारी के असम्मान का प्रतीक मानता हूं।

११४ सामाजिक जागृति के अभाव में दहेज जैसी प्रथाएं उगती हैं।

११५ कहां तो कन्या का गृहलक्ष्मी के रूप में सर्वोच्च सम्मान और कहां विवाह जैसे पवित्र संस्कार के नाम पर मोल-तोल ! यह कुविचार ही नही ,कुकर्म भी है।

११६ दहेज एक घिनौना सामाजिक अपराध है, तथा मानवता का क्रूर उपहास।

११७ दहेज के कारण कितनी ही कन्याएं असमय में कुचल दी जाती है और उनका विकास कुंठित हो जाता है।

दाता

११८ दान देने वाला तभी फल पाता है, जबकि लेने वाले का संयम पुष्ट होता है।

११९ दैणै वालां री कमी नहीं।
लेणै वाला स्यूं जमीं ढहीं॥

दान

१२० किसी को रोटी खिलाना, पानी पिलाना दान नहीं, सामाजिक सहयोग है। सच्चा दान है—किसी अज्ञानी को ज्ञानी बना देना।

१२१ सडी-गली और अनावश्यक वस्तुओं का दान देकर स्वयं को कृतार्थ समझना दान के औचित्य को कम करना है।

१२२ बादल समुद्र के खारे पानी को आत्मसात् कर मीठा कर देता है और वही जल लोगों के पीने के काम आता है। मधुमक्खियां फूलों से रस ग्रहण कर उसे मधु के रूप में परिवर्तित कर देती हैं। पर मनुष्य कितना दरिद्र है! वह केवल लेना जानता है, देना नहीं।

१२३ इच्छाओं की अनंतता में वस्तुओं का दान क्या मूल्य रखता है?

१२४ जिसके पास जो देने को है, वही तो वह देगा। इसमें बुरा क्या मानना?

१२५ अन्याय और बुराइयों से पैसा कमा कर उस पाप से मुक्ति पाने के लिए दान देना चाहते हो। यह दान की विडम्बना है।

१२६ जनता आपके दान की भूखी नहीं है। वह चाहती है अन्याय और अत्याचार की कमाई बन्द हो।

१२७ दाता, देय और पात्र तीनों विशुद्ध होने से ही पवित्र दान का लाभ मिल सकता है।

१२८ सामने वाले व्यक्ति को दीन-हीन मानकर कुछ देना दान नहीं, मैं इसे अहं का पोषण मानता हूं।

१२९ दान का अधिकारी वह होता है, जिसने स्वेच्छा से सब कुछ त्याग दिया हो।

१३० जनता दान नहीं, अधिकार मांगती है।

दान और विसर्जन

१३१ खाना तैयार है पर उपवास की इच्छा से खाने का त्याग कर देना विसर्जन है और उस खाने को दूसरे को दे देना दान है।

दान-दया

१३२ दान ऐसा देना चाहिए, जिससे अहिंसा का पोषण हो। दया ऐसी करनी चाहिए जिसमें हिंसा का समावेश न हो।

दानव

१३३ संकल्पपूर्वक हिंसा करने वाला मानव मानव नहीं, दानव है।

दायित्व

१३४ जहां दायित्व हो वहां गंभीरता, दूरदर्शिता और चिंतन की सूक्ष्मता होनी चाहिए।

१३५ दायित्व का निर्वाह बड़ी कला है, जीवन की सफलता है। हर व्यक्ति दायित्व निभाना नहीं जानता।

१३६ दायित्व-निर्वाह के लिए सबसे पहले स्वयं के जीवन का निर्माण जरूरी है।

दायित्वशील

१३७ झूठी और सच्ची सब आलोचनाओं को झेलने की क्षमता जिसमें होती है, वह अपने स्वीकृत दायित्व का कुशलता से निर्वाह करता है।

१३८ जितना अधिक दायित्व, उतना अधिक संयम। संयम के द्वारा दायित्व की अनुभूति करने वाले व्यक्ति अपने दायित्व का निर्वाह सफलता से कर सकते हैं।

१३९ दायित्व को समझने वाला व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों से भटक नहीं सकता।

१४० तंत्र चाहे कोई आ जाए पर जब तक अधिकार-पद पर बैठा व्यक्ति दायित्वशील नहीं होगा, तब तक वह ठीक से काम नहीं कर सकेगा।

दारिद्र्य

१४१ दारिद्र्य का स्रोत व्यसन है।

दारू

१४२ दारू पीने वाला जीवन की खुशियों को कौड़ियों के मोल बेच देता है।

१४३ दारू से विवेक, संयम, ज्ञान, सत्य, शौच, दया, क्षमा आदि सद्गुण उसी तरह विलीन हो जाते हैं, जैसे अग्नि से तिनके।

१४४ दारू मनुष्य को राक्षस बना देती है।

१४५ बड़े-बड़े राजा महाराजा, शाह मिले मिट्टी में।
खाक बन गए जल जलकर, इस दारू की भट्टी में॥

१४६ दारू एक ऐसा व्यसन है, जिससे व्यक्ति अपने जीवन तथा परिवार को दुःखमय बना लेता है।

१४७ दर्दनाक दारू की घटना, यादवकुल की याद करो।
झूठ-मूठ पी घूंट जहर की, क्यों जीवन बरबाद करो?

१४८ आदमी को बेजान कर देने वाली यह दारू वास्तव में जहर के समान है।

१४९ बरबाद कर दिया सबको, दारू की इस बोतल ने।
मानव की मानवता को, मुंह फाड़े खड़ी निगलने॥

१५० दारू का प्रयोग कर मनुष्य एक भयंकर नैतिक अपराध करता है।

१५१ जिस व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र में दारू पीने का नशा लग जाता है, वहां बहुमुखी पतन का रास्ता खुल जाता है।

१५२ दारू मनुष्य को अंधकार में ले जाती है।

दार्शनिक

१५३ आदर्श दार्शनिक ही आदर्श प्रशासक होता है।

१५४ दार्शनिक जीवन के सभी रहस्यों पर सूक्ष्मता से विचार करता है।

दास

१५५ आज दास कौन नहीं है? कोई मन का दास है तो कोई इंद्रियों का दास है। कोई वासना का दास है, कोई अपनी वृत्तियों का दास है, तो कोई सत्ता का दास है।

१५६ संसार आशा का दास है, पर आशा संतों की दासी है।

१५७ विषय कषाय वासना रो तू, दास आश अणपार।
रीते चूल्हे फूक दिया छा ज्यासी मूंडे छार॥

दासता

१५८ स्वतंत्रता और दासता—ये दो बेमेल शब्द है। स्वतंत्रता से दासता का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। स्वतंत्रता पाने के बाद भी यदि दासता की स्थिति बनी रहती है तो वह व्यक्ति गुलाम का गुलाम बन जाता है।

१५९ चेतन-जड़ के कदमों मे लुठे, इस अवांछनीय दासता ने मानव को नि.सत्त्व बनाया है।

१६० दासता मे कभी संतोष और सुख की सांस नही ली जा सकती।

१६१ दासता विकास की सबसे बड़ी बाधा है।

१६२ दूसरों का सहयोग लिया जा सकता है किंतु उन पर निर्भर हो जाना दासता और दीनता है।

१६३ धन की दासना सामन्ती मनोवृत्ति की देन हो सकती है, पर जब देश से सामन्तवाद की जड़ें उखड़ जाएं, फिर भी उस मनोवृत्ति को पोषित करना कहां की समझदारी है ?

दासप्रथा

१६४ जो विधान दास-प्रथा को मान्यता देता है, वह मानवीय स्वतंत्रता की हत्या करता है ।

दिग्मूढ

१६५ निरालम्बन बनने की स्थिति उपलब्ध न हो और आलम्बन सारे छूट जाएं, उस स्थिति में व्यक्ति दिग्मूढ हो जाता है ।

१६६ तमसावृत जन दिग्मूढ हुए ।
अपना ही आपा भूल गए ।।

दिग्व्रत

१६७ अपर के अधिकार हित का, हरण करना हेय है ।
इसलिए दिग्गमन का व्रत श्रेय है, आदेय है ।।

दिनचर्या

१६८ दिनचर्या की अस्त-व्यस्तता व्यक्ति को कभी चैन से नहीं जीने देती ।

१६९ जब तक सोने और जगने की क्रिया व्यवस्थित नहीं होगी, तब तक दिनचर्या व्यवस्थित कैसे बन सकेगी ?

दिल

१७० जब दिल बड़ा होता है तो छोटा स्थान भी बड़ा बन जाता है ।

दिवालियापन

१७१ श्रद्धा, आस्था और समर्पण जहां जीवन के उपयोगी तत्त्व हैं, वहां मात्र अंधानुकरण बुद्धि का दिवालियापन है ।

१७२ स्खलनाओं के भय से, प्रमाद व कषाय के भय से संयम स्वीकार करे ही नहीं, यह बुद्धि और चिंतन का दिवालियापन है।

दिव्यजीवन

१७३ दिव्यजीवन वही है, जो कोई माने या न माने, कोई सुने या न सुने, सदा अपनी समता में स्थिर रहे।

दिव्यता

१७४ जैसे-जैसे सत्य उपलब्ध होता है, वैसे-वैसे जीवन की दिव्यता प्रकट होती जाती है।

१७५ दिव्यता प्राप्त होते ही आत्मा की अनंत शक्ति जाग जाती है।

दिशा

१७६ दिशा की स्पष्टता पर प्रत्येक चरण गतिमान होता चला जाता है।

१७७ जीवन की दिशा बदलने का बहुत बडा साधन है—अतीत की विस्मृति।

दिशादर्शन

१७८ शक्ति को सही दिशादर्शन बहुत अपेक्षित है, अन्यथा उससे बड़े से बडा अनर्थ घटित हो सकता है।

१७९ अनजानी राहों पर बिना दिशादर्शन के भटकाव सहज होता है।

दीक्षा

१८० दीक्षा वह रेखा है, जहां पर गृहस्थ-जीवन की सीमा समाप्त होकर साधु जीवन में प्रथम चरण रखा जाता है।

१८१ चैतन्य की अनुभूति का प्रथम क्षण ही दीक्षा है।

१८२ दीक्षा कोई क्रियाकाण्ड, परम्परा या रूढ़ि नही है। वह एक जीवन्त प्रयोग है, जो जीवन को नए अनुभव प्रदान करता है।

१८३ दीक्षा एक आध्यात्मिक संस्कार है।

१८४ दीक्षा जीवन का वह उन्मुक्त पथ है, जो वासनाओं के दलदल से निर्लिप्त, स्वार्थों की चकमक से अप्रतिहत, वैमनस्य और शत्रुभाव के शोलों से अदग्ध, क्लेश और कदाग्रह से अछूता और सात्त्विकपन का जीवंत रूप प्रस्तुत करता है।

१८५ दीक्षा वह दिशाबोध है, जो जीवन को रूपान्तरित करता है और व्यक्ति को बंधनमुक्ति की दिशा में अग्रसर करता है।

१८६ वैराग्य की अनुभूति ही दीक्षा है।

१८७ दीक्षा क्या है? हिंसा से अहिंसा की ओर गति करने का संकल्प; असत्य से सत्य की ओर गति करने का संकल्प; चोरी से अचौर्य की ओर गति करने का संकल्प; अब्रह्मचर्य से ब्रह्मचर्य की ओर गति करने का संकल्प; परिग्रह से अपरिग्रह की ओर गति करने का संकल्प; अंधकार से प्रकाश की ओर गति करने का संकल्प।

१८८ दीक्षा का अर्थ है—गुरुचरणों में अपना सम्पूर्ण समर्पण।

१८९ दीक्षा जीवन का उत्सर्ग है।

१९० दीक्षा ऐसा जन्म है, जिस जन्म में गर्भवास के कष्ट नहीं उठाने पड़ते बल्कि प्रसन्नता के साथ भविष्य के कष्टों का स्वीकरण और उनका मुकाबला करना होता है।

१९१ दीक्षा अदम्य आत्मबल का जीता-जागता उदाहरण है।

१९२ दीक्षा स्वयं के जीवन की समीक्षा एवं सही परीक्षा है।

१९३ दीक्षा दी नहीं, ली जाती है। जो दी जाती है, वह हृदय को नहीं छू सकती। जो ली जाती है उसमें हृदय होता है, प्राण होता है।

१९४ दीक्षा का मतलब है—भोगों को ठुकराकर यावज्जीवन त्यागमय जीवन बिताना।

१९५ दीक्षा प्राप्ता न च प्राप्ता, आत्मानन्दो यदोदयम्।
तथा त्यक्तं गृहं नाम, न त्यक्ता गृहवासना॥
(दीक्षा स्वीकार कर लेने पर भी जिसके भीतर आत्मानंद का उदय नहीं होता, उसने घर अवश्य छोड़ा है किंतु घर की वासना नहीं छोड़ी।)

१९६ दीक्षा व्यक्ति मे विराट् की यात्रा है।

१९७ अयोग्य दीक्षा साधु-सस्थाओं के भविष्य को अन्धकारमय बनाने वाली है।

१९८ व्रतों को जीवन में उतारना ही दीक्षा है।

१९९ दीक्षा कांटों का पथ है। इसमे सब प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाओं का बलिदान करना होता है।

२०० दीक्षा से जीवन विषम नही, सम बनता है।

२०१ दीक्षा भावधारा के परिवर्तन की स्पष्ट सूचना है।

२०२ दीक्षा और साधना की कसौटी आयु नही, वल्कि व्यक्ति का ज्ञान, व्यवहार और तीव्र वैराग्य है।

२०३ दीक्षा जीवन का भाग्योदय है।

२०४ दीक्षा देखने, सुनने या पढ़ने से नही, अनुभव करने से गम्य हो सकती है।

२०५ मेरी दृष्टि में दीक्षा-संस्कार एक ऐसा रस है, जो जीवन में सरसता का द्वार खोल देता है।

२०६ दीक्षा स्ववशता है, परवशता नही।

२०७ दीक्षा पलायन नही किन्तु जीवन का रूपान्तरण है।

२०८ भारतीय संस्कृति में दीक्षा एक ऐसा सस्कार है, जिससे जीवन-निर्माण का स्रोत खुल जाता है।

२०९ शिक्षित से शिक्षित व्यक्ति भी यदि आचार-कुशल न हो तो वह दीक्षा के अयोग्य है और कम से कम शिक्षित भी आचरण में कुशल हो तो वह दीक्षा का अधिकारी है।

२१० दीक्षा जीवन की सबसे बड़ी सुरक्षा है।

२११ त्याग और तपस्या के द्वारा जीवन का निर्माण करना ही वास्तविक दीक्षा है।

दीक्षित

२१२ दीक्षित व्यक्ति की जीवनचर्या कठोर होती है, पर उसमे सहज शांति और आनंद की उपलब्धि होती है।

२१३ दीक्षित होना अमर बनने की ओर प्रस्थान करना है।

दीन

२१४ परिस्थितियों की दुहाई देकर न्याय के मार्ग पर स्थिर न रह सकने की बात कहने वाले सचमुच दीन हैं।

२१५ मेरी दृष्टि में दीन वह है, जो चरित्रभ्रष्ट है, नीतिभ्रष्ट है, और जिसने अपनी मानवता को खुले आम बेच दिया है।

२१६ अहं से छूटकर दीन बनने का अर्थ है, कुए से निकलकर खाई में गिरना।

दीनता

२१७ दीनता व्यक्ति के आचार-विचार से ही आती है, न कि अर्थाभाव से।

२१८ जो व्यक्ति यह सोच लेता है कि मैं कुछ नहीं कर सकता, वह सचमुच कुछ नही कर पाता।

२१९ दयनीय दशा मे जो जीवै।
नित फाड-फाड़ कपड़ो सींवै ॥

दीपक

२२० दीपक चाहे आकार में छोटा हो, प्रकाश कम देता हो, फिर भी वह प्रकाश का प्रतीक है।

२२१ अन्धकार हमेशा था, आज भी है और आगे भी रहेगा। दीपक पहले भी जलाया जाता रहा है, आज भी जलाया जाता है और आगे भी जलाया जाता रहेगा।

२२२ दीपक बोलता नही, जलता है और प्रकाश फैलाता है।

दीपावली

२२३ दीपावली एक ऐसा पर्व है, जो अन्य पर्वों से विलक्षण है। वह लोकजीवन को खुशियों से सराबोर कर देता है।

२२४ हिंसा, असत्य, असदाचार और परिग्रह के भयावह अंधकार मे आत्मजागृति की लौ जलाना ही दीपावली पर्व का सन्देश है।

२२५ दीपावली पर्व की सार्थकता तभी है, जब बाहरी घर के साथ भीतरी घर को भी स्वच्छ और प्रकाशित करें।

दीर्घजीवन

२२६ दीर्घजीवन के अमोघ नुस्खे है—स्वस्थता, प्रसन्नता, मित्रता।

२२७ कम खाना और गम खाना—ये दीर्घजीवन के उपाय है।

दीर्घश्वास

२२८ प्रारम्भिक अभ्यास में, पांच सात उच्छ्वास।
दीर्घ साधना से स्वयं, संभव सतत विकास॥
एक मिनट में एक ही, जिस क्षण आए श्वास।
मनस्तोष मिलता प्रचुर, जग जाता विश्वास॥

२२९ वृत्तियों के रूपान्तरण का अमोघ उपाय है—दीर्घश्वास।

२३० दीर्घश्वास की साधना, चिरकालिक अभ्यास।
साधक को पल-पल रहे, अपना ही आभास॥

दीवार

२३१ पत्थर चूने से बने मकान के आंगन मे दीवार खीच दी जाती है तो आंगन का सौन्दर्य समाप्त हो जाता है। जब स्थूल दीवार का भी इतना प्रभाव हो सकता है, तब मन की धरती पर खड़ी होने वाली सूक्ष्म दीवारें भावनाओं में कितनी खरोंचे डाल सकती है !

दुःख

२३२ दुःख से घबराने और विचलित होने वाले की गति पतझड मे गिरे पत्ते की तरह होती है।

२३३ लोग अपनी अंतरात्मा की आवाज नही सुनते, दूसरों की सुनते है, यही दुःख का हेतु है।

२३४ ज्ञान का सूर्य उदित होते ही दुःख का अंधकार नष्ट हो जाता है।

२३५ दुःख एक कसौटी है, जिसमें मनुष्य परखा जाता है कि वह कुंदन है या पीतल, अच्छा है या बुरा।

२३६ दुःख से ही सुख की कल्पना होती है, क्योंकि वह सुख का आदि रूप है।

२३७ नहिं धन तो दुख, वहु धन तो दुख, त्यूं नहि वहु परिवार।
रांका नै दुःख, धींगा नै दुःख, वरतै दुःखम आर॥

२३८ दूसरे को अपना मानना दुःख का सबसे बड़ा हेतु है। यदि व्यक्ति किसी को अपना माने ही नहीं तो उसके जाने का दुःख क्यों हो?

२३९ मनुष्य अपने दुराचार के कारण दुःखी होता है।

२४० दुःखों का चक्र असत्य के सहारे चलता है। सत्य का साक्षात् होने पर यह चक्र समाप्त हो जाता है।

२४१ दुःख अपने ही कर्मों का भोग है। उसे भोगना तो पड़ेगा ही।

२४२ हमारे जीवन में जो भी दुःख है, वह सारा मानसिक विक्षेप-कृत ही होता है।

२४३ दुःख दूर तभी किया जा सकता है, जब मनुष्य गुण पर गर्व न करे और अवगुणों से पल्ला छुड़ाए।

२४४ यदि ससार में दुःख नहीं होता तो दुराचारी व्यक्ति अपनी बुराई को कभी नही छोड़ते। दुःख होता है, इसलिए वे बुराई छोड़ते है।

२४५ दुःख की जड़ अशांति है। इसीलिए तो सुख-संवर्धन के हजारों वैज्ञानिक उपकरणों के सुलभ होने पर भी सुख दुर्लभ होता जा रहा है।

२४६ जिसमें सुख की आकांक्षा नही है, उसे दुःख का भय नही हो सकता।

२४७ मैं सुख से भी अधिक महत्त्व दुःख को देता हूं। दुःख न हो तो मनुष्य अपने गंतव्य तक पहुंचने के लिए पथ का निर्माण नहीं कर सकता। दुःख से प्राप्त नए अनुभव ही व्यक्ति के लिए निर्बाध प्रकाश-किरणें है।

२४८ दु:ख वैयक्तिक है। उसे व्यक्तिगत सुधार से ही समाप्त किया जा सकता है।

२४९ दूसरों को दु:ख देकर कोई भी अपने को सुखी नहीं बना सकता ।

२५० दु:ख अपने आपमें एक महान प्रेरणा है ।

२५१ दु:ख को मनुष्य ने अपने हाथों निमंत्रित किया है। जब व्यक्ति अच्छा रास्ता छोड उज्जड़ पथ में चलेगा, कांटे तो चुभेगे ही और तकलीफें भी उठानी पड़ेगी ।

२५२ दु:ख सबके जीवन मे आता है पर इतना अवश्य है कि सामान्य आदमी जहां दु:ख से घबरा जाता है, अपना संतुलन खो देता है, वहां साधक पुरुष अपने आपको संतुलित रखने का प्रयास करता है और हंसते-हसते दु:ख का सागर लाघ जाता है ।

२५३ दु:ख का कारण अभाव ही नही होता, अतिभाव भी होता है।

२५४ दु:ख तभी पैदा होता है जब अपना मन नियंत्रित और अनुशासित नही होता।

२५५ दु:ख हिंसा से प्रसूत होता है।

२५६ अपने स्वभाव को भूल कर विभाव में जाना दु:ख है।

दुःखमुक्ति

२५७ दु:ख से मुक्त होने की चाह उसी मे जागती है, जो जीवन के यथार्थ को समझ लेता है।

२५८ दु:ख से मुक्ति पाने के लिए आवश्यक है कि समता का अभ्यास किया जाए।

२५९ हम दु.ख नही चाहते है तो हमें सुख-सुविधा को छोड़ना होगा।

२६० भूत और भविष्य के साथ जो वर्तमान में अनासक्त और नि:संग होकर चलता है, वह दु:खों से मुक्त हो सकता है।

दुःखी

२६१ यदि व्यक्ति सुख का वितरण करना सीख जाए तो कभी दुःखी हो ही नहीं सकता।

२६२ जो हर घटना को सम्यक् रूप में लेना जानता है, वह कभी दुःखी नही होता।

२६३ श्रम और मौन का जीवन जीने वाला कभी दुःखी नही होता।

२६४ दुःखी व्यक्ति कभी किसी को सुख का वरदान नहीं दे सकता।

२६५ दुःखी वह होता है, जो जीना और मरना नही जानता।

२६६ दूसरो की उन्नति देखकर जो व्यक्ति डाह करता है, वह दुःखी होता है।

२६७ दुःखी होने का मुख्य कारण है—चारित्रिक पतन।

दुनिया

२६८ दुनिया एक दौड़ है, जिसमें हर व्यक्ति एक दूसरे से आगे निकलने की कोशिश कर रहा है।

२६९ घटना दुर्घटना दुनिया री कुण नही देखै जाणै।
करुण दृश्य श्मशान घाट रो, प्रतिदिन ही पितवाणै॥

२७० स्वारथ स्यूं संभृत सारी।
दुनिया तलवार दुधारी॥

२७१ मैं तो समूची दुनिया को एक सराय मानता हूं। इसमे जो कुछ भी होता है वह अनहोना नहीं है।

२७२ पुरुष केवल अपने लिए ही न जिए और स्त्री केवल दूसरों के लिए ही न जिए। अपने लिए भी और दूसरों के लिए भी—इस अनेकान्त शैली से जीवन को संवार लिया जाए तो पूरी दुनिया पूरा जीवन जीने में सक्षम हो सकेगी।

२७३ देखो दुनिया री आ है चाल दुरंगी,
खिण भर में नंगी खिण में रंगी चंगी।
दो क्षण पहली जो हंस हंस पेट दुखावै,
क्षण में आंसूडां रो इतिहास बणावै॥

२७४ जिन्हें व्यक्ति अपना समझता है, जरा भी उसके स्वार्थ का व्याघात हुआ, वे झट त्योंरियां बदल लेते है। जिनके लिए वह जान देने को तैयार रहता है, जरा भी विपरीतता हुई, वे उसके जान के ग्राहक बन जाते है। यह है गुमराह दुनिया का स्वरूप !

२७५ यह दुनिया है। इसमें क्रूरता भी रहेगी, करुणा भी रहेगी, हिंसा भो रहेगी, अहिंसा भी रहेगी, दुराचार भी रहेगा, सदाचार भी रहेगा। हमें एक ही काम करना है कि क्रूरता, हिंसा एवं दुराचार का पलडा भारी हो रहा है, उसके स्थान पर करुणा, अहिसा और सदाचार का पलडा भारी करना है।

२७६ दुनिया में इतने दुःखों के अंदर रहते हुए भी मनुष्य सुख का अनुभव करता है, यह एक बड़े आश्चर्य की बात है।

दुनियादारी

२७७ दुनियादारी एक स्वप्नमात्र है पर मौत का आगमन उस स्वप्न को तोड़ देता है।

२७८ दुनियादारी में तो हिंसा, झूठ ठगाया ठाढी।
चले भोग संभोग परिग्रह, संग्रह री मति गाढी ॥

दुराग्रह

२७९ यदि दुराग्रह न हो तो ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग—इन सबका समन्वय हो सकता है।

२८० दुराग्रह के कारण अच्छे विचार भी अनुपयोगो बन जाते है।

२८१ सत्य असीम है। जब उसे किसी सीमा विशेष में बांध दिया जाता है, तब दुराग्रह की स्थिति पैदा होती है।

२८२ सत्य का आग्रह होना चाहिए, दुराग्रह नहीं।

दुराचार

२८३ दुराचार के कीटाणुओं का एक रूप है—विलास, दूसरा—फिजूलखर्ची और तीसरा—आवश्यकताओं को बढ़ाना।

२८४ दुराचार से बचने का सुन्दरतम उपाय है—सात्त्विक भय या अनुशासनात्मक भय।

दुराशा

२८५ दुराशा व्यक्ति को निष्क्रिय बना देती है।

दुरुपयोग

२८६ शक्ति अपने आप में सर्वथा निर्दोष है, दोष उत्पन्न होता है उसके दुरुपयोग से।

दुर्गति

२८७ जो व्यक्ति अशान्ति का जीवन जीता है, दुर्व्यसनों का दास है, लोकापवाद, घृणा एवं तिरस्कार आदि से होकर गुजरता है, उसकी जीते-जी दुर्गति हो जाती है।

२८८ जो व्यक्ति काम-भोगों की इच्छा करता है, वासना का गुलाम बनकर रहता है, वह दुर्गति को प्राप्त होता है।

२८९ काल असीम बितायो भमतां, भव-दधि भवर मझार।
दुर्गति री अति दारुण दलना, सहन करी हर बार॥

२९० शृंखलाहीन प्रगति भी दुर्गति है।

२९१ जो व्यक्ति इस जीवन में सहज, शांत और पवित्र जीवन जीता है, उसे बाद में दुर्गति क्यों प्राप्त होगी ?

दुर्गुण

२९२ दुर्गुणों की विद्यमानता में स्वतंत्रता की सही तस्वीर नहीं देखी जा सकती।

२९३ भीतर बैठे क्रोध आदि दुर्गुण बाहरी दुश्मनों से अधिक नुकसानदायी हैं।

२९४ अभिमान, दंभ, प्रमाद, क्रोध और असहिष्णुता—ये ऐसे भयानक दुर्गुण हैं जो जीवन को आदर्शों से गिराते है।

२९५ दुर्गुणों से बचो, जीवन शांत रहेगा; सुखी रहेगा।

दुर्घटना

२९६ बाद का पश्चात्ताप यदि पहले का विवेक बन जाए तो दुर्घटना टल जाती है।

२९७ सिद्धान्त और आचरणों की बढ़ती हुई असमानता समूचे संसार के लिए एक भयंकर दुर्घटना है।

२९८ व्यक्ति जब धर्म की सीमा से परे चला जाता है, तब जीवन में कोई न कोई दुर्घटना घटित हो जाती है।

२९९ दुर्घटना तब घटित होती है, जब सावधानी नही रहती।

दुर्जन

३०० विष-बुझे शस्त्रों से आहत व्यक्ति घाव भरने के बाद शस्त्र के जहर को भूल जाता है पर दुर्जनों के वचन का जहर जीवन भर अपना असर नही खोता।

३०१ कांटे बिखेरने वाले जब अपनी प्रकृति नहीं बदल सकते तो हम अपनी अच्छी प्रकृति क्यों बदले ?

३०२ दुर्जन के सुखी बनने की भित्ति खोखली होती है, यही कारण है कि उसका हृदय अपने दुष्कृत्यों के लिए सदा रोता रहता है।

३०३ जो व्यक्ति बिना किसी प्रयोजन के दूसरों का अनिष्ट कर देते है, वे दुर्जन नहीं तो और क्या हैं ?

३०४ दुर्जन व्यक्ति के सामने कितना ही अच्छा काव्य रख दो, वह उसको छिद्रान्वेषी दृष्टिकोण से ही देखेगा।

दुर्जनता

३०५ दुर्जनता जहर है, अतः दुर्जन की संगति निषिद्ध है।

दुर्दिन

३०६ अध्यात्म का अभाव ही सबसे बड़ा दुर्दिन है।

दुर्ध्यान

३०७ दूसरों की अहित-चिंता चित्त का दुर्ध्यान है ।
स्वप्रमादाचरण हिंसा पंथ में प्रस्थान है ।।

दुर्बल

३०८ दुर्बल व्यक्ति प्रवाह में तिनके की तरह बह जाते हैं, किंतु जिनकी आत्मा में बल होता है, वे युग के प्रवाह को बदलने में समर्थ होते है ।

३०९ मौसम की विभीषिका दुर्बल व्यक्ति को ही सताती है ।

३१० दुर्बल व्यक्ति के लिए जीवन भी समस्या है और मृत्यु भी ।

३११ दुर्बलों की क्षमा भी कायरता है । सक्षम लोगों की क्षमा ही वास्तविक क्षमा है ।

३१२ दुर्बल व्यक्ति हर क्षण भयभीत रहते है और अनैतिक शक्तियों से मुकाबला करने में अक्षमता का अनुभव करते है ।

३१३ दुर्बल को हर कोई चुनौती दे सकता है ।

३१४ व्यक्ति कितना दुर्बल और दयनीय है कि स्वयं अपने पर भी उसका अधिकार नही है !

३१५ व्यक्ति स्वयं दुर्बल न हो तो कोई भी परिस्थिति उसे दबा नहीं सकती ।

दुर्बलता

३१६ दुर्बलता जीवन के लिए अभिशाप है ।

३१७ भलमनसाहत बहुत अच्छी है, पर उसमें भी जब अति हो जाती है, तब वह दुर्बलता की प्रतीक बन जाती है ।

३१८ यह मानवीय दुर्बलता है कि मनुष्य किसी भी घटना के गलत प्रवाह में अधिक बहता है ।

३१९ असहिष्णुता, निरपेक्षता और अनुदारता—ये तीन मानव स्वभाव की महान् दुर्बलताएं हैं ।

३२० मन की दुर्बलता अच्छी से अच्छी परिस्थिति में भी व्यक्ति को अपने स्वीकृत आदर्शों से स्खलित कर सकती है ।

३२१ यदि व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं को विसर्जित या पराजित करना चाहता है तो वह उन्हे भार न समझे उन पर गुस्सा न करे, आतुरता न रखे, क्योंकि ऐसा करके वह अधिक दुर्बल बन जाएगा।

३२२ दूसरों के मजाक से घबराकर अपने सिद्धान्त को छोड देना दुर्बलता है।

३२३ दुर्बलता मनुष्य का सहज संस्कार है, फिर उसे बाह्य वातावरण का सहारा और मिल जाए तो वह बन्दर को बिच्छू काटने वाली बात हो जाती है।

३२४ मनुष्य की यह सबसे बड़ी दुर्बलता है कि वह दूसरे की विशेषता को परमाणु जितने छोटे रूप मे देखता है और उसकी गलती को पर्वत जितना बडा रूप दे देता है।

३२५ हिंसा किसी भी रूप में हो, वह मनुष्य की दुर्बलता है।

३२६ स्खलना के भय से संकल्प न करना दुर्बलता है।

३२७ धन को पाने के लिए मानवता को भूलना सबसे बड़ी दुर्बलता है।

३२८ दुर्बलता ने मानवता को, आत्मशक्ति को गुप्त किया।
मानो पारे ने सोने के, सही रूप को लुप्त किया॥

३२९ हर स्थिति मे अपने अहं का पोषण मनुष्य की दुर्बलता है।

३३० मानव दुर्बलताओं का पुतला है। जो उन दुर्बलताओं को छोड़ता चला जाता है, वह महान् बन जाता है।

३३१ बुढापा, मौत, बीमारी या दूसरी प्रतिकूल स्थितियां टलने की नहीं, उनसे निराश या भयाक्रान्त होना दुर्बलता है।

३३२ साधना की चेतना जितनी जागृत होती है, उतनी ही स्पष्टता से अपनी दुर्बलता दिखाई देने लगती है।

३३३ किसी बहाने से गलत काम करना अपनी दुर्बलता को छिपाने का दुष्प्रयत्न मात्र है।

३३४ असुविधाओं से घबराकर सत्यच्युत होना मानव की सबसे बड़ी दुर्बलता है।

३३५ मनुष्य की यह दुर्बलता रही है कि वह वर्तमान को कोसता है और कहता है कि वर्तमान युग समस्या-बहुल है किन्तु इस सचाई को जान लेना चाहिए कि बिना समस्या के कोई युग न था, न है और न रहेगा।

३३६ दुर्बलताओं से अर्थात् अनैतिक आचरणों से व्यक्ति उस क्षण ही मुक्त हो सकता है, जब वह सर्वात्मना सदाचरण के प्रति समर्पित हो जाता है।

३३७ एक कामुक व्यक्ति की कामुकता केवल चारित्रिक दुर्बलता ही नहीं, दृष्टिकोण की दुर्बलता भी है।

३३८ जब तक मानव समाज दुर्बलताओं से आक्रान्त रहेगा, उसकी उपयोगिता के आगे कोई न कोई प्रश्नचिह्न लगता रहेगा।

३३९ चिन्ताओं के कारण हिम्मत हारकर आत्महत्या करना दुर्बलता है, कायरता है।

३४० वैयक्तिक दुर्बलताओं को जीते बिना विजय संभव नहीं।

३४१ मनुष्य की दुर्बलता है कि वह एक दूसरे को सहन नहीं कर सकता।

३४२ विवेक और चिन्तनपूर्वक किसी काम का निर्णय ले लेने के बाद उससे पीछे हटना दुर्बलता है।

दुर्भाग्य

३४३ जब दुर्भाग्य उदित होता है, तब अनेक संकट बिना बुलाए ही चारों ओर से घेर लेते हैं।

३४४ आध्यात्मिक आस्था का अभाव बहुत बड़े दुर्भाग्य का सूचक है।

दुर्भावना

३४५ दुर्भावना का दुष्प्रभाव व्यक्ति के अस्तित्व को समाप्त कर सकता है।

दुर्भिक्ष

३४६ मनुष्यता और चरित्र का दुर्भिक्ष सबसे अधिक भयंकर होता है।

३४७ ज्ञान और आचार की समन्विति के बिना चारित्रिक दुर्भिक्ष की समस्या समाहित नही हो सकती।

दुर्व्यवस्था

३४८ व्यक्ति का हृदय बदलता है तो उससे आत्मिक दुर्व्यवस्था का अन्त होता है।

३४९ समाज मे दुर्व्यवस्था फैलती है, उसका दोषी आदमी ही है।

दुर्व्यसन

३५० जब तक मानव-जाति में एक भी दुर्व्यसन है, वह अपने आदर्श की ऊंचाई का स्पर्श नही कर सकती।

३५१ दुर्व्यसनों को प्रश्रय देना प्राप्त वरदान का दुरुपयोग करना है।

३५२ दुर्व्यसनों के जो दास बने, रहते मन राजा भोज बने,
इस अनुभवहीन गुलामी को, क्या मानव कभी मिटायेंगे?
चिर विस्मृत अपनी आत्मकथा, क्या मानव स्मृति मे लायेंगे?

३५३ यदि तुम अपना दिमाग संतुलित और शांत रखना चाहते हो तो दुर्व्यसनों को छोड़ दो।

३५४ दुर्व्यसनों के दास बनो मत, सही मार्ग पर आओ।
अणुव्रत के आदर्शों से, जीवन में संयम लाओ।।

३५५ दुर्व्यसनों में लिप्त रहने वाला व्यक्ति अपनी पूरी जिंदगी को बरबाद कर लेता है।

३५६ स्वर्णपात्र को व्यक्ति जब चाहे, औंधा करके धूलि झाड़ सकता है, पर दुर्व्यसनों और दुर्गुणों से भरे हुए जीवन को खाली करना बहुत कठिन होता है।

३५७ शराब, मांस और जुआ—ये ऐसे दुर्व्यसन है, जो जिंदगी की हरी-भरी फुलवारी को जलाकर खाक बना डालते है।

दुर्व्यसनी

३५८ जो दुर्व्यसनी हैं, वे भौतिक सम्पदा के प्राचुर्य के बावजूद भी दरिद्र हैं।

दुविधा

३५९ जिनके सामने एक ही मार्ग हो और गहरी आस्था हो तो उनकी सारी दुविधाएं समाप्त हो जाती है।

दुश्चक्र

३६० सुरक्षा के लिए शस्त्र-निर्माण, शस्त्रनिर्माण के लिए अतिरिक्त अर्थ-संग्रह, अतिरिक्त अर्थसग्रह से विलासिता, विलासिता के लिए भोगसामग्री का संचय और उसे निर्बाध रूप से भोगने के लिए सुरक्षा की व्यवस्था—यह एक ऐसा दुश्चक्र है, जिसका कहीं ओर-छोर भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

दुश्मन

३६१ मनुष्य के सबसे बड़े दुश्मन है—अभिमान, भ्रष्टाचार, अनैतिक व्यवहार और कुत्सित विचार।

दुष्कर कार्य

३६२ दुष्कर कार्य वह है, जिसे साधारण आदमी नहीं कर सकता।

३६३ जिसके मन में दृढ़ संकल्प है और कार्य करने की तीव्र तड़प है, उसके लिए कोई भी कार्य दुष्कर नहीं है।

३६४ कार्य दुष्कर हो सकता है पर उसे कर सकने वाला वीर होता है तथा न कर सकने वाला कायर और कमजोर।

दुष्कर्म

३६५ बुराई के प्रति मन का लगाव टूट जाए तो व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में दुष्कर्म में प्रवृत्त नहीं हो सकता।

दुष्ट

३६६ दुष्ट व्यक्तियों के दंश सर्प-दंश से भी अधिक पीड़ाकारक होते हैं।

दुष्प्रवृत्ति

३६७ दुष्प्रवृत्तियां दुःख की जननी हैं।

३६८ अपने वर्तमान जीवन को सुख-सम्पदा से परिपूर्ण देखने की अबूझ चाह मनुष्य को दुष्प्रवृत्ति की ओर ले जाती है।

३६९ दुष्प्रवृत्ति-मात्र हिंसा है, फिर चाहे वह कायिक हो, मानसिक हो या वाचिक।

दुस्साहस

३७० जहां सत्य की अनंतता है, वहां उसके बुद्धिगम्य छोटे से भाग को छोड, शेष विपुल सत्य को अंधविश्वास की परिधि में बांध देना बहुत बडा दुस्साहस है।

दूरदर्शन

३७१ नित नए वैज्ञानिक यंत्रों का आविष्कार तथा वर्तमान पीढी की इनके प्रति वढती दासता में एक नया लोकप्रिय नाम है—दूरदर्शन।

दूरदर्शी

३७२ जो दूर तक देखता है, वही कुछ कर सकता है।

३७३ जो अपने स्वार्थों को देखते हैं, वे दूरदर्शी या क्रांतिकारी नहीं हो सकते।

दृढ़ता

३७४ वायु के झोंकों से टूटकर गिरने वाला फूल पैरों से रौंदा जाता है। जो पेड़ पर टिका रहता है, वह सम्मान पाता है।

३७५ दृढता के अभाव में साधारण-सी परिस्थिति में भी व्यक्ति अपने सुचिंतित विचार से विचलित हो जाता है।

३७६ हृद्दाढ़र्य रक्षणीयं भो ! भीतिमुत्सार्य भावतः ।
नीतिन्याययुते मार्गे, सदा चेतःप्रसन्नता ॥
(कष्टो के भय को छोड़कर हृदय मे सदा दृढ़ता धारण करनी चाहिए तथा नीति और न्याय के मार्ग पर चलते हुए सदा प्रसन्नता की अनुभूति करनी चाहिए ।)

३७७ हमारी दृढ नीति हमारे कार्यों को सजीव बना देती है और हमारा नैतिक बल उसमे गहरा तेज भर देता है ।

३७८ जहां मन दृढ है, वहां धर्म कठोर होने पर भी कोमल बन जाता है ।

दृढ़प्रतिज्ञ

३७९ दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्तियों के लिए इस संसार में कुछ भी असंभव नहीं रहता । हर मंजिल उनके चरणों के नीचे रहती है ।

३८० जो व्यक्ति दृढप्रतिज्ञ होते है और अपने लक्ष्य से प्रतिवद्ध रहते हैं, उनके व्यवहार उनके विश्वास के साक्षी बन जाते है ।

३८१ दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति पीछे लौटने का रास्ता पूरी तरह बन्द करके चलता है ।

दृढ़संकल्प

३८२ दृढ़सकल्प वह बारूद है, जिसके विस्फोट से वड़ी से बडी बाधक चट्टान भी चूर चूर हो जाती है ।

३८३ बुरे विचारों को छोड़ने व अच्छे विचारों की आदत डालने में दृढ़संकल्प हमारी वहुत सहायता करता है ।

३८४ दृढ़संकल्प आदर्शों से नीचे सरकते जीवन को सहारा देता है, उसमें अभिनव बल का संचार करता है ।

३८५ दृढ़सकल्प वाले व्यक्ति को बाहरी सुख-सुविधाएं मिले या नहीं, उसका पुरुषार्थ अपने आप में सफल होता है ।

३८६ व्रत या प्रतिज्ञा के रूप में किया हुआ दृढ़संकल्प अपना एक विशेष बल और ओज रखता है ।

३८७ दृढ़संकल्प के साथ बढ़े चरण देर-सबेर अपनी मंजिल का फासला तय कर लेते हैं।

दृढसंकल्पी

३८८ दृढ़संकल्पी व्यक्ति नरक को भी स्वर्ग बना सकता है।

३८९ दृढ़संकल्पी के कदम समाज और देश की तरक्की के लिए कभी भी पीछे नहीं हट सकते।

दृष्टि

३९० दृष्टि शुद्ध होती है तो ज्ञान शुद्ध होता है, चरित्र शुद्ध होता है। दृष्टि विकृत होती है तो ज्ञान विकृत हो जाता है, चरित्र भी विकृत बन जाता है।

३९१ दृष्टि की स्पष्टता किसी भी कार्य की सफलता का वह बिदु है, जिसे नजरन्दाज कर कोई भी व्यक्ति आगे नही बढ़ सकता।

३९२ जिस दिन दृष्टि असीमित हो जाएगी, अन्तश्चक्षु खुल जायेंगे, उस दिन हम अनन्त सत्य को पा सकेंगे।

दृष्टिकोण

३९३ हीनता और उच्चता के कृत्रिम मानदण्ड व्यक्ति के दृष्टिकोण को सम्यक् नही होने देते।

३९४ जब तक मनुष्य सत्ता, अर्थ, जाति, धर्म आदि को केन्द्र-बिंदु मानकर चलता रहेगा, उसका दृष्टिकोण परिवर्तित नही हो सकेगा।

३९५ जब तक दृष्टिकोण सम्यक् नही होगा, प्रतिस्रोत मे गति करने का साहस नही होगा।

३९६ जहां दृष्टिकोण संकीर्ण है, वहां किसी प्रकार की सीमा या व्यवस्था न होने पर भी व्यक्ति व्यापक रूप से कार्य नहीं कर सकता।

३९७ मानसिक विकृतियां पैदा कर शरीर को स्वस्थ बनाए रखने का दृष्टिकोण मिथ्या है।

३९८ यदि दृष्टिकोण सम्यक् होता है तो अर्थार्जन के साथ पनपने वाली अनैतिकता को रोका जा सकता है।

३९९ रोग का निदान हुए बिना दवा काम नहीं करती, वैसे ही दृष्टिकोण बदले बिना अच्छे विचार संक्रांत नहीं हो सकते।

४०० जिसकी दृष्टि जैसी बनी हुई है, उसका चिन्तन उसी आधार पर होता है।

४०१ जब तक हमारा दृष्टिकोण आध्यात्मिक और अहिंसक नहीं होगा तब तक हिंसा, क्रूरता एवं आतंकवाद का बोलबाला रहेगा।

४०२ यदि दृष्टिकोण सही है तो व्यक्ति कितनी ही बड़ी बुराई से क्यों न लिप्त हो, एक दिन उससे अवश्य मुक्त हो जाएगा। किंतु जो बुरा करके उसे अच्छा बताता है, वह बुराई से कैसे मुक्त होगा?

दृष्टि-दोष

४०३ वैमनस्य, संकीर्ण मनोवृत्ति और पारस्परिक अविश्वास—ये बड़े भयावने दृष्टि-दोष हैं।

४०४ भाषा, प्रान्त, राष्ट्रीयता, जातीयता और सांप्रदायिकता का व्यामोह दृष्टि-दोष नहीं तो और क्या है?

४०५ अपने को उच्च मानने वाले दूसरों को नीच मानकर उनसे घृणा करते है, क्या यह दृष्टि-दोष नहीं है?

दृष्टि-परिवर्तन

४०६ उपादान का अस्तित्व न हो तो कितना ही प्रबल निमित्त उपस्थित हो जाए, व्यक्ति का दृष्टिकोण नहीं बदल सकता।

४०७ व्यक्ति की दृष्टि बदलती है तो दुःख के क्षण भी सुख में बदल जाते हैं।

४०८ दृष्टि का परिवर्तन केवल दिशा को ही नहीं, लक्ष्य को भी बदल देता है।

४०९ अगर आपकी दृष्टि पैनी है तो कहीं से भी कुछ न कुछ पा सकते हैं।

४१० व्यक्ति की जैसी दृष्टि होती है, सृष्टि उसके अनुरूप बन जाती है।

दृष्टि-विपर्यास

४११ यह दृष्टिकोण का विपर्यास है कि व्यक्ति साल में तीन सौ पैंसठ दिन सुखी रहता है और एक दिन दुःखी होता है तो तीन सौ चौसठ दिन के सुख को भूल जाता है।

४१२ जहां दृष्टि और गति में विपर्यास आ जाता है, वहां कार्य बिगड जाता है।

४१३ राजनेता अपनी पार्टी को प्रमुख मानता है और राष्ट्र को गौण मानता है। समाजसेवी अपने घर को प्रमुख मानता है और समाज को गौण। धार्मिक व्यक्ति सम्प्रदाय को प्रमुख मानता है और धर्म को गौण। आध्यात्मिक व्यक्ति क्रियाकांडो को महत्त्व देता है और अध्यात्म की उपेक्षा करता है। ये सब दृष्टि-विपर्यास की निष्पत्तियां है।

४१४ दृष्टि का विपर्यास बहुत खतरनाक होता है।

४१५ अशांति के साधनों में शांति मान लेना दृष्टि-विपर्यास है।

दृष्टि-शोधन

४१६ दृष्टि-शोधन साधना का प्रथम सोपान है। उसके विना साधक का पथ प्रशस्त नही हो सकता।

दृष्टि-संयम

४१७ जो दृष्टि-संयम न रख सके, उसका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है।

देव

४१८ वीतराग को देव बनाए, हरि हो हरिहर संज्ञा चाहे।
आखिर अपना हित अपने से, होगा समुचित साधन द्वारा ॥
बना रहे आदर्श हमारा ॥

देव-मन्दिर

४१९ देव-मन्दिर विद्या-मन्दिर बनकर अपनी उपयोगिता को उजागर कर सकते हैं।

देश

४२० आत्मसेवा, जनसेवा, रूढियों का परित्याग और समता का प्रयोग—ये चार ऐसे स्तम्भ है, जिनके आधार पर देश का सुदर ढांचा खड़ा किया जा सकता है।

४२१ जिस देश के नागरिक चरित्र-सम्पन्न, अनुशासित, श्रमशील, कर्तव्यपरायण, व्यक्तिगत स्वार्थ-भावना से दूर और मानवीय एकता में विश्वास रखने वाले होते है, वह देश सही अर्थ में विकास के शिखर को छू सकता है।

४२२ वह देश सौभाग्यशाली है, जहां संत अधिक होते है।

४२३ जिस देश में खाद्य पदार्थ मिलावट युक्त मिलते हों, लड़के-लडकियां बेचे जाते हों, निरपराध मानवों एवं पशुओं की हत्या होती हो, उस देश को चिंतको, विचारकों और मनुष्यों का देश कहलाने का कोई हक नहीं।

४२४ जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण का अभाव, आत्मनियंत्रण की अक्षमता, स्वच्छंद मनोवृत्ति, असंयम और बढ़ती हुई आकांक्षाएं—ये ऐसे कारण हैं जो किसी भी देश को समस्याओं की धधकती आग में झोंक देते है।

४२५ यदि देश की संस्कृति के रथ को आगे बढ़ाना है तो हिंदुओं और मुसलमानों को ही नहीं, ईसाइयों को भी यहां की मूल-धारा के साथ बहना होगा।

४२६ देश से ऊंचा कोई व्यक्ति या दल नही होता।

४२७ किसी भो देश या राष्ट्र का आदर्श वहां का प्राकृतिक सौन्दर्य नही होता, किन्तु नागरिकों की अहिंसा, सत्य, सह-अस्तित्व, मैत्री आदि गुणों से संपूरित नागरिकता ही सच्चा आदर्श होता है।

४२८ जिस देश का नैतिक पतन हो जाता है, वह मुर्दा देश कहलाता है।

४२९ देश की उन्नति आपकी उन्नति है। देश का गौरव आपके ही हाथों में है। आप निश्चिन्त रहें। इसका उन्नयन करने के लिए कोई फरिश्ता या अवतार नहीं आएगा।

४३० जिस देश का वर्तमान अपनी सांस्कृतिक संपदा की सुरक्षा नहीं कर सकता, वह उसे कोई नया अवदान दे सकेगा—इस चिन्तन को अवकाश ही कहां है ?

४३१ जिस देश में महिलाएं सम्मानपूर्वक न रह सकें, उस देश का भविष्य विचारणीय है।

४३२ जिस देश की युवा पीढ़ी व्यसन-मुक्त होती है, उस देश की सुख-समृद्धि को कोई नही छीन सकता।

४३३ जिस देश की आंखों मे समस्याएं ही समस्याए रहती है, जिसको समाधान की राह दिखाई नही देती, वहां प्रगति की दिशाएं उद्घाटित नही हो सकती।

४३४ देश के बच्चे यदि सुशिक्षित और संस्कारित होगे तो देश की इमारत स्थायी और उन्नत होगी।

४३५ जिस देश के लोग परिश्रम नहीं करते, वह देश अभागा कहलाता है।

४३६ चुनाव में सही व्यक्ति का चयन ही देश को बढते हुए संकट से उबार सकता है।

देश और काल

४३७ जो देश और काल की प्रतीक्षा करते हैं, वे अपने जीवन में कुछ नहीं कर सकते। देश और कालगत बाधाओं को निरस्त कर जो आगे बढ जाते है, वे ही कुछ करके दिखा सकते है।

देशद्रोही

४३८ मुनाफाखोरी, मिलावट, अप्रामाणिकता का व्यवहार करने वाला न केवल चरित्र से ही पतित होता है, अपितु देशद्रोही भी कहलाता है।

४३९ कोई व्यक्ति अपने देश को धोखा देता है तो अपने आपको धोखा देता है।

देशनिर्माण

४४० देश की अन्तरात्मा का निर्माण राष्ट्रीय चरित्र और संयम से होता है।

देशभक्ति

४४१ जहां अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के सामने राष्ट्रीय हित को गौण कर दिया जाता है, वहां व्यक्ति की देशभक्ति खंडित हो जाती है।

४४२ लिए देश के तन-मन जीवन, सब कुछ भेट चढायेगे।
इसकी सफल सुरक्षा करने, संगर में डट जायेंगे।।

४४३ बच्चे-बच्चे मे जगे, देश-भक्ति के भाव।
सहज रूप वीरत्व का, है यह प्रादुर्भाव।।

४४४ यदि व्यक्ति के किसी भी कार्य से देश की इज्जत या प्रतिष्ठा को धक्का पहुचता है, तो यह देशभक्ति की विडम्बना है।

४४५ उठो उठो हे देशवासियो ! अब कर्त्तव्य निभाना है।
मातृभूमि की रक्षा करने हम सबको जुट जाना है।।
जिस अवनी में पले-पुसे हम, दाना खाया, नीर पिया।
सब कुछ देकर जिसने हमसे, अब तक कुछ भी नही लिया,
जन्म-भूमि के उस ऋण को अब हमें सहर्ष चुकाना है।।

दोष

४४६ ज्ञान कम है पर स्वय को विद्वान् माने, सहनशीलता कम है पर अपने आपको महान् धैर्यशील माने, अशक्त अपने आपको महान् योद्धा माने—यह दोष है, मिथ्यात्व है।

४४७ जहर आदमी को एक बार मारता है पर गुस्सा, निराशा, भय, आशंका और तनाव आदि दोष व्यक्ति को बार-बार मारते है।

४४८ प्रशंसा करना और सुनना कोई दोष नही है, उसमें लुब्ध होना दोष है।

४४९ किसी के दोष को नजरन्दाज करना भय है, कायरता है और महापाप है।

४५० अपने दोष को कबूल करना, दोष को मिटाने की दिशा में पहला कदम रखना है।

४५१ क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चारों आध्यात्मिक दोष है, अत्यन्त दुर्जेय है।

४५२ सदोष दृष्टि से दोष देखना जितना पाप है, उतना ही उसे छुपाने मे है, और फैलाने मे तो उससे भी कही अधिक पाप है।

४५३ दोष अन्ततः दोष ही है, चाहे वह कही भी क्यो न हो।

४५४ दोष धर्म में नही, प्रयोग और प्रक्रिया मे है।

दोष-दर्शन

४५५ परगुण देख रहे मन जलतो, जाण बणै अणजाण।
अणदेखी अणसुणी बात कर, करदै मोटी हाण॥

४५६ दोष पराया देखना, बहुत सरल है काम।
जो अपना देखे उसे, पूजे जगत् तमाम॥

४५७ गुणी में भी दोष ढूंढना—यह कार्य तो मक्खी और दुर्जन का है।

४५८ पीत रोग रो रोगी देखै, पीत रग सगला रो।
दोषी री भी आ ही हालत, दियै तलै अन्धारो॥

४५९ परगुण अवगुण, निज अवगुण गुण, निरखण जो गुण थारो।
आ ही तो है बड़ी बीमारी, समझो अकल इशारो॥

४६० बण निरीह निज अवगुण परगुण निरखण रंग वढ़ाओ।
आगम वच उत्कृष्ट रसायण, तीर्थंकर पद पावो॥

दोषारोपण

४६१ एक दूसरे पर दोषारोपण करके व्यक्ति समस्याओं का निदान एवं समाधान नही पा सकता।

४६२ दूसरो पर दोष मढ़ना हिंसा है, अहिंसा नही ।

४६३ व्यवहार और व्यवसाय मे सत्य की साधना करने वाला व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति पर दोष का आरोपण नही कर सकता ।

दोहरापन

४६४ जहां कहना कुछ और करना कुछ तथा होना कुछ और दिखाई देना कुछ होता है, वहां दोहरापन है । यह दुहरी नीति बडी घातक होती है ।

४६५ जो दुहरी नीति चलाते हैं, वे स्वय अपने साथ धोखा करते हैं ।

४६६ जो व्यक्ति दोहरा जीवन जीता है, वह अपने आध्यात्मिक स्वास्थ्य को भंग करता है ।

दौलत

४६७ त्याग, तपस्या और संयम ऐसी दौलत है, जिसे कोई छीन नहीं सकता, चुरा नहीं सकता ।

४६८ कोई भी आदमी दौलत से मन की शान्ति नही खरीद सकता ।

४६९ इस फानी दौलत पर तुम्हे बेकार नाज है ।
बनती बिगड़ती, रोजमर्रा का रिवाज है ।।

द्रष्टा

४७० जो दिव्यचक्षु हो, ज्ञानी, ऋषि एव आप्त हो, वही वस्तुतः द्रष्टा होता है ।

४७१ जब तक व्यक्ति द्रष्टा नही बनता है, तब तक ही उपदेश, शिक्षा आदि की आवश्यकता होती है ।

४७२ व्यक्ति या वस्तु से बधा हुआ व्यक्ति द्रष्टा या स्रष्टा नही हो सकता ।

४७३ जो व्यक्ति तटस्थ भाव से अपने अन्तःकरण को देखता है, वही वास्तव में द्रष्टा बनता है।

४७४ द्रष्टा किसी आधार पर कुछ नही कहते, वे स्वयं आत्मा से साक्षात् देखते है।

४७५ आप पंडित नही, शिक्षित बनिये, शिक्षित बनने से पहले द्रष्टा बनिये।

द्रष्टाभाव

४७६ यदि राग-द्वेष नही हैं, केवल द्रष्टाभाव है तो फिर इंद्रियां अपने विषयों में रमण करती हुई भी व्यक्ति को कभी विकृत नही कर सकती।

४७७ जब तक व्यक्ति एकाग्र नहो हो पाता, चित्त की विक्षिप्तता नियंत्रित नहीं कर लेता. वह द्रष्टाभाव का विकास नही कर सकता।

द्वन्द्व

४७८ भोग-प्रधान जगत् में द्वन्द्व ही परम पुरुषार्थ है।

४७९ सृजन और ध्वंस के बीच उभरने वाला द्वन्द्व समस्या का सृजनहार है।

४८० विना सोचे-विचारे काम करने का परिणाम है—दिमाग को द्वन्द्व से भरना।

४८१ जहां अनेकता और असामञ्जस्य है, वहां निश्चित ही द्वन्द्व है।

४८२ द्वन्द्व विचारों का सघन, चलता है दिन रात।
उससे मानस मुक्त हो, सबसे पहली बात।।

४८३ द्वन्द्व शान्ति के मार्ग में बाधक है।

४८४ जहां कही द्वन्द्व बढता है, उसका कारण एकान्त आग्रह ही है।

४८५ हर पल जागरूक रहकर कोई भी व्यक्ति द्वन्द्वमुक्त जीवन जी सकता है।

द्विधा

४८६ जब तक मन द्विधा में उलझा रहता है, समत्व की साधना नहीं कर सकता।

द्विरूपता

४८७ माना कि कौआ हृदय में काला ही है मगर उसने अपना कालापन सबके सामने बाहर दिखा रखा है, इसलिए वह बगुले की अपेक्षा अलबत्ता क्षम्य है। परन्तु बगुला तो उससे भी ज्यादा नीच व निंद्य होता है जो भीतर से काला होते हुए भी अपने को बाहर से सफेद दिखलाता है।

४८८ प्रत्यक्ष बडों के सम्मुख आ, कोई भी नहीं कहा करता।
डर के मारे छुप-छुपकर ही, विप्लव का स्रोत बहा करता।।
म्थाऊं के मुह पर कौन चढे, यह सबसे बडी पहेली है।
आगे स्तवना पीछे निंदा, साधारण जन की शैली है।।

४८९ मन्दिर और आफिस के जीवन की द्विरूपता मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न करती है।

द्वेष

४९० द्वेषी निगाहों में दूसरे का गुण भी अवगुण बन जाता है।

४९१ द्वेष अहंकार और क्रोध को जन्म देता है।

४९२ ऐसा कौन सा बुरा काम है, जिसे द्वेष के वश हुआ मनुष्य नहीं कर सकता।

४९३ जो प्रतिक्षण जागृत रहकर द्वेषभाव से दूर रहता है, वह प्रशस्त जीवन जी सकता है।

४९४ 'ये मेरे नहीं है'—इस तरह पराएपन की वृत्ति से दूसरों के साथ अप्रीति का व्यवहार द्वेष है।

४९५ द्वेष एक बड़ा अवगुण है, जो प्रगति में पग-पग पर अवरोध पैदा करता है।

४९६ द्वेष भाव स्यू पतन आपरो, निश्चित रूप निहारो।
औरां रो नुकसान करण में, नहिं है थांरो सारो।।

४९७ द्वेष अशान्ति का बीज है।

द्वैत

४९८ द्वेत भावना अह की प्रतीक है।

४९९ जहां द्वैत है—बाह्य और आभ्यन्तर वृत्तियो का झमेला है, वहीं दुःख है।

५०० सघर्ष, द्वैष या विकार एक से नहीं, दो या अधिक से होता है।

५०१ द्वैतवाद में मारने और मरने वाला एक नही हो सकता, किन्तु निश्चय मे मरता वही है, जो मारता है।

५०२ जहां सग्रह है वहां द्वैत है, जहां द्वैत है वहां सघर्ष है।

द्वैत : अद्वैत

५०३ महाजन मनुष्य है तो हरिजन भी मनुष्य है। पूजीपति, मंत्री और विधायक मनुष्य है तो कल-कारखानों में काम करने वाले श्रमिक भी मनुष्य है। जगल के भील भी मनुष्य है। इसीलिए एक अपेक्षा से द्वैत भी ठीक है और दूसरी दृष्टि से अद्वैत भी।

द्वैध

५०४ जहा द्वैध है, वहां एकता हो ही नही सकती।

५०५ अन्तर् और बाह्य का द्वैध नही मिटाएगे तो साधना फलवती नहीं होगी।
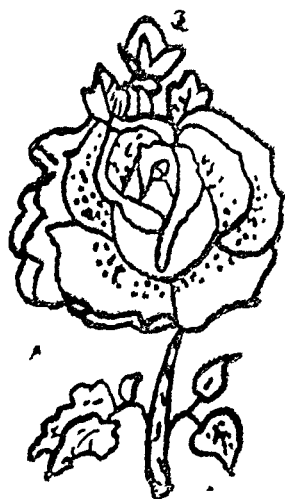
धन

१ धन से पुस्तकें खरीदी जा सकती हैं, ज्ञान नही; औषध खरीदी जा सकती है, स्वास्थ्य नही; सेवक जुटाए जा सकते है, सेवा नहीं; मंदिरों का निर्माण हो सकता है पर भक्ति नहीं !

२ धन की धुन में मानव कितने, सहते कष्ट महान् ।
बना रात दिन एक, छोड़कर खान पान का ध्यान ॥

३ मनुष्य धन से नहीं, मन मे समृद्ध होता है। वह अकिंचनता से नही, निराशा से दरिद्र होता है।

३ धन का अभाव मनुष्य को क्रूर बनाता है तो धन का अतिभाव उसे विलासी बना देता है।

४ अपने समूचे धन को जल में बहा देने से भी कुछ नही होगा, जब तक ममत्व न मिटे।

५ चांदी-सोने के टुकड़े सच्चा धन नहीं है। मानव का सच्चा धन तो संतोष है।

६ धन व्यक्ति को ऐशोआराम दे सकता है, पर राम से साक्षात्कार नही करा सकता।

७ धन यदि एक स्थान पर जमा न हो तो पीड़ा का कारण नही बनता।

८ आत्मिक धन को खो किया रे, हा इस धन से प्यार।
छोड स्वर्ण-वसु ले लिया रे, यह लोहे का भार॥

७ धन के विना जीवन नहीं चल सकता, किंतु धन का दास बनना कतई उचित नहीं ।

८ धन स्यूं कोई भी नहीं धापै,
जो मिल ज्यावै मेरू मापै ।

९ धन से भोगोपभोग के साधन सुलभ हो सकते है, पर शांति नहीं ।

१० यदि कोई यह मान बैठा है कि मेरे पास तो धन है, मैं उसके द्वारा सब कुछ प्राप्त कर लूंगा, यह मात्र भुलावा है ।

११ ब्लैक और भ्रष्टाचार से आने वाला धन परिवार को गलत रास्ते पर ले जाता है।

धन और धर्म

१२ यदि धन से ही धर्म होता तो उसके अधिकारी फिर धनवान होते, गरीबों के लिए तो वह स्वप्न की वस्तु रहती ।

१३ केचित्तु धर्मकरणेऽप्यनिवार्यमूचु-
र्द्युम्नं विना तदह धर्ममशक्यमाहुः ।
तेषां मते शिवसुखाधिकृताः स्थिताः ये,
सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे ।।

(कुछ व्यक्ति धर्म करने के लिए धन की अनिवार्यता बताते हैं । उनके मत से मणि-मंडित सिंहासनो पर बैठने वाले धनकुबेर ही मोक्ष के अधिकारी है, पर यह असत्य है ।)

१४ न धन का संचय करना धर्म है और न व्यय करना ही । धन का त्याग करना ही धर्म है ।

१५ धन व्यय करके धार्मिक बनना जल में से मक्खन निकालने जैसा प्रयत्न है ।

१६ शोषण, अत्याचार और अनैतिक तरीकों से पैदा किया धन कभी धर्म का अंग नहीं बन सकता ।

१७ धर्म और धन का आपस में पूर्व-पश्चिम और तिए-छक्के का विरोध है । फिर भी धर्मान्ध व्यक्ति धन के द्वारा धर्म को खरीदना चाहते है, यह कैसी विडम्बना है !

१८ धर्म का सम्बन्ध धन से नहीं, जीवन से है, मन से है, वाणी से है, कर्म से है।

१९ जहां धर्म अर्थ से संयुक्त होता है, वहां वह अधर्म से अधिक भयंकर बन जाता है।

२० धर्म की उपलब्धि धन नहीं है। उसकी उपलब्धि है—दुःख, बीमारी और बुढ़ापे से मुक्ति।

२१ धर्म यदि पैसे से खरीदा जाता तो व्यापारी लोग उसे खरीदकर गोदाम भर लेते। यह खेत में उगता तो किसान भारी संग्रह कर लेते। पर ऐसा हुआ नही, होता नहीं।

धनकुबेर

२२ जब तक लोग धनकुबेरों को ही महान् मानेंगे, तब तक जगत् की स्थिति निरापद नहीं हो सकेगी।

धनसंग्रह

२३ न्याय के द्वारा धन का संग्रह हो ही नही सकता—ऐसा सोचना भ्रामक है।

२४ जो केवल धनसंग्रह करते हैं, उसका त्याग नहीं करते. वे प्रकाश की उपेक्षा कर धुंए को अपने भीतर संचित करते हैं।

धनी

२५ धनी बनना ही मुसीबत मोल लेना है।

२६ सम्यग् दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति करोड़ो-अरबों की सम्पत्ति वाले व्यक्ति से कही ज्यादा धनवान् है।

२७ असदाचार से एकत्रित की गई सम्पत्ति के उपभोगी धनवान् से वह दरिद्र अच्छा है जो कम से कम आवश्यकता रखता है, कम से कम संग्रह करता है।

२८ धार्मिक क्षेत्र में धनी और धन की आशा रखने वाले दरिद्र का महत्त्व नहीं है।

धन्य

२९ शोषण का द्वार खुला रखकर दान देने वाला, हजारों को लूट कर कुछेक को देने वाला, कभी धन्य नहीं हो सकता।

३० शोषण न करने वाला स्वयं धन्य है, चाहे वह एक कोड़ी भी दान न दे।

३१ जिस व्यक्ति का अन्तकरण धर्म से प्रभावित हो जाता है, उसका जीवन धन्य हो जाता है।

धमकी

३२ धमकियों के सामने झुक जाना मजबूरी कही जा सकती है, समन्वय नही।

धरोहर

३३ धरोहर को चुराने या हजम करने की चेष्टा पाप है, अनैतिकता है।

धर्म

३४ धर्म तो सहिष्णुता की उजली चादर है, जो दूसरों की अप्रियता को भी ढांक देती है।

३५ सद्विचार और सदाचार का समन्वित रूप ही धर्म का सर्वांगीण स्वरूप है। जहां दोनों में एक पक्ष निर्बल हो जाता है, वहां धर्म अर्धांगीण रह जाता है।

३६ कर्म के फल को परिवर्तित और क्षीण करने के लिए व्यक्ति जो पुरुषार्थ करता है, वह धर्म कहलाता है।

३७ जैसा बोलो वैसा करो, यह धर्म का मौलिक स्वरूप है।

३८ जहां मैत्री, सह-अस्तित्व और सदाचार है, वहां धर्म है।

३९ धर्म उन्माद और प्रमाद पर अंकुश लगाता है और मानव के के प्रति सहृदय और संवेदनशील होने की प्रेरणा देता है।

४० गंगाजल से बाह्य शुद्धि हो सकती है, पर आन्तरिक विशुद्धि के लिए धर्मरूपी गंगाजल जरूरी है।

४१ सद्विवेक और तदनुरूप सत्क्रिया का ही दूसरा नाम धर्म है।

४२ धर्म से हमें आत्मानुशासन प्राप्त होता है और वह हमारी स्वतन्त्रता का मूल मंत्र है।

४३ युगबोध को नकारने वाला धर्म लोकजीवन में कोई क्रान्तिकारी हस्ताक्षर नहीं कर सकता।

४४ मैं समझता हूं कि जो धर्म मनुष्य को मनुष्य नहीं बना सकता, वह उसे देवता कैसे बनाएगा? पड़ौसी के साथ प्रेम से मिलना नहीं सिखाता, वह ईश्वर से मिलाने मे कैसे सक्षम होगा?

४५ मैं धर्म को निर्विशेषण देखना चाहता हूं। आज तक उसके पीछे जितने भी विशेषण लगे, उन्होंने मनुष्य को बांटने का ही प्रयत्न किया। आज एक विशेषण रहित धर्म की आवश्यकता है, जो मानव-मानव को आपस में जोड़ सके।

४६ धर्म के अतिरिक्त और कोई तत्त्व नियंता नहीं हो सकता।

४७ अकर्त्तव्य के प्रति पश्चात्ताप का भाव धर्मबुद्धि की ही देन है।

४८ धर्म अन्तरात्मा के कण-कण में ऐसा रमे कि उतारे न उतरे, तभी आज के भौतिकवादी युग से लोहा लिया जा सकता है।

४९ आत्मा के उदात्तीकरण में जो साधन आधारभूत बनते हैं, वे सब धर्म हैं।

५० ज्ञान, दर्शन, आनन्द और शक्ति के साथ जो एकरसता है, वह धर्म है।

५१ शरीर को कष्ट देना धर्म नहीं किन्तु साधना के मार्ग पर चलते समय सहज रूप से जो कष्ट उपस्थित हो जाएं, उन्हें समभाव से सहन करना धर्म है।

५२ धर्म का काम किसी का मत बदलना नहीं, किन्तु मन, जीवन और हृदय बदलना है।

५३ धर्म एक ऐसी संपत्ति है, जिसे न कोई लूट सकता है और न कोई हिस्सा बंटा सकता है।

५४ नाम और उपासना पद्धति के आधार पर कोई भी धर्म छोटा-बड़ा नहीं होता।

५५ जब-जब शास्त्रीय वाक्यों की दुहाई बढ़ती है और आत्मानुभूति घटती है, तब शास्त्र तेजस्वी और धर्म निस्तेज हो जाता है।

५६ धर्म के प्रति हमारी श्रद्धा ऐसी होनी चाहिए, जो प्रलयकाल में भी अस्थिर न हो सके।

५७ विश्वबंधुता, समता, सह-अस्तित्व धर्म ने गाया।
फिर किसने उसमें संकीर्णवृत्ति का विष फैलाया।।

५८ धर्म को खोने का अर्थ है—अपने अस्तित्व को खोना।

५९ स्वार्थों की पूर्ति के लिए जहां धर्म को माध्यम बनाया जाता है, वहां उसकी आत्मा ही समाप्त हो जाती है।

६० प्राणिमात्र के प्रति आत्मौपम्य की भावना का विकास ही धर्म की सबसे बड़ी कसौटी है।

६१ धर्म के द्वारा शांति मिलती है, इसीलिए आदमी धर्म की शरण मे जाता है किन्तु धर्म से ही यदि अशांति उत्पन्न हो तो इससे बड़े दुःख की बात और क्या होगी ?

६२ धर्म से लक्षाधीश और कोट्याधीश बनने की आकांक्षा करना धर्म के साथ अन्याय है।

६३ धर्म का पथ अथ से इति तक सीधा और सरल है।

६४ धर्म के क्षेत्र में सत्ता नाम की कोई चीज नहीं है, इसलिए उसे हथियाने के लिए छल, कपट, वंचना आदि हथियारों के उपयोग की भी जरूरत नहीं होती।

६५ धर्म जीवन की सफलता का महामंत्र है।

६६ धर्म की अपेक्षा तब तक रहती है जब तक बन्धन है।

६७ बौद्धिकता से धर्म का कोई विरोध नही है, बशर्ते कि उसका रुझान हिंसा की ओर न हो।

६८ धर्म का अर्थ है परम्परित मूल्य-मानकों से परे हटकर मनुष्य को सत्य की दिशा में अग्रसर करना।

६९ धर्म शाश्वत है, रूढ नही। रूढ़ होने का अर्थ है—उसमे रमणीयता का अभाव।

७० कहा जाता है धर्म श्रद्धागम्य है, वह बुद्धिगम्य नहीं हो सकता, किन्तु यह अधूरा सच है। धर्म केवल श्रद्धागम्य ही नहीं है। वह बुद्धिगम्य भी है। श्रद्धा उसी को पकड़ती है, जो पहले बुद्धि की पकड़ में आ जाता है।

७१ धर्म जन्म नही, जीवन देता है।

७२ जब-जब धर्म का गठबंधन पूंजी के साथ हुआ है, तब-तब धर्म अपने विशुद्ध स्थान से नीचे खिसका है।

७३ धर्म का काम आग बुझाने का है, आग लगाने का नहीं।

७४ धर्म एक सार्वभौम शाश्वत तत्त्व है। उसकी सत्ता में किसी का विश्वास हो या न हो, पर उसके अभाव में जीवनतंत्र अव्यवस्थित हो जाता है।

७५ समस्या का समाधान उस धर्म में निहित है, जो असाम्प्रदायिक हो, आचारप्रधान हो, वर्तमान की बात सोचता हो, जीवन में प्रयोग की नई दिशाएं खोलता हो और जीवंत हो।

७६ युवापीढी को धर्म से नहीं पर धर्म के नाम पर चलने वाले ढकोसलों से परहेज है।

७७ धर्म वह है जो मिथ्यादृष्टिकोण के कारण ज्योति न रखने वाली आंखों को आंज कर उनमें ज्योति भर दे, तथा उत्तेजना को शांति में बदल दे।

७८ निर्बल की रक्षा के लिए सबल को मार देना धर्म नहीं है।

७९ धर्म का रथ धनपति नहीं खींच सकते। धर्म त्याग पर टिकेगा, संयम से फलेगा और जीवन की सत्क्रियाओं से चलेगा।

८० धर्म अपने आप में स्वयं उत्सव है। उसके लिए किसी अन्य उत्सव की आवश्यकता नहीं।

८१ धर्म का जीवन में प्रवेश होते ही व्यक्ति प्रदर्शन से दर्शन की ओर मुड़ जाता है।

८२ धर्म अपनी किसी कमजोरी को छिपाने की बात नहीं कहता, वह अपनी कमजोरी स्वीकार करना सिखाता है।

८३ जिस दिन धर्म की मजबूत जड़ें प्रकम्पित हो जाएंगी, इस धरती पर मानवता की विनाशलीला का ऐसा दृश्य उपस्थित होगा, जिसे देखने की क्षमता किसी भी आंख में नहीं रहेगी।

८४ धर्म की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह पराया नहीं बनता। जब भी व्यक्ति शुद्ध अंतःकरण से उसे याद करता है, उसी क्षण वह उसकी रक्षा के लिए तत्पर हो जाता है।

८५ धर्म जैसी निर्बन्ध, बेलाग और सार्वजनिक वस्तु पर किसी व्यक्ति-विशेष, जाति-विशेष या समाज-विशेष का अधिकार कैसे हो सकता है ?

८६ अहिंसा धर्म की आत्मा है। उसके बिना धर्म की वही स्थिति है, जो सूर्य के बिना दिन की, तैल के बिना दीपक की और चैतन्य के बिना शरीर की है।

८७ धर्म के मूल तत्त्व है :
१. व्यापक सहिष्णुता।
२. समन्वय।
३. सत्य के प्रति विनम्र दृष्टिकोण।

८८ जहां आसक्ति के कारण बलवानों का पोषण और अमैत्री के कारण दुर्बलों का शोषण होता है, वहां यदि धर्म माना जाए तो फिर अधर्म की क्या परिभाषा होगी ?

८९ धर्म जिस प्रकार हमें जीने की कला सिखाता है, उसी प्रकार मरने की कला भी सिखाता है।

९० धर्म क्रूरता और विलासिता को समाप्त कर आनंद की अनुभूति देता है।

९१ जिस धर्म से हम अभय नही बन सकते तो मानना चाहिए कि या तो हम अपात्र है या वह धर्म सही नहीं है।

९२ मनुष्य से अगर धर्म को छीन लिया जाए तो मनुष्य और पशु में कोई फर्क नही रह जाता।

९३ विषाद, दुःख और असंतोष के प्रवाह मे बहने वालों के लिए धर्म त्राण है, शरण है।

९४ अपने अधिकार और अपनी सीमा में रहना—यह धर्म की दिशा में जाने का प्रयत्न है।

९५ जिसने अच्छा जीवन जीना सीख लिया, उसने धर्म को पा लिया।

९६ धर्म अमृत भी है और अफीम भी। प्रेम और मैत्री की बुनियाद पर खड़ा हुआ धर्म अमृत है तो साम्प्रदायिक उन्माद से ग्रस्त धर्म अफीम का काम करने लग जाता है।

९७ धर्म को रूढ़ता की परिधि से मुक्त कर उसे जीवन की प्रयोगशाला में परीक्षित किया जाए, तभी वह तेजस्वी हो सकता है।

९८ धर्म का उदय ही इसलिए हुआ है कि वह अभावग्रस्त लोगों को हीनभावना से बचाए और संग्रह तथा भोग की ओर बढ़ते हुए लोगों को उन्माद और प्रमाद से बचाए।

९९ महावीर, बुद्ध, ईसा और राम ने जिस सत्य को परिभाषित किया, उसे केवल वाणी का विषय बना लिया गया। उसे जीने का प्रयत्न नहीं किया गया, इसीलिए धर्म अकिंचित्कर बन गया है।

१०० धर्म एक प्रासाद है। उसके चार द्वार हैं—सहनशीलता, अनासक्ति, ऋजुता और मृदुता।

१०१ जिस धर्म के सहारे सुख-सुविधा के साधन जुटाए जाते हैं, प्रतिष्ठा की कृत्रिम भूख शांत की जाती है, प्रदर्शन और आडम्बर को प्रोत्साहन मिलता है, उस धर्म की शरण स्वीकार करने से शांति नहीं मिल सकती।

१०२ शाश्वत और अशाश्वत—इन दोनों तटों के बीच बहने वाला धर्म ही समाज के लिए उपयोगी हो सकता है।

१०३ धर्म स्वयं निर्भार है और दूसरों को भी निर्भार बना देता है।

१०४ प्रशंसा करने पर भी जो शांत रहते हैं, उससे क्या? निंदा करने पर भी जो शान्त रहते है उन्होंने ही धर्म के तत्त्व को समझा है।

१०५ धर्म राजपथ है, पर नासमझ लोगों ने उसे पगडंडी बना दिया। धर्म जन-जन का विश्राम-स्थल है पर तुच्छ लोगों ने उसे बिभीषिका बना दिया।

१०६ धर्म सदा सूर्य की तरह प्रकाश और चांद की तरह शीतलता प्रदान करता है।

१०७ धर्मरूपी पक्षी के दो पर है—अध्यात्म और नैतिकता।

१०८ धर्म आकाश जैसा व्यापक तत्त्व है। किसी के लाख प्रयास करने के बावजूद भी वह संकीर्ण दायरे में बंधकर नहीं रह सकता।

१०९ असत् की निवृत्ति और सत् की प्रवृत्ति का नाम धर्म है।

११० धर्म संघर्ष को टालने की प्रक्रिया है। उसकी छत्रछाया में ही यदि संघर्ष पलने लगे तो आदमी कहां जाकर विश्राम करेगा ?

१११ मैं वीतरागता या आत्मविजय में विश्वास करता हूं, इसलिए धर्म को विभक्त नहीं करता कि यह तेरा धर्म है, यह मेरा धर्म है।

११२ क्रूरत्वकल्ककलितं स्खलितं खरांशो-
बिम्बं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य ॥
नैर्मल्यमाप्तमधुनापि जनोपकाराद्।
धर्माद् ऋते नहि विशुद्धिपदं विभाति ॥

(क्रूरता के पाप को वहन करने की स्खलना करने वाला सूर्य का बिम्ब और कलंक द्वारा मलिन होने वाला चन्द्रमा का बिम्ब—दोनों ही जनता का उपकार करते हैं। पर केवल जनोपकार से उन्होंने आज तक निर्मलता प्राप्त नही की। अतः आत्मशुद्धि धर्म के बिना और किसी प्रकार से नही हो सकती।)

११३ जहां विवेक है, वहां धर्म है। जहां विवेक नही, वहां धर्म नही।

११४ केवल परम्परापोषण और स्थितिपालन में धर्म को बांधे रखना उसे जड़ और निस्तेज बनाना है।

११५ धर्म के नाम पर अपनी दुर्बलताओं का पोषण करने वाले व्यक्ति धर्म की गरिमा और प्रतिष्ठा को समाप्त कर देते हैं।

११६ जिन धर्मों में विरोधी व्यक्तियों के साथ रहने की छूट नहीं है, वे धर्म किसी भी धार्मिक के मन और मस्तिष्क पर अपनी उत्कृष्टता की छाप नही छोड़ सकते।

११७ धर्म कोई क्रिया नही, अन्तर्वृत्ति है, जो हर क्रिया से संयुक्त होकर उसे नयी अर्थवत्ता एवं प्रयोजनीयता से मंडित कर सकती है।

११८ आत्मा से परमात्मा होने का साधन धर्म है।

११९ गर्वारुणोऽस्यरुण ! किं त्वमितीव कुर्यां,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि।
किन्तु प्रपृच्छ कुमुदांस्तव गौरवाभां,
सर्वत्र तुल्यमहिमा स तु धर्म एकः॥

(हे सूर्य ! "मैं सरोवरस्थ कमलों को विकस्वर करता हूं"—यह तुम्हारा गर्व मिथ्या है क्योंकि तुम्हारे आगमन मात्र से कुमुद मुरझा जाते हैं। गौरव का एकमात्र अधिकारी धर्म है, जो एक का पोषण और एक का शोषण न कर सबके साथ समान वर्ताव करता है।)

१२० धर्म के तीन लक्षण है—प्रकाश, परिष्कार और संयम।

१२१ हर परिस्थिति में समता का अभ्यास ही धर्म है।

१२२ सत्य की उपलब्धि के जो आन्तरिक प्रयत्न है, उनकी संज्ञा धर्म है।

१२३ अपने द्वारा किया हुआ आत्म-नियंत्रण ही धर्म है।

१२४ सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चारित्र की आराधना का नाम धर्म है।

१२५ रूप धर्म का नित नवीन है, और सदा है ताजा।
आत्मजगत् को पाए अग-जग, उसका यही तकाजा॥

१२६ धर्महीन जीवन गंधहीन पुष्प के समान है।

१२७ धर्म का सबसे बड़ा मंदिर है—धार्मिक का जीवन।

१२८ इन्द्रियों, मन और वृत्तियों का जितना-जितना संयम साधा जाता है, वह धर्म है।

१२९ धर्म के लक्षण हैं—

१. सब जीवों के प्रति समानता की अनुभूति।

२. मानव-मानव में अभेद की अनुभूति।

३. स्व से स्व की अनुभूति।

१३० धर्म के साथ नए प्रयोग नही जुड़ने के कारण वह अतीत की गाथा मात्र बनकर रह गया है।

१३१ धर्म का सम्बन्ध जीवन की पवित्रता और चेतना के जागरण से है।

१३२ धर्म हमारा जीवन साथी, अविचल आत्माराम।
जिससे हम धार्मिक कहलाते, पाते शांति प्रकाम॥

१३३ जीवन में धर्म तब तक नहीं आता, जब तक संकल्प मजबूत नही होता।

१३४ जो धर्म स्वयं चेतनाशून्य है, जीवनशून्य है, वह औरों को जीवन कैसे दे सकेगा ?

१३५ अनुकरण और प्रदर्शन में धर्म की आत्मा मर जाती है।

१३६ धर्म का विरोध जितना धर्म ने किया है, उतना अधर्म ने नही किया, यह प्रकृति का क्रूर व्यंग्य है।

१३७ ऐसे धर्म की उपयोगिता होती है जो बुद्धि से प्रताड़ित न हो, विज्ञान से प्रतिहत न हो और शक्ति से हीन न हो।

१३८ धर्म नही चिंता करता परलोक बने सुखदायी।
उसको चिंता जीवन में कितनी पवित्रता आई ?

१३९ धर्म विश्वास की शक्ति का अक्षय स्रोत है।

१४० मै उस धर्म का पक्षपाती नहीं हूं जो केवल क्रियाकाण्डों तक सीमित है, जो जड़ उपासना पद्धति से संबंधित है, जो अवस्था विशेष के बाद ही किया जाता है अथवा जिसमें अन्य सब कार्यों से निवृत्त होने की अपेक्षा रहती है। मेरी दृष्टि में धर्म है—जीवन का स्वभाव और सात्त्विक व्यवहार।

१४१ धर्म को नष्ट करने की बात सोचने वाले कितने ही लोग आज तक स्वयं नष्ट हो गए, पर धर्म संघर्षों के सभी तूफानों को सहन करता हुआ आज भी जगत् में प्रकाश की किरणें फैला रहा है।

१४२ अप्राणों का प्राण जो, अत्राणों का त्राण।
निर्बल का बल धर्म है, निरुपचरित निर्वाण ॥

१४३ मानवीय मूल्यों की धरती पर ही धर्म की पौध लहलहा सकती है, यह मेरा निश्चित विश्वास है।

१४४ जिस युग का नाम उपलब्धि की दृष्टि से वैज्ञानिक, शक्ति की दृष्टि से आणविक और शिक्षा की दृष्टि से बौद्धिक है, उस युग में क्या अबौद्धिक, अवैज्ञानिक और शक्तिहीन पद्धति से धर्म का उत्कर्ष सम्भव है?

१४५ परिस्थितिवाद के साथ जूझने में कोई प्रबल आस्थावादी तत्त्व है तो वह धर्म ही है।

१४६ धर्म कैंची का काम नहीं करता, वह तो सुई की भांति दो फटे दिलों को जोड़ता है।

१४७ धर्म एक अखंड चेतना है। जब वह खंड-खंड होती है तो उससे पाखण्ड पैदा होता है। धर्म और पाखंड में कोई मेल नहीं है।

१४८ धर्म शब्द इतना आसान नहीं कि उसे चाहे जैसी परिभाषा दे दी जाय, और वह इतना क्लिष्ट भी नहीं कि उसे जानने के लिए ग्रंथों और शास्त्रों में सिर खपाया जाय, जंगलों-पहाड़ों की खाक छानी जाय। धर्म तो सहजता में है।

१४९ प्रतिदिन जिसके उपदेश सुनने पर भी जीवन की दिशा में परिवर्तन नहीं होता, क्या वैसे धर्म का जीवन में कोई उपयोग है?

१५० धर्म ही कल्पवृक्ष है। धर्म ही चिन्तामणि रत्न है। धर्म ही कामधेनु है।

१५१ धन, दौलत और यौवन अस्थिर और नश्वर है। स्थिर और अनश्वर एक मात्र धर्म है।

१५२ धर्म शांति का सोपान है। जब जीवन में धर्म का अवतरण हो जाएगा तो मनुष्य देव बन जाएगा और संसार स्वर्ग बन जाएगा।

१५३ धर्म के द्वारा लौकिक अभ्युदय होता है पर धर्म उसके लिए नहीं है।

१५४ धर्म का पथ और मानव की उन्नति का पथ एक ही है।

१५५ जो धर्म मानवीय एकता, शांति एवं मनुष्य के उत्थान के लिए स्थापित हुआ, वही धर्म खून-खराबा, अनैतिकता एवं आपसी द्वेष बढाने की गतिविधियों का केन्द्र बन गया। धर्म के इस स्वरूप को देखकर पीड़ा होती है।

१५६ धर्म राष्ट्र का कलेवर नही, उसकी आत्मा है।

१५७ जैसे मनुष्य की छाया अनवरत उसके साथ रहती है, उसी प्रकार धर्म भी एक सच्चा साथी है।

१५८ धर्म जब तक वर्तमान जीवन से सम्बद्ध नही होता है, तब तक केवल अतीत और भविष्य से बंधा हुआ धर्म किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति को आकृष्ट नहीं कर पाता।

१५९ प्रवहमान पानी ही स्वच्छ रह सकता है, वैसे ही प्रवहमान धर्म की धारा ही स्वच्छ रह सकती है।

१६० धर्म का कार्य दूसरो पर शासन करना नही है, किंतु उनमें आत्मानुशासन जागृत करना है।

१६१ पुरुषार्थ, सक्रियता और गतिशीलता धर्म के प्राण है।

१६२ धर्म है मानसरोवर भव्य।
त्याग, तप मोती जहां अलभ्य ॥
धर्म ने कितने पतित सुधारे !
उजडते कितने खेत रुखारे !

१६३ मेरा धर्म किसी मंदिर या पुस्तक मे नही, बल्कि मेरे जीवन में है, मेरे व्यवहार में है, मेरी भाषा में है।

१६४ धर्म व्यक्ति को स्वार्थ की भूमिका से हटाकर परमार्थ की भूमिका पर प्रतिष्ठित करता है।

१६५ जातिवाद से, अर्थवाद से, व्यर्थवाद से दूर।
बलात्कारिता, चाटुकारिता नहीं उसे मंजूर।
धर्म हृदय-परिवर्तन है, फिर क्या निर्धन-धनवान !

१६६ धर्म समय की सीमा में आवद्ध नहीं है। वह जीवन के क्षण-क्षण और कण-कण में होता है।

१६७ जिस प्रकार मूल के अभाव में वृक्ष का अस्तित्व नहीं रह सकता, उसी प्रकार विनय के अभाव में धर्म अस्तित्वहीन है।

१६८ अतीन्द्रिय चेतना के विकास का द्वार धर्म है।

१६९ मैं अन्न, पानी और श्वास के विना कुछ समय तक जी सकता हूं, पर धर्म के विना नहीं।

१७० संदर्भों से टूटा और विखरा हुआ साहित्य जैसे ज्ञानवर्धक नहीं होता, वैसे ही जीवन के संदर्भों से भटका हुआ व्यक्ति धर्म के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाता।

१७१ जो धर्म जीवन को परिवर्तन की दिशा नहीं देता, वह धर्म नहीं सम्प्रदाय है, क्रियाकाण्ड है, उपासना है और परम्परा है।

१७२ धर्म की दो निष्पत्तियां हैं—संशोधन और ऊर्ध्वगमन।

१७३ समुद्र में गहरे पैठे विना जिस तरह मोती हाथ नही आते, केवल पत्थर के टुकड़े हाथ आते है, उसी तरह धर्म जैसे गंभीर तत्त्व को सूक्ष्मतया समझे बिना वास्तविक तथ्य हाथ नहीं लग सकते।

१७४ जहां धर्म को लौकिक तथा सामाजिक व्यवस्था के साथ जोड़ दिया जाता है, वहां धर्म की मौलिकता समाप्त हो जाती है।

१७५ मेरी दृष्टि में व्यावहारिक धर्म के तीन रूप हैं—सहिष्णुता, विवेक और धैर्य।

१७६ धर्म पंथों, मंदिर-मस्जिद, चर्च या गुरुद्वारे में नही, मनुष्य के भीतर है। बाहर का भटकाव व्यक्ति को धर्म से बहुत दूर ले जाता है।

१७७ सड़ा-गला तथा रूढियों और साम्प्रदायिक घेरों में जकडा हुआ धर्म किसी का भला नहीं कर सकता ।

१७८ जो नारकीय धरातल पर पड़े जन-जीवन को स्वर्गीय धरातल की ओर ले जाने वाला है, वह धर्म है ।

१७९ धर्म परमार्थ की चेतना है । धर्म की ओट में अवांछनीय प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना धर्म को धोखा देना है, तथा अपने आप को धोखा देना है ।

१८० कष्टों में भी व्यक्ति धर्म पर अडिग रहे, यह है धर्म का प्रताप । करोडों की सम्पत्ति हो परन्तु गर्व नाममात्र का भी न हो, यह है धर्म का प्रताप । सत्ता होने पर भी उसका दुरुपयोग न हो, यह है धर्म का प्रताप ।

१८१ जिसके मूल में अध्यात्म है, वही धर्म जीवित रह सकता है ।

१८२ "पृथ्वी का कोई प्राणी हंतव्य नहीं है", यह चिंतन ही सबसे बड़ा धर्म है ।

१८३ जिस प्रकार खिचड़ी के साथ उसकी भाप से ढक्कन पर रखे हुए ढोकले भी सीझ जाते है उसी तरह धर्म के साथ राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक भी विकास स्वत: हो जाते है ।

१८४ अपने आप में रमण करना धर्म है ।

१८५ मानसिक निर्मलता धर्म है । उससे मानसिक एकाग्रता सधती है । अत: धर्म और मानसिक एकाग्रता में भिन्नता नही है ।

१८६ पतित होने से किसी को बचा लेना तथा किसी की आत्मा को दुर्गुणों से बचा लेना धर्म है ।

१८७ धर्म वह महल है, जो विश्वमैत्री की भित्ति पर और सत्य, अहिसा के खंभों पर टिका हुआ है ।

१८८ जीवन के उन कठिन क्षणों में जबकि धन, परिजन आदि सब सहारे असहारे साबित होते हैं, धर्म ही व्यक्ति के लिए एकमात्र सहारा—शरण होता है ।

१८९ धर्म का मर्म उपासना नही, चरित्र है ।

१९० दुकान का धर्म और मंदिर का धर्म, हरिजन का धर्म और महाजन का धर्म, अमीर का धर्म और गरीब का धर्म अलग-अलग नहीं हो सकता। धर्म तो सबके लिए समान और एक ही होता है।

१९१ अनियंत्रित अर्थ और काम ही समस्या का मूल है और उसे नियंत्रित और परिष्कृत करने वाला तत्त्व ही धर्म है।

१९२ धर्म के मामले में संदेह किया तो आस्था डगमगा जाएगी और आस्था हिली कि भटक जाओगे।

१९३ धर्म एकवचन है, उसे बहुवचन मानना बहुत बड़ी भूल है।

१९४ जिस धर्म की दार्शनिक पृष्ठभूमि में सत्य का तेज होता है, वही धर्म समस्या का समाधान दे सकता है।

१९५ राष्ट्र की आत्मा तभी स्वस्थ, मजबूत और प्रसन्न रह सकती है, जबकि उसमें धर्म के तत्त्व घुले-मिले हों।

१९६ धर्म का आसन सम्प्रदाय से ऊपर होता है।

१९७ उस धर्म के साथ मेरी कोई सहमति नहीं है, जिसमें जीवन को रूपान्तरित करने की क्षमता नहीं है।

१९८ धर्म क्या है—यह जानने के लिए धर्मग्रंथों को देखने की अपेक्षा न रहे, बल्कि हम व्यक्ति को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर सकें कि 'धर्म यह' है।

१९९ धर्म किसी भी समय राज्यसत्ता का पारतंत्र्य और हस्तक्षेप नहीं सह सकता।

२०० शाश्वत मूल्य धर्म का जो, वह कैसे घट सकता है ?
धर्म नाम पर मानव-मानव, कभी न बंट सकता है ॥

२०१ मिथ्यात्व-मन्यु-मद-मोह-ममत्व-मार-
मंदत्व-मान-मधुपानतमोमृषादीन ।
धर्मावृणोषि यदि तर्हि कथं कथेयं,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ॥३६॥

(हे धर्म ! जब तुम मिथ्यात्व, क्रोध, मद, मोह, ममता, काम, अज्ञता, अभिमान, शराब, पाप और असत्य आदि दुर्गुणो को आवृत करते हो, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि तुम सम्पूर्ण तीनो लोको को प्रकाशित करते हो।)

२०२ श्रुति और श्रद्धा के साथ सम्यग् आचरण हो जाए तो धर्म के प्रभाव् की गारंटी मैं दे सकता हूं।

२०३ धर्म के साथ जब कर्म जुडता है, तब ही उसकी सार्थकता है।

धर्म : अधर्म

२०४ जिन विचारों एवं व्यवहारों से हमारा जीवन पवित्र बनता है, वही धर्म है और जिन विचारों तथा व्यवहारों से जीवन अपवित्र और अशांत बनता है, वही अधर्म है।

२०५ धर्म-अधर्म, सत्कर्म-दुष्कर्म कुछ भी करो, मौत तो निश्चित है। अन्तर इतना ही है कि धर्म करने वाला सद्गति में तथा अधर्म करने वाला दुर्गति में जाएगा।

२०६ धर्म, धर्म ही था, धर्म ही है और धर्म ही रहेगा। अधर्म, अधर्म ही था, अधर्म ही है, अधर्म ही रहेगा।

२०७ जहां सर्वत्र अधर्म का साम्राज्य हो, वहीं धर्म को चमकाने की आवश्यकता होती है।

२०८ जीवन में जितनी समता उतना धर्म है, जितनी विषमता उतना अधर्म है।

२०९ विवेक और अविवेक ही धार्मिकता और अधार्मिकता की पहचान है।

२१० अधरम में अणजाण, धरम रो मेल मिलासी।
घी में तम्बाकू न्हाख्यां स्यूं, होसी हांसी।।

२११ सरलता धर्म है, कुटिलता अधर्म है।

२१२ जो आचरण अर्हत् की आज्ञा के अन्तर्गत है, वह सत् है, धर्म है, जो आचरण अर्हत् की आज्ञा के अन्तर्गत नही है, वह असत् है, अधर्म है।

२१३ संयममय भोजन धर्म है, बोलना धर्म है, सोना धर्म है। असंयममय भोजन अधर्म है, बोलना अधर्म है, जगना-सोना अधर्म है।

धर्म और अहिंसा

२१४ जिस धर्म के साथ अहिंसा का अनुबंध नहीं होता, वह किसी को त्राण नहीं दे सकता।

धर्म और उपासना

२१५ धर्म को रूप मिलता है—उपासना से। धर्म आत्मा है और उपासना शरीर। दोनों का योग सामूहिक आराधना में निमित्त बनता है।

धर्म और क्रियाकाण्ड

२१६ यदि जीवन-व्यवहारों में धर्म हो और क्रियाकाण्ड नही भी कर सको तो कोई बात नहीं, किंतु केवल क्रियाकाण्डों के आधार पर चलने वाला धर्म लंगडा हो जाता है।

२१७ सेवा, पूजा उपासनामय क्रियाकाण्ड ही धर्म नहीं।
दैनिक व्यवहारों में 'तुलसी' हो उसका आचरण सही॥

धर्म और जातिवाद

२१८ धर्म का बोध-पाठ है—सबके प्रति प्रेम किन्तु जातीयता का पाठ है—अपनी जाति के प्रति प्रेम।

२१९ मठ और मंदिर में किसी को जाने दे या न जाने दे, यह मंदिर के मालिक की मर्जी है, किंतु धर्म करने से कोई नही रोक सकता।

२२० जातीयता का धर्म के साथ कोई गठबंधन नही है। जो लोग जाति के आधार पर होने वाले धर्म में आस्था रखते हैं, वे धर्म को असीम सत्य से काटकर संकीर्ण बना रहे है।

धर्म और जीवन-व्यवहार

२२१ धर्म जीवन का ऐसा गुण है, जिसे जीवन से पृथक् नहीं किया जा सकता। अगर इसको अलग कर दिया जाए तो जीवन जड़मात्र रह जाएगा।

२२२ धर्म तभी जीवित रहता है और दीर्घायु बनता है, जब वह जीवन के व्यवहारों में प्रसन्नता से घूमता है।

२२३ मैं ऐसा धर्म नहीं चाहता, जो केवल विचारों तक ही सीमित रहे। मैं तो ऐसा धर्म चाहता हूं, जो प्रतिदिन के जीवन में उतरे, जिससे व्यवहार और विचार में जो खाई आ गई है उसे पाटा जा सके।

२२४ जीवन से कटने वाला धर्म नीरसता देता है।

२२५ अगर हमारा धर्म जीवित है तो हम जीवित है। धर्म जीवित नहीं है तो धर्म के बिना हम कैसे जीवित रहेंगे?

२२६ जो धर्म हमारे दैनंदिन व्यवहार को प्रभावित नहीं कर सकता, जीवन में चैतन्य नहीं भर सकता, उसका जीवन के लिए कोई लाभ नही है।

२२७ व्यवहार में यदि धर्म की पुट है तो धर्म का उपयोग है, अन्यथा एक धार्मिक और अधार्मिक के बीच विभाजन रेखा क्या होगी?

२२८ धर्म व्यक्ति के अन्तःकरण में होता है, पर उसका प्रतिबिम्ब व्यक्ति के व्यवहारो पर पडता है।

२२९ यदि आपके जीवन-व्यवहार में धर्म के ऊंचे-ऊचे आदर्श नही आए तो केवल उन आदर्शो के आधार पर अपने धर्म का गौरव गाना बहुत मूल्यवान् नहीं है।

धर्म और दर्शन

२३० जब तक दर्शन सही नही होता, धर्म या अध्यात्म की यात्रा आगे नहीं बढ सकती।

२३१ धर्म जब व्यवहार को छोडकर दर्शन के क्षेत्र में अतिशय प्रवेश पा लेता है, तब समस्याएं पैदा होती है।

२३२ दर्शन चिंतन-प्रधान होता है और धर्म साधना-प्रधान। सोचना दर्शन का काम है और उसे क्रियान्वित करना धर्म का।

धर्म और धार्मिक

२३३ कोई धर्म कितना अच्छा है, इसकी कसौटी उस धर्म को स्वीकार करने वाले धार्मिक व्यक्ति हो सकते हैं।

२३४ धर्म उसी व्यक्ति में नही होता, जो अपने आपको धार्मिक मानता है। जो अपने आपको अधार्मिक मानता है, उसमें भी धर्म प्रखर हो सकता है।

२३५ धर्म वहीं कुंठित होता है, जहां धार्मिक व्यक्ति धर्म की अपेक्षा मतवादों की प्रतिष्ठा का अधिक ख्याल रखते हैं।

२३६ धार्मिक का व्यवहार अगर क्रूर और वंचनापूर्ण होगा तो वह धर्म को भी बदनाम कर देगा।

धर्म और नैतिकता

२३७ नैतिकता धर्म की पृष्ठभूमि है। यदि वह सुरक्षित है तो धर्म का महल भी टिका रहेगा।

२३८ धर्म और अध्यात्म का स्वीकरण सिद्धान्त के रूप में होना चाहिए, नीति के रूप में नहीं। नीति बदलती रहती है परन्तु सिद्धान्त अपरिवर्तनीय है।

२३९ धर्म की पहली कक्षा नैतिकता है। जिस व्यक्ति ने नैतिकता की कक्षा में प्रवेश नहीं पाया, वह धर्म की अगली कक्षा में प्रवेश नही पा सकता।

धर्म और पाप

२४० धूप और छाया आपस में मिलते नही है, वैसे ही धर्म और पाप का मिश्रण नहीं होता।

धर्म और भोग

२४१ भोग जीवन की अनिवार्यता हो सकती है पर उसमें धर्म का निरूपण किसी भी स्थिति में काम्य नही है।

धर्म और मजहब

२४२ धर्म जीवन जीने की कला है और मजहब उसे विकसित और प्रचारित करने के साधन।

२४३ आज व्यक्ति धर्म के कारण धार्मिक नही कहलाता, मजहब के कारण धार्मिक कहलाता है। यही जीवन की सबसे बडी विसंगति है।

२४४ मैं मजहब से पहले धर्म को महत्त्व देता हूं। यदि धर्म मजबूत है तो मजहब भी मजबूत हो सकता है।

२४५ मजहब का होना बुरी बात नहीं है, पर उन मजहबों का होना बुरा है जो धर्म के महावृक्ष से छिन्न शाखाओं की भांति सूखे पड़े हैं।

२४६ धर्म व्यापक है, मजहब सीमित है। धर्म सार्वभौम तत्त्व है, मजहब देश, काल और परिस्थितियों से अनुबधित है।

२४७ जब से धर्म मजहबों में अटक गया, तब से ही वह गतिहीन हो गया।

धर्म और मैत्री

२४८ धर्म का कोई नियम ऐसा नही दीख पडता जो मैत्री की भावना से टकराता हो।

धर्म और राजनीति

२४९ राजनीति का सूत्र है—दूसरों को देखो और धर्मनीति का सूत्र है—अपने आपको देखो।

२५० राजनीति अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए हिंसा के कंधे पर सवारी कर लेती है, पर धर्म का हिंसा के साथ दूर का भी रिश्ता नही है।

२५१ धर्माचार्य और राजनयिक के मिलन का यह अर्थ कभी नही है कि धर्म और राजनीति एक हो गए।

२५२ धर्म और राजनीति एक नही है। जहां इन दोनों को एक कर दिया जाता है, वहां धर्म, धर्म नहीं रहकर, स्वार्थ-सिद्धि का साधन बन जाता है।

२५३ धर्म अपनी मर्यादा से दूर हटकर राज्यसत्ता में घुल-मिलकर विष से भी अधिक घातक बन जाता है।

२५४ धर्म दण्ड या शासन के बल पर नही चल सकता, इसलिए मैं राजनीति और धर्म को अलग-अलग मानता हूं।

२५५ धर्म पर राजनीति के छा जाने की आवश्यकता नही, अपितु राजनीति को धर्म के नियंत्रण में रखने की आवश्यकता है।

२५६ धर्म जीवन और व्यक्तित्व के रूपान्तरण की प्रक्रिया है। राजनीति राज्य को सही दिशा में ले चलने वाली नीति है।

२५७ राजनीति अर्थ और सत्ता पर आधारित होकर अपने चरित्र को धुधला बना देती है, जबकि धर्म कभी सत्ता और अर्थ की वैशाखियों के सहारे नही चल सकता।

२५८ जहां कहीं धर्म का राजनीति के साथ गठबंधन कर उसे जनता पर थोपा गया, वहां हिसा और रक्तपात ने समूचे राष्ट्र में तबाही मचा दी।

२५९ शठ के साथ शठता का व्यवहार करना चाहिए—यह सूत्र राजनीति का हो सकता है, किंतु धर्मनीति के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

धर्म और रूढ़ि

२६० मैं उस रूढ़ धर्म का उपासक नही हूं, जिससे जीवन में कोई चमक, कोई परिष्कार और कोई परिवर्तन न आए।

२६१ रूढ व्यक्ति धर्म को अपने जीवन्त सन्दर्भों से काटकर परलोक के साथ जोड़ लेता है। बस यही से धर्म मे विकृति का प्रवेश होने लगता है।

२६२ इस वैज्ञानिक युग में ऐसे धर्म न टिक पाएंगे।
केवल रूढिवाद पर जो चलते रहना चाहेगे ।।

२६३ जब प्रयोग से धर्म का सम्बन्ध छूट गया तो उसमें रूढियों का समावेश हो गया।

धर्म और लौकिक कर्त्तव्य

२६४ लौकिक-कर्त्तव्य देश, काल और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनशील होते है, परन्तु धर्म अपरिवर्तनीय होता है।

२६५ है कर्त्तव्य सभी सांसारिक, पर आध्यात्मिक धर्म नही।
धर्म और कर्त्तव्य परस्पर, पृथक् रूप है कहीं-कही ।।

२६६ किसी को भोजन देना, वस्त्र की कमी में सहायता प्रदान करना या रोग आदि का उपचार कराना अध्यात्म धर्म नही, किन्तु पारस्परिक सहयोग है, लौकिक धर्म है।

धर्म और वर्ग

२६७ धर्म और वर्ग का आपस में कोई सम्बन्ध नही है। वर्गवाद धर्म को संकीर्ण बना देता है।

धर्म और विज्ञान

२६८ विज्ञान और धर्म का सामञ्जस्य मानवीय हितो को संवर्धन देने वाला है।

२६९ विज्ञान और धर्म का ऐक्य नही है तो उनमें विरोध भी नही है। दोनों की दो दिशाये है। पदार्थ-विश्लेषण और नई-नई वस्तुओं को प्रस्तुत करने की दिशा में विज्ञान आगे बढ़ता है तो आन्तरिक-विश्लेषण की दिशा में धर्म की साधना चलती है।

२७० विज्ञान के माध्यम से धर्म के सिद्धान्तों को व्यवहार में प्रस्तुत करना धर्म पर उपकार है। अन्यथा इस युग में धर्म की कोई पूछ न होती।

२७१ धर्म ने सत्य को प्रस्तुत किया लेकिन विज्ञान ने प्रयोग करना सिखाया।

२७२ धर्म हो या विज्ञान दोनों—तभी सार्थक है, जब वे मानवता के कल्याण में कार्य करे।

२७३ आज यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि धर्म को विज्ञान के प्रकाश में पढा जाए और विज्ञान धर्म की मर्यादा स्वीकार करे।

२७४ धर्म की वैज्ञानिकता और वर्तमान जीवन में उससे प्राप्त होने वाले लाभ का अनुभव हो जाए तो कोई भी प्रवुद्ध विचारक या युवक धर्म से विमुख नहीं जा सकता।

२७५ विज्ञान के दुष्परिणामों पर धर्म या अध्यात्म ही अंकुश लगा सकता है।

२७६ धर्म और विज्ञान में एक बड़ा अंतर यह है कि धर्म प्रायोगिक जीवन जीने वाले व्यक्ति को समता का अमृत बांटता है और विज्ञान उपकरणों का उपयोग करने वालों को सुविधा प्रदान करता है।

२७७ धर्म और विज्ञान दोनों के समन्वय से ही सर्वांगीण विकास संभव है।

२७८ जहां विज्ञान के साथ विवेक नहीं होता, वहां स्वयं का नुकसान होता है। धर्म से बढ़कर और कोई तत्त्व नहीं है जो मानवता को इस विनाश से बचा सके।

२७९ विज्ञान शांति देने में समर्थ नही है। इसका कारण है कि वह मात्र खोज में विश्वास करता है। यदि खोज के साथ धर्म का आलम्बन होता तो संसार में मैत्री, प्रेम और स्नेह का स्रोत बहने लगता है।

धर्म और शांति

२८० आदमी शांति को प्राप्त करने के लिए धर्म की शरण में जाता है, किंतु धर्म के नाम पर, धर्म की ओट में, अशांति फैलाई जाने लगे तो धर्म का क्या होगा ?

धर्म और श्रद्धा

२८१ जिन लोगों में इच्छाशक्ति को घनीभूत करने के लिए पर्याप्त आत्मविश्वास नहीं, मन को एकाग्र या निरुद्ध करने की शक्ति नहीं, वे इस सत्य को कैसे समझ सकते है कि क्या धर्म श्रद्धा-गम्य है?

धर्म और समाज

२८२ धर्म यदि सामूहिक नहीं होता तो कभी तीर्थ की स्थापना नहीं होती। वह अरण्य और कंदराओं तक ही सीमित रहता।

२८३ धर्म वैयक्तिक हो सकता है पर उसकी प्रतिष्ठा और प्रामाण्य की परिधि होती है—समाज।

२८४ समाज स्वस्थ होता है तो व्यक्ति को धर्म-पालन में प्रोत्साहन मिलता है।

२८५ धर्मशून्य समाज स्वयं मनुष्य के लिए आतंक बन जाता है।

२८६ समाज के लिए भारभूत तथा अर्थहीन रूढ़ परम्पराओं को तोड़े बिना धर्म अपने सामाजिक लाभ को अभिव्यक्ति नहीं दे सकता।

२८७ धर्मनीति से अनुशासित समाज में शोषण, अन्याय और भ्रष्टाचार नहीं पनपता।

२८८ धर्म जितना समाजाभिमुख नहीं होता, उतना व्यक्ति अभिमुख होता है। उसके द्वारा समाज की अपेक्षाएं जितनी पूर्ण नही होती, उतना मानसिक समाधान होता है।

धर्म और सम्प्रदाय

२८९ धर्म जीवन को पवित्र बनाने का साधन है, जबकि सम्प्रदाय धर्म की सुरक्षा का साधन है।

२९० धर्म की बात पर स्वार्थ का मुलम्मा चढ़ जाए और सम्प्रदाय वैमनस्य, घृणा एवं कलह के केन्द्र बन जाएं, तब धर्म अपनी पवित्रता को खो बैठता है, और सम्प्रदाय विवादों के घेरों में खड़े हो जाते है।

२९१ मम्प्रदाय धर्म का प्रतिविम्वग्राही है। जव सम्प्रदाय में प्रतिविम्व लेने की क्षमता न रहे, उस स्थिति में वह अनिष्टकर हो जाता है।

२९२ सम्प्रदाय निकम्मे नही है पर धर्म की काया को इनमे ही समेट लेना अज्ञान है।

२९३ धर्म का सन्देश था—प्रेम, मैत्री और समता। सम्प्रदायों में विकसित हुए—वैर, विरोध और विपमता। धर्म का सदेश था—तुम सब समान हो या एक हो क्योकि तुम सव एक ही या एक जैसे ही चैतन्य से अभिन्न हो। सम्प्रदाय से फलित हुआ—तुम सब अलग हो, क्योंकि तुम्हारा धर्म भिन्न-भिन्न है।

२९४ धर्म को जव सम्प्रदाय घेर लेता है तो अधविश्वास वढ जाते हैं।

२९५ जिस प्रकार आत्मा शरीर में रहती है, उसी प्रकार धर्म सम्प्रदाय मे रहता है। जिस प्रकार आत्मा-विहीन शरीर का ससार में कोई अस्तित्व नही, उसी प्रकार धर्म के विना सम्प्रदाय की मूल्यवत्ता ही क्या ?

२९६ सम्प्रदायों की अनेकता धर्म की एकता को खंडित नही कर सकती।

२९७ धर्म नदी का वहता स्रोत है। सम्प्रदाय उसमें बने विविध बांध हैं।

२९८ सम्प्रदाय धर्म-विहीन नही होता, पर धर्म सम्प्रदाय विहीन हो सकता है।

२९९ जहां सम्प्रदाय सत्य से शासित नही होता किंतु सत्य सम्प्रदाय से शासित होने लग जाता है, वहां धर्म निष्प्राण और तैजस-शून्य हो जाता है।

३०० जितना बल उपासना पर दिया जाता है, उससे अधिक बल यदि क्षमा, मार्दव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य पर दिया जाए तो धर्म प्रधान हो सकता है और सम्प्रदाय गौण।

३०१ सम्प्रदाय व्यक्ति को धर्मोपासना की सुविधा देता है, व्यक्ति की आस्था को आलम्बन देता है और सामूहिक उपासना का वातावरण देता है, किन्तु जिस दिन वह धर्म पर छा जाएगा, उसी दिन धर्म की मृत्यु हो जाएगी।

३०२ जहां आत्मशुद्धि का प्रश्न है, वहां सम्प्रदाय गौण हो जाता है, क्योंकि सम्प्रदाय बाद में है और धर्म पहले।

३०३ सम्प्रदायों का विरोध हो सकता है, पर धर्म का नही।

३०४ सम्प्रदाय एक मोहल्ला है तो धर्म शहर है। सम्प्रदाय यदि प्रान्त है तो धर्म राष्ट्र है।

३०५ धर्म असाम्प्रदायिक होता है, अपारंपरिक होता है, पर उसे व्याख्यायित करने वाले मान्य व्यक्तियो के पीछे सम्प्रदाय बन जाते हैं।

३०६ जिस प्रकार धूप और छांव को किसी घर के अन्दर बन्द नही किया जा सकता, उसी प्रकार धर्म को भी किसी एक सम्प्रदाय या वर्ग के साथ सीमित नहीं किया जा सकता।

३०७ धर्म सम्प्रदाय विशेष से बधा हुआ नही है। यदि बधा है तो अहिंसा से, शील से, सुजनता से।

३०८ धर्म को छोड़कर सम्प्रदाय का पोषण करने वाला प्राणो की उपेक्षा कर कलेवर का पोषण करता है।

३०९ ससार का सारा पानी किसी एक ही कुए मे या जलाशय मे नही समाता। इसी प्रकार एक ही सम्प्रदाय में धर्म का सर्वागीण दर्शन नही हो सकता।

३१० धर्म आकाश की भांति मुक्त और व्यापक है। कोई भी व्यापक वस्तु पकड में नहीं आती। सम्प्रदाय उसकी पकड का माध्यम है।

धर्म और हिंसा

३११ हिसा जीवन की मजबूरी हो सकती है, परवशता हो सकती है, पर धर्म नही।

३१२ पूर्व और पश्चिम की भांति हिंसा और धर्म के रास्ते एक नहीं हो सकते।

धर्म-कला

३१३ सब कलाओं में पारगत होने वाला व्यक्ति यदि धर्म की कला में पारंगत नहीं हुआ तो समझना चाहिए कि वह किसी में भी पारंगत नही है।

३१४ धर्म-कला की मृत्यु मनुष्य की वास्तविक मृत्यु है।

३१५ धर्म-कला में केवल मनःप्रसत्ति ही नही होती, उससे आत्मा का वास्तविक विकास भी होता है।

धर्मक्रान्ति

३१६ धर्मक्रांति का अर्थ है—धार्मिक परम्पराओं में, विचारों में, दृष्टिकोण में, अनुष्ठानो में, उपासना-पद्धतियों में भारी परिवर्तन करना।

३१७ धर्मक्रांति की निष्पत्ति है—जन-जन का आत्मोदय।

३१८ धर्मक्रांति से मेरा अभिप्राय यही है कि धर्म परलोक के लिए नहीं, वर्तमान की पवित्रता के लिए हो।

३१९ धर्मक्रांति के तीन सूत्र हैं—जागरण, परिवर्तन और अनुभव।

३२० धर्मक्रान्ति हुए बिना हिन्दुस्तान का उद्धार नही हो सकता।

३२१ धर्मक्रान्ति के पांच सूत्र हैं—१. बौद्धिकता २. प्रायोगिकता ३. समाधानपरता ४. वर्तमानप्रधानता ५. धर्मसद्भावना।

३२२ धर्म में क्रांति की आवश्यकता तब हुई, जब धर्म के नाम पर स्वार्थ सधने का क्रम चलने लगा, धर्म के नाम पर शोषण होने लगा—धर्म के नाम पर दंगे, फिसाद होने लगे।

३२३ धार्मिक है पर नही कि नैतिक बहुत बड़ा विस्मय है।
नैतिकता से शून्य धर्म का यह कैसा अभिनय है?
इस उलझन का धर्मक्राति ही है कमनीय किनारा।
बदले युग की धारा॥

३२४ धर्मक्रान्ति के दो रूप हैं—प्रतिकार और परिष्कार।

३२५ धर्मक्रांति मात्र उपदेशों, कानूनों, शास्त्रों तथा धर्मग्रन्थो की दुहाई देने से नही, अपितु जनता के विवेक-जागरण और अहिंसा से ही संभव है।

३२६ जिस क्षण धर्म का मंच बौद्धिकता और स्वतंत्र चिंतन को उपयुक्त स्थान देगा, उस दिन धर्म के क्षेत्र में क्रान्ति घटित हो जाएगी।

३२७ धर्मक्रान्ति का सूत्र अनूठा मिला, उसे पहचानें।
अन्धाग्रह को छोड सनातन सत्य धर्म को जानें॥

३२८ धर्म का क्रान्तिकारी स्वरूप है जो न धर्मग्रंथों मे उलझे, न धर्मस्थानों में। जो न स्वर्ग के प्रलोभन से हो और न नरक के भय से। जिसका उद्देश्य हो जीवन की सहजता और मानवीय आचार-संहिता का ध्रुवीकरण।

३२९ जागृतचेतना और पुरुषार्थ—ये धर्मक्रान्ति के दो चरण हैं। जागृतिशून्य पुरुषार्थ अन्धा है और पुरुषार्थहीन जागृति पंगु।

३३० धर्म का क्रान्तिकारी रूप तब सामने आएगा, जब वह जन-मानस को भोग से त्याग की ओर अग्रसर करेगा।

३३१ पारलौकिक और सैद्धान्तिक धर्म को दैनन्दिन व्यवहार में लाने का उपक्रम ही धर्मक्रान्ति है।

३३२ करुणा, निडरता, नवसृजन मे तत्परता, सत्यशीलता और ऋजुता—ये ही वे भूमिकाएं हैं, जिन पर धर्मक्रान्ति का बरगद हराभरा रह सकता है।

धर्मगुरु

३३३ हजारों पुस्तकें पढ़ने से जो ज्ञान नही आता, वह धर्मगुरु के चरणों में बैठकर प्राप्त किया जा सकता है।

३३४ संतप्त और दुःखी व्यक्ति को जब धर्मगुरु का सहारा मिल जाता है, तो मानो उसे मृत्यु में भी जीवन मिल जाता है।

३३५ सभी धर्मगुरु भी यदि एक मंच से अपनी बात नहीं कह सकें तो नए सृजन की आशा कहां से की जाएगी?

३३६ चरित्रनिर्माण की सर्वाधिक जिम्मेवारी धर्मगुरुओं की है ।

३३७ धर्मगुरुओं का काम पूजा, सामायिक, स्वाध्याय, ध्यान व तपस्या आदि की प्रेरणा देना ही नही है । समाज में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ सामाजिक मूल्यों के परिष्कार का दायित्व भी उन्हीं पर है ।

३३८ धर्म और धार्मिक सीता और राम की भांति बिछुड़ गए हैं । इस काम में राक्षस रावण सफल हो गया । अब प्रयत्न हो रहा है कि सीता और राम की तरह धर्म और धार्मिक पुनः मिल जाएं । इस प्रयत्न में धर्म-गुरुओं को हनुमान की भूमिका निभानी है ।

३३९ यदि धर्मगुरु सजग न रहे तो धर्म भी रूढ बन जाता है, फिर वह अपना काम नही कर सकता ।

३४० धर्मगुरु वही है, जो त्यागी है फिर चाहे हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई कोई भी हो ।

३४१ कभी कभी जीवन में होने वाले हादसों और उन विपदा के क्षणों मे धर्मगुरु से प्राप्त प्रेरणा व्यक्ति को अन्तरात्मा की ओर उन्मुख कर देती है ।

३४२ धर्मगुरु को इस बात की चिंता नहीं होनी चाहिए कि मेरा भक्त मुझे छोडकर दूसरे सम्प्रदाय में न चला जाये । उन्हें तो इस बात की चिंता होनी चाहिए कि हमारे धर्म के लोग सच्चे धार्मिक है या नही ?

३४३ स्व और पर की मुक्ति ही किसी भी धर्मगुरु को कभी न चुकनेवाली सतत तृप्ति दे सकती है ।

३४४ संसार को अहिंसा, समन्वय और स्याद्‌वाद का पाठ पढ़ाने वाले धर्मगुरु विचारभेद को लेकर परस्पर लड़ें, यह कितनी क्षुद्रता है !

३४५ जब तक निःस्वार्थ और त्यागी धर्मगुरु नही मिलता, तब तक उत्थान-पतन की चिंता कौन करे ?

३४६ यदि सच्ची श्रद्धा हो तो धर्मगुरु ही माता है, पिता है, रक्षक है, अभिभावक है, प्राण है और सब कुछ है ।

३४७ संकीर्ण और असहिष्णु धर्मगुरु स्वप्न में भी अपने धर्मसंघ को आगे नहीं बढ़ा सकता।

३४८ तेजस्वी धर्म की धुरा को धारण करने वाले धर्मगुरु पूरे राष्ट्र का पथदर्शन कर सकते हैं।

३४९ धर्मगुरु बनने का अर्थ है पहले अपना स्वामी बनना, उसके बाद दूसरों का नेतृत्व करना।

धर्मग्रंथ

३५० धर्मग्रंथों में मोती बिखरे पड़े हैं, उन्हें कोई लेने वाला चाहिए।

३५१ स्वप्नों के पकवानों से जिस प्रकार पेट नहीं भरता, उसी प्रकार धर्मग्रथों के ऊंचे-ऊंचे आदर्शों के केवल गुणगान करने से कोई लाभ नहीं हो सकता।

धर्मचक्र

३५२ जन-जन में सामूहिक रूप से धर्म की आस्था का जागरण करना ही धर्मचक्र का प्रवर्तन करना है।

धर्मनिष्ठ

३५३ धर्मप्रेमी बहुत लोग हो सकते हैं पर धर्मनिष्ठ लोग बहुत थोड़े होते हैं।

३५४ नानामनोज्ञरससंभृतभोजनेन,
कान्तासुकोमलकटाक्षविलोकनेन।
धर्मैकनिष्ठहृदयान् प्रविहाय केषां,
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्॥

(धर्मनिष्ठ व्यक्ति के अतिरिक्त ऐसा कौन व्यक्ति है, जो नाना प्रकार के मनोज्ञ रसयुक्त भोजन से और स्त्रियों के कोमल कटाक्षों को देखने से भी विकारग्रस्त न होता हो?)

३५५ आत्मा में अनन्त शक्तियों का खजाना है पर उनका साक्षात्कार वही कर सकता है, जो धर्मनिष्ठ होता है।

३५६ अस्वस्थता और अशक्यता में फंसा एक मनुष्य जहां रोता है, बिलखता है, जीवन के लिए तरसता है, मनौतियां मनाता है, वहां आत्मा की अमरता में विश्वास रखने वाला धर्मनिष्ठ मृत्यु के सामने धैर्य और हिम्मत के साथ सीना तानकर खडा हो जाता है।

धर्मपरिवर्तन

३५७ व्यक्ति को मिटाया जा सकता है पर किसी के हृदय से धर्म को बलात् नही हटाया जा सकता।

धर्म-प्रचार

३५८ जिस धर्म या दर्शन को मानने वाले अर्थ-केन्द्रित होकर रहेंगे वे अपने धर्म का प्रचार-प्रसार कैसे कर सकेंगे ?

धर्म-प्रभाव

३५९ धर्मप्रभावमनुतिष्ठति सम्यगेषा,
विश्वस्थितिस्तदनुगाविह पुष्पदन्तौ।
तेजस्ततः प्रसरति प्रतिसद्म तस्मात्,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥ १९ ॥

(यह पृथ्वी धर्म के प्रभाव से टिकी हुई है, सूर्य और चन्द्र भी इसके अनुचर हैं। यह प्रकाश (राग का) प्रत्येक घर में फैल रहा है इसलिए हृदय में सद्भावना रूप कमल विकस्वर हो रहे हैं।

धर्म-प्रवर्त्तक

३६० आत्मानुभूति के आधार पर धर्म का नया रास्ता दिखलाने वाले धर्मप्रवर्त्तक होते हैं।

३६१ जब-जब धर्म पर विकृतियां हावी हो जाती है, तो कोई धर्मप्रवर्त्तक जन्म लेता है और धर्म की नई धारा का सूत्रपात हो जाता है।

३६२ कोई भी सच्चा धर्म-प्रवर्त्तक किसी वर्ग या जाति-विशेष के लिए धर्म का प्रवर्त्तन नही करता। वह तो अपनी सत्यानुभूति जनता के समक्ष उपस्थित करता है पर होता ऐसा है कि धर्म प्रवर्तक की बातों में विश्वास करने वालों का कालान्तर में एक संगठन या सम्प्रदाय बन जाता है और आगे चलकर वह सत्य उस वर्ग विशेष मे बंध जाता है।

धर्मफल

३६३ किसान खेती करता है पर टिड्डी आदि का आक्रमण हो जाए तो सारा श्रम निरर्थक चला जाता है, किन्तु धर्म के फल में यह संदेह नहीं हो सकता।

३६४ धर्म के साथ अभिन्न हो जाना कठिन कार्य है, किन्तु ऐसा हुए बिना धर्म का फल जो आना चाहिए वह नही आता।

३६५ जहां आचार की गौणता और उपासना की प्रधानता है, वहां सहज ही बौद्धिक द्वन्द्व होता है और वह व्यक्ति को धर्म से विमुख बना देता है।

धर्मशक्ति

३६६ राजशक्ति, समाजशक्ति और नैतिकशक्ति जब मानवता को लांघकर जीर्ण-शीर्ण हो जाती है, तब भी धर्म-शक्ति अशक्त को शक्त बनाने की ताकत रखती है।

धर्मशासन

३६७ धर्मशासन में अनुशासन स्वीकार कराया नही जाता, किया जाता है, दण्ड दिया नही जाता, लिया जाता है।

३६८ जहां धर्म की प्रक्रिया सिखाई जाती है, धर्म का रास्ता दिखाया जाता है, वह धर्मशासन है।

धर्मशास्त्र

३६९ धर्मशास्त्रों के बोझ को तो एक पशु भी ढो सकता है, मानव का कार्य है कि वह उसे जीवन-व्यवहार में लाए।

३७० कोई भी धर्म-शास्त्र किसी भी परिस्थिति में हिंसा का विधान नहीं कर सकता।

धर्मसंघ

३७१ चेतनाशून्य अस्थिपंजर का कोई उपयोग नही होता, वैसे ही अनुशासनशून्य धर्मसंघ लोक-चेतना को प्रभावित नहीं कर सकता।

३७२ कष्ट के समय में धर्म और धर्मसंघ की उपयोगिता स्वयं समझ में आ जाती है।

३७३ एकता की अनुभूति जितनी प्रगाढ़ होती है, धर्मसंघ की नींव उतनी ही गहरी हो जाती है।

३७४ वह धर्मसंघ उच्चता के शिखर पर आरूढ होता है, जिसमें आत्मानुशासन की प्रधानता होती है।

धर्म-सम्पदा

३७५ संसार के सारे वैभव नष्ट हो सकते हैं पर धर्म-सम्पदा सदा वर्धमान रहती है।

धर्म-सम्प्रदाय

३७६ वर्तमान में उस धर्म-सम्प्रदाय को जीने का अधिकार नहीं है जो अपने कर्तव्य की पूर्ति न कर केवल साम्प्रदायिकता और वैमनस्य का विष उगलता है।

३७७ सत्य और अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाला धार्मिक सम्प्रदाय संकीर्ण दायरा नही हो सकता। यदि उसे दायरा कहा भी जाय तो यह वह दायरा है जो प्रतिबंध नही, उन्मुक्तता देता है, कुंठा नहीं, गति देता है।

३७८ मैं उस धर्म-सम्प्रद्राय को बुरा मानता हूं जो मनुष्य को संकीर्ण दृष्टि से देखना सिखाता है।

३७९ वह धर्म-सम्प्रदाय सीमित होकर भी असीम से कटा हुआ नही होता, जो अनन्त सत्य को अपनी ही बाहों में सिमटा हुआ नहीं मानता।

धर्मस्थान

३८० धर्मस्थान में आते समय व्यक्ति स्वयं को देखे कि मेरा विकास कहां तक है ? धर्मस्थान से निकलते समय अपने को फिर देखे कि मैं कहां तक बढ़ा हूं ?

३८१ स्थान विशेष के साथ धर्म का सम्बन्ध क्यों जोड़ा जाए ? यदि साधु श्मशान में बैठते हैं तो वही धर्मस्थान बन जाता है।

३८२ जब धर्मस्थलों में अपराधियों को पनाह मिलने लगती है, तोडफोड-मूलक नीति का संचालन वहां से होता है और आम आदमी पर घातक हमले किए जाते है, तब आदमी अपराध मुक्ति और सुरक्षा के लिए किस स्थान की शरण में जाएगा ?

३८३ जितने भी धार्मिकस्थल हैं या आगे होगे, वे स्मृति के चिह्न हैं, पूजा के घर नहीं ।

३८४ धर्मस्थान राजनीति और परिग्रह से निर्लिप्त रहकर ही अपना अस्तित्व कायम रख सकते है ।

३८५ दुकान या कार्यालय ही सच्चे धार्मिक स्थल है, जहा व्यक्ति ईमानदारी व सच्चाई से ईश्वर की शरण मे जा सकता है ।

३८६ मैं धर्म को मनुष्य के जीवन में देखना चाहता हू, केवल धर्म-स्थानों में नही ।

३८७ धर्मस्थान मे जो कुछ मिलता है, वह अमूल्य होता है, उसे पैसे से खरीदा नहीं जा सकता ।

३८८ धर्मस्थान बनाने से धर्म संकीर्ण हो जाएगा, अन्यथा जहां भी तुम जाकर बैठोगे, वही तुम्हारा धर्मस्थान हो जाएगा ।

३८९ धर्मस्थान उसी समय तक नंदनवन है, जब तक उसमें धार्मिक क्रिया होती हो ।

३९० विकृत मानस वाले मानव को धर्मस्थान में आने का अधिकार ही नही है ।

३९१ आज स्थिति इतनी जटिल है कि भगवान् में कम किन्तु भगवान् का घर कहे जाने वाले स्थानों के प्रति श्रद्धा ज्यादा है।

३९२ चिन्ता इस बात की है कि धर्मस्थान भी ऐसे नहीं रहे हैं, जहां मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद न हो, जहां सत्य, प्रेम और मैत्री की गंगा बहती हो।

३९३ अपना मन सबसे अच्छा धर्मस्थान है, इसमें धर्म का सतत निवास रह सकता है।

३९४ धर्मस्थान में किसी भी व्यक्ति की धार्मिक भावना को ठेस पहुंचाना पाप है।

३९५ सामायिक, स्वाध्याय, संत-दर्शन तो धर्मस्थानों में,
जालसाजियां धोखेबाजी करते बैठ दुकानों मे।
तो होगा यह प्रभु से धोखा, केवल मन बहलाते हो,
सत्यधर्म की सही शान को, खोते या रख पाते हो ?

३९६ मैं मस्जिद, मंदिर या गुरुद्वारा को ईश्वर का घर नहीं मानता, बल्कि उपासना का घर मानता हूं।

३९७ मंदिर, मठ, चर्च, गुरुद्वारा, उपाश्रय, स्थानक, मस्जिद आदि धर्मस्थान निरुपयोगी है, यदि उनमें सदा जाने वाला व्यक्ति अपने आपको धार्मिक नही बना सकता।

धर्माचरण

३९८ धर्म करने वाले को स्वर्ग मिलेगा या नही, मैं उत्तरदायी नही हूं, मोक्ष मिलेगा या नहीं, मैं नहीं जानता, किंतु धर्म करने वाले का वर्तमान सुधरेगा—इतना मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं।

३९९ प्रशिक्षित मन ही धर्माचरण में साधक हो सकता है।

४०० आचरण और क्रियान्विति की बात जब गौण हो जाती है, तब धर्म की आत्मा मर जाती है।

४०१ पुद्गल में ज्यों वर्ण, गंध, रस, त्यों जीवन में धर्म।
ऊपर से ओढी चद्दर ज्यों नही, यही है मर्म॥

४०२ जीवन में भले ही करोडों की सम्पदा इक्कट्ठी कर लें लेकिन मरते समय एक कोडी भी साथ नहीं जाएगी। साथ जाता है धर्माचरण।

४०३ विश्व को सुखी करने के लिए धर्म का आचरण सर्वशक्तिमान् है।

४०४ धर्माचरण का प्रथम बिंदु है—व्यक्ति को अपने नैतिक दायित्व का बोध होना।

४०५ व्यक्ति धर्माचरण करे और जीवन मे पवित्रता और शांति का अनुभव न हो, संत्रास और तनावों का घेरा व्यथा देता रहे तो मानना होगा कि या तो धार्मिक व्यक्ति औपचारिक रूप से धर्माचरण करते है या धर्म के नाम पर कुछ और ही घटित हो रहा है।

४०६ धार्मिक नियमों का आचरण करना कठिन है, असम्भव नही।

४०७ धर्म का आचरण स्वतंत्र हृदय से हो सकता है, हठ से नहीं।

४०८ जन्म से जाति होती है, धर्म आचरण से होता है।

४०९ घर हो या जगल, धर्मस्थान हो या कार्यालय, धर्माचरण के लिए कोई प्रतिबद्धता नही हो सकती।

४१० जो व्यक्ति कल का विश्वास कर धर्माचरण में प्रमाद करता है, वह कभी भी धोखा खा सकता है।

धर्माचार्य

४११ केवल परलोक के लिए धर्म का उपदेश देने वाला धर्माचार्य अपने अनुयायियों को भटका देता है।

४१२ आर्य कार्य की आदि में, आर्य स्मरण अनिवार्य।
आर्यप्रवर अविकार्य वर, ध्याऊ धर्माचार्य॥
पुरुषोत्तम रा प्रतिनिधि, हृदय उदधिवत् हृद्य।
सिद्धि संपजै सेवतां, सतत सविधि साविध्य॥

४१३ यदि धर्माचार्य व्यापक और उदार दृष्टिकोण अपना सके तो साम्प्रदायिक उन्माद की आंधी उतर सकती है।

४१४ दो सांड लडते हैं तो उन्हें अलग-अलग किया जा मकता है। पर लड़ते हुए दो धर्माचार्यों को अलग-अलग नही किया जा सकता—यह आज के युग की सबसे बड़ी बिडम्बना है।

४१५ मनुष्य को उसके आदर्शों के अनुरूप आचरण करने और उसके स्वत्व की पहचान कराने के लिए धर्माचार्य परम सशक्त व्यक्ति है।

धर्मात्मा

४१६ शोषण, अन्याय और अनैतिक प्रवृत्तियों द्वारा करोड़ों का संग्रह कर उसमें से कुछ यश-पूर्ति के कार्यों में खर्च कर देना और अपने आपको महान् दयाशील और धर्मात्मा मान बैठना उस पाप को छिपाने का प्रयास मात्र है।

४१७ धर्म ठिकाणै में तो पूरा, धर्मात्मा कहलाओ।
घर में रोजीनां री किचकिच, क्यूं न मिटाओ ?

४१८ आप प्रामाणिक बनें, ईमानदार बनें, किसी से घृणा न करें, जीवन में सत्य और अहिंसा का विकास करें तो स्वतः धर्मात्मा बन जायेंगे।

४१९ प्राणिमात्र के प्रति जिसके मन मे प्रेम होता है, वही वास्तव में धर्मात्मा है।

धर्मान्धता

४२० धर्मान्धता और धार्मिक कट्टरता भी हिंसक मनोवृत्ति है।

४२१ धर्मान्धता का जहर धर्म के मूल स्वरूप को लील जाता है।

धर्माराधना

४२२ आदमी करना चाहे तो कभी भी और कहीं भी धर्माराधना कर सकता है और न करना चाहे तो अच्छे से अच्छे समय और पवित्र से पवित्र स्थान में भी धर्म की आराधना नही कर सकता।

४२३ धर्माराधना की निष्पत्ति है—शोधन, पवित्रता, शांति और सद्गति।

४२४ धर्म की आराधना, अनुसरण, अनुशीलन और अनुपालन से जीवन में जो शांति, आनन्द, उल्लास और आह्लाद मिलता है, वह न तो सम्राट्पन में है और न धन के कुबेरपन में।

४२५ धर्माराधना के विशाल राजमार्ग पर आकर दूसरों को गिराने का प्रयास करना, दूसरों के प्रति असहिष्णु बन उनको हानि पहुंचाने की चेष्टा करना धर्माराधना तो नहीं पर धर्म की विराधना अवश्य है।

४२६ जिस व्यक्ति की चेतना जागृत नही होती, वह धर्म की आराधना नहीं कर सकता।

४२७ धर्म की आराधना के लिए न किसी जाति की बाधा है और न किसी सम्प्रदाय की। उसका सम्बन्ध कर्म या आचरण के साथ है।

धर्मोपदेशक

४२८ जिसमें प्रज्ञा है, मेधा, है, वही धर्म की व्याख्या और समीक्षा कर सकता है।

४२९ हजारों धर्मशास्त्र पढ़ने के बाद भी यदि मन में समता नहीं है, क्षण-क्षण मे मन अशान्त होता रहता है, वह धर्मोपदेश का सच्चा अधिकारी नहीं है।

४३० धर्मोपदेश करने वाले व्यक्ति का व्यवहार तदनुरूप नही होता है तो धर्म उसके लिए मजाक बन जाता है।

धर्मोपलब्धि

४३१ धर्म के सिद्धान्तो का व्यवहार की भूमिका पर अवतरण धर्म की सबसे बडी उपलब्धि और उपादेयता है।

४३२ धर्म से होने वाली उपलब्धि को शब्दों मे बताने की अपेक्षा नहीं है, वह अनुभव की चीज है।

धर्मोपासना

४३३ धर्मोपासना आत्मा पर लगे आवरण का अपवर्तन और परिष्करण का साधन है।

४३४ धर्म रूप उत्कृष्ट मगल की उपासना के बाद व्यक्ति के जीवन मे किसी अमगल की सभावना ही नहीं रह सकती।

४३५ उपासना के साथ-साथ जो वासना का विकास हो रहा है, वह एक द्वन्द्व है। द्वन्द्व से धर्म की उपासना नहीं हो सकती।

धारणा

४३६ जो धारणा की खिड़की से सत्य को देखता है, वह उससे दूर भागता है। जो तथ्यों की खिडकी से सत्य देखता है, वह सत्य के निकट पहुंचता है।

४३७ वस्तुस्थिति जाने बिना किसी के बारे में कोई धारणा बना लेना बहुत बडी भूल है।

४३८ जो कुछ मैं कर रहा हूं वह सदाचार है। इस धारणा की अपेक्षा व्यक्ति को ऐसी धारणा सुदृढ़ करनी चाहिए कि जो सद् आचरण है, वह मेरे लिये करणीय है।

४३९ ध्येये चित्तस्य स्थिरबंधो धारणा।
(ध्येय मे चित्त की स्थिरता धारणा है।)

४४० मनुष्य दूसरों के विषय मे गलत धारणा रख सकता है, किंतु अपने विषय में नहीं।

धार्मिक

४४१ खान-पान की विकृति, रहन सहन की अमीरी और चरित्र की गरीबी से बचने वाला व्यक्ति ही धार्मिक हो सकता है।

४४२ धार्मिक बनने की प्रथम कसौटी जीवन-शैली है। वह जब तक उन्नत नही बनेगी, धार्मिक की पहचान नहीं बन पाएगी।

४४३ कोई धर्म शब्द से नफरत करता है, वह भले उसे स्वीकार न करे, किंतु सत्य और प्रेम को स्वीकार करता है, तो मैं उसे धार्मिक ही कहूंगा।

४४४ धार्मिक का व्यवहार विमलता, समता से हो भावित।
आत्मतोष के अनुभव से पल-पल हो वह आप्लावित॥

४४५ जो मानसिक संतुलन नहीं रख पाता, वह धार्मिक कैसे हो सकता है?

४४६ मेरी दृष्टि में एक सच्चा धार्मिक कभी भी गलत साधनों से अर्थार्जन नही कर सकता ।

४४७ येनादृतः परिचितो विदितः सुधर्मः
संशीलितः प्रतिपलं हृदि धारितश्च ।
तेन प्रबुद्धमनसा सहसा निजात्मा
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूतः ॥

(जिसने धर्म को स्वीकार किया है, परिचय किया है, उसका ज्ञान किया है, आचरणो मे उतारा है तथा प्रतिक्षण धर्म को हृदय मे स्थान दिया है, वह ज्ञानी पुरुष अपनी आत्मा को तीन लोक में एक मात्र सुन्दर बना लेता है ।

४४८ जिसे अपने अस्तित्व का सही बोध हो गया हो, वह सहज धार्मिक है ।

४४९ एक सच्चा धार्मिक कभी भी दुर्व्यसनों का दास नहीं हो सकता ।

४५० जो व्यक्ति अपने कुल-धर्म, समाज-धर्म या परम्परा-धर्म के आधार पर स्वयं को धार्मिक मानते है, उनकी निद्रा को तोडना आवश्यक है ।

४५१ धार्मिक की दो कसौटियां है—पापभीरुता और प्रामाणिकता ।

४५२ धार्मिक व्यक्ति मृत्युंजयी हो जाता है—हंसते-खिलते मृत्यु का वरण कर लेता है ।

४५३ श्रुत-संपन्न और शील-सम्पन्न व्यक्ति ही धार्मिक होता है ।

४५४ मैं धार्मिक व्यक्तियों के आंतरिक परिवर्तन को महत्त्व देता हू । धार्मिक व्यक्ति धर्म की परिभाषा को स्वयं के जीवन-व्यवहार से अभिव्यक्त कर सके—यह अपेक्षा है ।

४५५ धार्मिक वह है, जो शत्रु को सहन कर सके । वह क्या धार्मिक जो अपने भाइयों को भी सहन न कर सके !

४५६ धार्मिक व्यक्ति की परख के लिए निर्मित कुछ कसौटियां हैं—
१ जो जाति, वर्ण, सम्प्रदाय आदि के प्रति आस्थावान् नहीं है ।
२ जो नैतिकता, प्रामाणिकता आदि में निष्ठावान् है ।
३ जो क्रूरता से मुक्त है ।

४५७ व्यक्ति को धार्मिक बनने के लिए किसी संप्रदाय से बंधना जरूरी नही है।

४५८ मै चाहता हू कि धार्मिक कहलाने वालो मे विचारों का आग्रह न हो और आचार मे उन्माद न आए।

४५९ जो धार्मिक व्यक्ति जागृत नही हैं और मौलिक आस्था की सुरक्षा के साथ सामयिक परिवर्तन के लिए तैयार नही हैं, वे धर्म को जीवन्त नही रख सकते।

४६० स्थितियो को ज्ञाता-द्रष्टाभाव से देखने वाला ही सच्चा धार्मिक है।

४६१ जिसका संकल्प, मनोवल और धृतिवल पुष्ट है, वह धार्मिक है।

४६२ वे कैसे धार्मिक है जो औरो के पास जाने मात्र से, औरों के विचार सुनने मात्र से अपनी श्रद्धा और धर्म खो बैठते हैं?

४६३ धर्मसाधना में अपने मन को रगा देने वाले धार्मिक के अंतर्-तम में वह चिनगारी पैदा हो जाती है जो हरदम उसे कुमार्ग से बचने के लिए सजग एवं उद्‌बुद्ध रखती है।

४६४ धार्मिक व्यक्ति का पहला कर्त्तव्य है कि उसके द्वारा ऐसा कोई भी कार्य न हो, जिससे औरों का अहित सम्पादन हो।

४६५ मै उन धार्मिकों से हैरान हूं, जो पचासों वर्षों से धर्म करते आ रहे है, किंतु उनके जीवन में परिवर्तन नहीं आ रहा है

४६६ आय-व्यय के आंकड़े मिलाना जागरूक व्यापारी के लिए जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है धार्मिक के लिए जीवन के गुण-दोषों का पर्यालोचन करना।

४६७ जो अपने अधर्म को पहचान लेता है, वह सबसे बड़ा धार्मिक होता है।

४६८ धार्मिक व्यक्ति की पहचान है कि वह किसी की मौत पर कभी रोता नही।

४६९ कोई भी धार्मिक व्यक्ति शिक्षा का, रूढ़ि-निवारण का विरोधी नहीं हो सकता। यदि विरोधी होता है तो मानना चाहिए कि वह सही माने मे धार्मिक नहीं है।

४७० धार्मिक व्यक्ति अल्पेच्छ होता है ।

४७१ धार्मिक कहलाने वाले व्यक्ति के जीवन में उत्तेजना हो, लोभ हो, आक्रोश हो, मोह हो और विग्रह हो ता समझना चाहिए कि उसने ऊपर-ऊपर से धर्म को पकडा है। उसके जीवन में धर्म-प्रवेश के सारे दरवाजे बंद हैं ।

४७२ अधार्मिकों को धार्मिक बनाएं, उससे पहले तथाकथित धार्मिकों को धार्मिक बनाना निहायत जरूरी है ।

४७३ धार्मिक व्यक्ति केवल परम्परावादी नही होता ।

४७४ धार्मिक वह है, जो विवेक-चक्षु से हिताहित का चिंतन कर सके, अन्यथा क्रियाकाण्डों, अनुष्ठानों और अन्धविश्वासों में उलझकर कोई भी व्यक्ति धार्मिक नही हो सकता ।

४७५ धार्मिक व्यक्ति किसी भी क्षण स्वयं को धर्म से शून्य अनुभव नही कर सकता ।

४७६ धार्मिक पुरुष स्वयं मंगल है और उसके सम्पर्क में आने वाला भी मगल हो जाता है ।

४७७ जब लग जरा न जकडै, पकडै रोग न इंद्रचां होणी ।
धार्मिक जीवन जीओ आ है, सुणो सला लाखीणी ।।

४७८ आज के धार्मिक भगवान् से मिलना चाहते हैं किंतु पड़ोसी से मिलना नही चाहते । वे मंदिर में जाकर भक्त कहलाना चाहते हैं किंतु दुकान और बाजार में ग्राहकों को धोखा देने से बचना नही चाहते ।

४७९ धार्मिक व्यक्ति कही भी जाए, कैसी भी परिस्थिति में रहे, उसकी शांति कभी भंग नहीं होती ।

४८० येषां स्वभावरमणप्रकृताशयानां,
पंचेन्द्रियप्रबलभोगपरंपराभिः ।
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्
ते धार्मिकाध्वनि धुरीणपदं लभन्ते ।।

(स्वभावतः सुंदर और सरल आशय वाले जिन लोगो का मन पाचों इंद्रियो और प्रबल भोग-सामग्री से किञ्चित् भी विकारग्रस्त नही होता, वे ही धर्म के मार्ग मे प्रमुखता पा सकते हैं ।

४८१ मनुष्य कितना ही विद्वान्, यशस्वी और कलाविद् हो जाए, किंतु जब तक वह धार्मिक नही बनता, उसके कौशल को अधिक महत्त्व नही मिल सकता।

४८२ शक्ति प्राप्त होने पर भी उसका दुरुपयोग न करने की वृत्ति धार्मिक चेतना में ही विकसित हो सकती है।

४८३ कष्टों से घबराना और श्रम से कतराना सच्चे धार्मिक का लक्षण नही है। दुःख में से सुख निकालना ही धार्मिक की सबसे बड़ी पहचान है।

४८४ जो घृणा और शोषण करता है, वह धार्मिक नही हो सकता।

४८५ प्रकृति ने हमें आंखें दी हैं, जो स्वयं को नही देखती, दूसरों को देखती हैं। कान दिए हैं, जो स्वयं को नही सुनते, दूसरों को सुनते हैं। अपने आपको देखने-सुनने का साधन एक ही है कि धार्मिक बनें।

४८६ जो लोग अपने धर्म में मजबूत होते हैं, जिनका संकल्प चट्टानी होता है, वे जीवन के कठिन से कठिन क्षणों में भी अपने उसूलों—आदर्शों से विचलित नहीं होते।

४८७ धार्मिक तो वह होता है, जो अपने दिमाग को उदार और विशाल रखता हुआ औरो की अच्छाइयों को सहर्ष आत्मसात् करने की क्षमता रखता है और ग्रहण की हुई बुराइयों का परिहार करता है।

४८८ धार्मिक के स्वभाव मे इतना लचीलापन रहता है कि वह किसी भी स्थिति में झुक सकता है।

४८९ वे कैसे धार्मिक है, जो साम्प्रदायिकता और सकीर्णता के तुच्छ दृष्टिकोण का पोषण करते रहते है।

४९० धार्मिक लोग अधर्म से लड़े, यह तो समझ मे आता है, किंतु एक धार्मिक दूसरे धार्मिक से लड़े, यह दुःख का विषय है।

४९१ एक हरिजन को धार्मिक बनने का उतना ही अधिकार है, जितना एक महाजन को।

४९२ धार्मिक कहलाने वाले लोग यदि प्रतिष्ठा आदि को महत्त्व देंगे तो धर्म छोटा हो जाएगा और नाम-प्रतिष्ठा आदि बड़े हो जाएंगे।

४९३ एक धार्मिक व्यक्ति पारस्परिक झगडे को सुलझाने के लिए कोर्ट या कचहरी में जाए, यह शोभास्पद नही लगता।

४९४ एक धार्मिक व्यक्ति पैसे के साथ वैसा ही बर्ताव करता है, जैसा कि एक धाय अपने मालिक के पुत्र के साथ करती है।

४९५ वह कैसा धार्मिक, जिसके दिल में करुणा नही, प्रेम नही, दया नही, अनुकम्पा नही।

४९६ धार्मिक वह है, जो यथार्थ का प्रतिपादन और अयथार्थ का संशोधन करता है।

४९७ दहेज नही लाने के कारण पुत्रवधू को जलाने वाला धार्मिक तो हो ही नहीं सकता बल्कि महापापी है।

४९८ धार्मिक भी कहलाए और बलिदान भी न करना चाहे, यह मनोवृत्ति मनुष्य को भटका रही है।

धार्मिक : अधार्मिक

४९९ जो व्यक्ति जिस सीमा तक आत्मस्वभाव में रमण करता है, वह उस सीमा तक धार्मिक है और जिस सीमा तक वह विभाव में जाता है, उस सीमा तक अधार्मिक।

५०० धार्मिक व्यक्ति की राते और बातें सफल होती हैं जबकि अधार्मिक व्यक्ति की राते और बाते दोनों असफल होती है।

धार्मिक अपकर्ष

५०१ धार्मिक अपकर्ष के निम्न कारण है—

१. साम्प्रदायिक संकीर्णता।

२ परिवर्तनीय के प्रति शाश्वत दृष्टिकोण।

३. धर्म के प्रायोगिक स्वरूप का परित्याग और अवैज्ञानिक परम्पराओं एवं कर्मकाण्डों का निर्वाह।

४. श्रद्धा और तर्क में असंतुलन।

५. आर्थिक तथा राजनैतिक विचारधारा का प्रभुत्व।

५०२ धर्म की अवहेलना होने का कारण यही है कि धर्म को जैसा चाहा, वैसा बना लिया गया।

धार्मिक असहिष्णुता

५०३ मैं इसे कतई पसंद नहीं करता कि एक आदमी धार्मिक भी हो और दूसरों के प्रति असहिष्णु भी। मेरी दृष्टि में धर्म की पहली सीढ़ी सहिष्णुता है।

५०४ दूसरे धर्म व सिद्धांत के प्रति असहिष्णु होने वाला सबसे पहले अपने धर्म को नष्ट करता है।

धार्मिक आडम्बर

५०५ धर्म की ओट में पलने वाले आडम्बर, प्रदर्शन, अंधविश्वास कुरूढियां, अंधानुकरण और अर्थहीन क्रियाकाण्ड व्यक्ति को पतन के मार्ग पर ले जाते है।

५०६ समारोहों में सुसज्जित, आपकी होती सवारी,
धौंधि धपमप धिधिकि धिक्कट बज रहे आतोद्य भारी।
विविध रथ यात्रादि मिप हिंसा, अहिंसा के पुजारी,
कर रहे, जब मैं निहारूं, हृदय में दुविधा दुधारी।
कहां वह विज्ञानमय विभुवर, कहां यह छद्म छाया,
दर्श हित क्षण-क्षण पलक पल, तड़पती यह भक्त काया॥

५०७ वीतराग सब बंधन-विरहित, अलख अलौकिक वेश में।
तो क्यूं बंद किवाडां बीच विराजो सीमित देश में,
बाह्याडम्बर और बवंडर कदै न थांरै दाय है।
तो क्यूं नाना भूषण स्यूं, आ भूषित कल्पित काय है॥

धार्मिक उन्माद

५०८ धार्मिक उन्माद उनमें होता है, जो वास्तव में ईश्वर-भक्त नही होकर केवल दिखाने के लिए ईश्वर-भक्ति का बाना पहनते है।

५०९ मेरा सम्प्रदाय ही श्रेष्ठ है—ऐसा सोचना धार्मिक उन्माद का प्रतिफल है और चिंतन शक्ति का दारिद्र्य है।

५१० धर्मरक्षा के बहाने अहिंसा के नाम पर हिंसा और सत्य के नाम पर झूठ का जो व्यवहार चलता है, वह धार्मिक उन्माद है।

धार्मिक एकता

५११ एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय के साथ अन्याय न करे, परस्पर घृणा न फैलाए, विचार के प्रति सहिष्णु रहे, मतभेद न हो तो धार्मिक एकता संभव है।

धार्मिक चेतना

५१२ किसी भी समाज और राष्ट्र की चेनना का अभ्युदय उम समाज और राष्ट्र की धार्मिक चेतना पर निर्भर है।

धार्मिकता

५१३ धार्मिकना अध्यात्म से प्रभावित होकर ही सफल हो सकती है।

५१४ धार्मिकता की पृष्ठभूमि है—भ्रातृत्व।

५१५ धार्मिकता अन्त:करण की पवित्रता है। वह धार्मिक रुचि होने मात्र से प्राप्त नही होती, साधना से प्राप्त होती है।

५१६ धार्मिकता का सूत्रपात नागरिकता से होता है।

५१७ बलि, मद्यपान, अनियंत्रित भोगवाद की छूट देने वाले धार्मिक कृत्य अपनी धार्मिकता के आगे स्वयं ही प्रश्नचिह्न लगा देते है।

५१८ दु.ख मे स्यू सुख ढूढ ले, धार्मिकता रो चिह्न।
और अधार्मिक री हुवै, भावभगिमा भिन्न॥

५१९ धार्मिकता का अव्यभिचारी चिह्न है—मैत्रीमय जीवन व्यवहार।

५२० एक धार्मिक व्यक्ति देव-गुरु की उपासना करता है, प्रवचन सुनता है, सामायिक करता है, उपवास, पौषध, कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय, ध्यान आदि अनेक क्रियाएं करता है। मुंह से समय-समय पर भगवान् का नाम जपता है, किन्तु जीवन प्रामाणिक नहीं है, जीवन में संयम और समता के भाव नहीं है, उत्तेजना और अहं हावी हो रहा है, उस धार्मिकता से व्यक्ति का क्या हित सध सकता है?

५२१ मैं धार्मिकता के तीन चिह्न मानता हूं—
१. शक्ति का जागरण २. ज्ञान का जागरण ३. आनंद का जागरण।

५२२ व्यक्ति का स्वस्थ जीवन उसकी धार्मिकता का प्रबल प्रमाण है।

५२३ ज्योंही आदमी धार्मिकता के शिखर को छू लेता है, वह सर्वात्मना सत्य के प्रति समर्पित हो जाता है।

५२४ धर्मगुरुओं के आगे चलकर केवल झंडा उठाने मात्र से ही धार्मिकता नहीं आ सकती।

५२५ धार्मिकता बाहरी दिखावों एवं आडम्बरों में नहीं, वह तो अन्तर्तम की वस्तु है।

५२६ केवल शास्त्रों के उच्चारण से धार्मिकता आए।
राम-राम रटने वाले तोते ईश्वर बन जाएं।।

५२७ व्यक्ति की धार्मिकता का सही परीक्षण समूह में होता है।

५२८ एक दूसरे की गलती को सहना ही सच्ची धार्मिकता है।

५२९ वैभवशाली होना धार्मिकता की पहचान नहीं है।

५३० आक्षेपात्मक आलोचना से विचलित न होना धार्मिकता का चिह्न है।

५३१ मैं नैतिकता और मानवता को धार्मिकता की बुनियाद मानता हूं।

५३२ आसक्ति का अभाव ही वस्तुतः धार्मिकता है।

५३३ धार्मिकता कानून की भाषा को भी छोड देती है, जहां क्रूरता की संभावना आ जाती है।

५३४ नैतिकता आधार बने, जन-जन की धार्मिकता का।
समता, स्वतंत्रता ही मूलमन्त्र है मानवता का।।

धार्मिक दृष्टिकोण

५३५ विचारभेद की स्थिति में शांति और सौहार्द से सामने वाले व्यक्ति का हृदयपरिवर्तन करना धार्मिक दृष्टिकोण है।

धार्मिक पर्व

५३६ धार्मिक पर्वों का एक ही लक्ष्य होना चाहिए—
जीवन की पवित्रता, चित्त की निर्मलता और मन की शांति।

५३७ धार्मिक पर्वों के प्रति आकर्षण होने को मै जन-जीवन का सौभाग्य और मानवता की प्रतिष्ठा मानता हूं।

धार्मिक वंचना

५३८ देखो दुनियां में छाई धर्म ठगाई,
इण ही कारण बदनामी धर्म उठाई।
हा! पाप गोहिरै रो पीपल नै बालै,
भोलो सज्जन दुसमण री गरजां पालै ॥

५३९ धर्म की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि धर्मस्थानों में आकर तो व्यक्ति अध्यात्म और दर्शन की ऊंचा-ऊंची गुत्थियों को सुलझाए और दुकान में जाकर ग्राहकों के गले पर छुरी चलाए।

धार्मिक विकृति

५४० धर्म के नाम पर खून की नदियां बही, देश का विभाजन हुआ, सती-प्रथा जैसी कुप्रथाए प्रचलित की गई। आज भी धर्म के नाम पर अनेक काम करवाए जाते है। यह सब धर्म को ठीक प्रकार से नहीं समझने का परिणाम है।

५४१ जब तक धर्म में आई विकृतियों का अन्त नहीं होगा, देश की युवापीढी और बौद्धिक वर्ग उसके प्रति आस्था नहीं रख सकेगा।

५४२ धर्म के क्षेत्र मे पनपने वाली विकृतियों को समाप्त कर दिया जाए तो वह अन्धकार में प्रकाश बिखेर देता है, विषमता की धरती पर समता की पौध लगा देता है, दुःख को सुख में बदल देता है और दृष्टिकोण के मिथ्यात्व को दूर कर व्यक्ति को यथार्थ के धरातल पर लाकर खडा कर देता है।

धार्मिक विडम्बना

५४३ मनमान्या कर अरथ धरम रा, पोखै पापाचार ।
धरम-ठगाई जग में छाई, छायो भ्रष्टाचार ।।

धार्मिक संकीर्णता

५४४ कोई नया विचार अंदर न आ जाए, इस कंठित मान्यता ने धर्म को दुर्बल बना दिया ।

धार्मिक सद्भाव

५४५ मेरे अभिमत से सर्वधर्मसद्भाव का अर्थ इतना ही होना चाहिए कि अपने द्वारा स्वीकृत सही सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ विश्वास तथा दूसरे धर्मो के बेमेल विचारों के प्रति सहिष्णुता ।

५४६ मैं अपने धर्म को सत्य इसलिए मानूं कि मैं उसे हृदयंगम कर चुका हूं । दूसरों को मुझे असत्य इसलिए नही मानना है कि उन्हें मै अभी हृदयंगम नही कर पाया हूं ।

५४७ वैचारिक सहिष्णुता का विकास और धर्म के मौलिक सिद्धांतों को लोकजीवन में उतारने का सामूहिक प्रयत्न—ये दो बातें ऐसी है, जिससे धार्मिक सद्भावना की निष्पत्ति हो सकती है ।

धार्मिक सहिष्णुता

५४८ जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म-सहिष्णुता नहीं, वह मुर्दा है ।

५४९ धार्मिक सहिष्णुता का विकास हुए विना धार्मिकता आ ही नही सकती ।

५५० किसी भी सम्प्रदाय में रहता हुआ व्यक्ति जो सत्क्रिया करता है, सदाचरण करता है, उसे कौन बुरा कह सकता है ?

धिक्कार

५५१ भूल करने वाला धिक्कार का पात्र नही, भूल को भूल न स्वीकारने वाला धिक्कार का पात्र होता है ।

धीर

५५२ धीर व्यक्ति का जीवन स्वर्गीय सुखों की खान है ।

५५३ बाहर भीतर एकरस, रहता है जो धीर ।
उसे नहीं लगता कभी, ठंडा-गरम समीर ।।

५५४ संसार उनके सामने झुकता है, जो धीर होते हैं ।

५५५ धीर व्यक्ति ही स्वस्थ और संतुलित जीवन जी सकता है ।

५५६ धीर व्यक्ति का संकल्प इतना दृढ़ होता है कि बड़ी से बड़ी वाधा को भी आखिर उसकी राह से हटना पड़ता है ।

५५७ धीर व्यक्ति कभी निराश होना नहीं जानता ।

५५८ परीषह धैर्य की कसौटी है । परीषह आने पर मन अविचल रखे, वही धीर है ।

५५९ अज्ञानी व्यक्ति गाली-गलौज करता है तो धीर पुरुष सोचता है—चलो आक्रोश से ही छुटकारा मिला, इसने मुझे पीटा तो नहीं ।

५६० धीर वे है, जो प्रलोभनों के रहते हुए भी उनमे नही फंसते ।

५६१ धीर व्यक्ति अपने धैर्य से सबको जीत सकता है ।

५६२ वेष से कोई संत नही बन सकता, संत कहते हैं धीरपुरुष को ।

धुन

५६३ जब तक आदमी में काम करने की धुन नहीं जगती, तब तक कार्य नहीं होता ।

धूम्रपान

५६४ धूम्रपान जीवन को नीरस बनाने वाली आदत है और आत्मा को धूमायित ।

धूर्त

५६५ धूर्त क्षण भर के लिए सोच लेता है कि उसने बड़ी बुद्धिमानी की, पर दरअसल वह पतन के गड्ढे में गिरता है ।

५६६ धूर्त को धूर्तता से जवाब देना बुद्धिमानी नही, बुद्धिमानी है उसकी धूर्तता को समझना।

धृति

५६७ धृति वह तत्त्व है, जो व्यक्ति के मन में सदाचार के प्रति आस्था को सुदृढ़ करता है।

५६८ जीवन की सफलता के लिए धृति की अनिवार्यता है।

५६९ धृति संकल्प से आती है, सत्सम्पर्क से आती है और अभ्यास से आती है।

धैर्य

५७० जीवन की इस लम्बी यात्रा में धैर्य जैसे महान् साथी को छोड़कर चलना भयंकर भूल है। यह भूल जिससे नहीं होती, वह संसार मे महान् बन जाता है।

५७१ जीवनगत दुर्बलताओं और विषमताओं से मुक्त होने का साधन है—धैर्य।

५७२ धैर्य की धरती पर ही सहिष्णुता की पौध लहलहाती है।

५७३ धैर्य का धागा मत टूटने दो, अन्यथा जीवन की डोर भी टूट जाएगी।

५७४ धीरज स्यूं ही सिध हुवै, सोच्या काम हजार।
उतावलो सो बावलो, पिछतावै हर बार॥

५७५ जो व्यक्ति धैर्य को साथ रखकर चलता है, वह अपने हर सपने को साकार देख सकता है।

५७६ धैर्य में एक ऐसी शक्ति है, जो हर असफलता को सफलता की पृष्ठभूमि मानकर चलती है।

५७७ धैर्य रखने से सचाई द्वारा आप पैसा और प्रतिष्ठा दोनों प्राप्त करेंगे, अन्यथा न पैसा रहेगा, न प्रतिष्ठा।

५७८ धैर्य का विकास ही सच्ची शांति और सुख का मार्ग है।

५७९ कठिन से कठिन समस्या का समाधान मिल सकता है, यदि थोड़ा धैर्य रखा जाए।

५८० व्यक्ति की मंजिल कितनी ही दूर क्यों न हो, उसे चलना तो एक-एक कदम ही है। यदि पहला कदम सही दिशा में है और पूरी मजबूती से टिका हुआ है तो अगला कदम रखने के लिए ठोस धरातल स्वयं उपलब्ध हो जाएगा।

५८१ धैर्य उन्नति का प्रतीक है।

५८२ जो कष्ट मे धैर्य नहीं रख पाता, वह अहिंसा की साधना भी नही कर पाता।

५८३ कठिनाइयों और बाधाओ को देखकर अपना धैर्य छोड़ देना और सत्य पथ से विचलित हो जाना, दुर्बलता की निशानी है।

५८४ धैर्य की शरण में जाने वाला व्यक्ति निर्द्वन्द्व हो जाता है, निर्भय हो जाता है और आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है।

५८५ किस व्यक्ति में कितना धैर्य है, इसका परीक्षण होता है विपत्ति के समय ?

५८६ साधना का फल पाने के लिए धैर्य रखना जरूरी होता है।

५८७ जहां धैर्य नहीं, वहां परिवर्तन भी सार्थक नहीं होता।

५८८ व्यक्ति हर स्थिति को धैर्य से संभालता जाए तो कोई भी अवांछनीय घटना नही घटेगी।

५८९ प्रारंभिक स्थिति को धैर्य से पार करने पर आगे का पथ सरलता से पार किया जा सकता है।

५९० सामान्यत: व्यक्ति कोई भी अच्छा काम करता है और उसे शीघ्र ही उसका सुफल नही मिलता है तो वह दुराचार की ओर प्रवृत्त हो जाता है, किंतु जिस व्यक्ति में धैर्य होता है, वह परिणाम के प्रति अनातुर रहता हुआ सत्क्रिया करता रहता है।

५९१ धैर्यवान् मनुष्य सभी कठिनाइयों से धीरे-धीरे मुक्त हो जाता है और धैर्यहीन व्यक्ति अपने आपको खो देता है।

५९२ निष्काम व्यक्ति ही धैर्यवान् हो सकता है।

५९३ जो व्यक्ति धैर्य रखता है, वह कष्टों के धधकते अंगारों पर भी निर्भय होकर चल पड़ता है।

धोखा

५९४ दूसरों को धोखा देकर व्यक्ति भले एक बार खुश हो जाए पर वस्तुतः ऐसा करके वह स्वयं को ही धोखा देता है।

५९५ जिस बात पर स्वयं अमल न कर सके, जिसे अपने व्यावहारिक जीवन में स्थान न दे सके, उसका औरों के लिए प्रवचन करना धोखा है।

५९६ वर्तमान को बिगाड़कर भविष्य को सुधारने की बात अपने मन को झूठा आश्वासन है, धोखा है।

५९७ मंदिर में जा भक्त बने, प्रह्लाद भक्त से भी बढ़कर,
हिरणांकुश से क्रूर कर्मकारी बन जाते घर आकर।
तो होगा यह प्रभु से धोखा, केवल मन बहलाते हो,
सत्यधर्म की सही शान को, खोते या रख पाते हो॥

५९८ मानव सबको धोखा दे सकता, है पर अपनी आत्मा, परमात्मा और मौत को नहीं।

५९९ नैतिक मूल्यों में जिसकी आस्था है, वह किसी को धोखा दे, यह सूर्य से अन्धकार फैलने जैसी बात है।

६०० सत्य के किसी अंश को पूर्ण सत्य मान लेना धोखा है।

६०१ यदि आप धोखा नहीं खाना चाहते तो फिर दूसरे को क्यों धोखा देते हैं?

६०२ समझो तो इस काम मे, सदा दुतरफी हार।
फलीभूत होता नहीं, धोखे का व्यापार॥

६०३ मनुष्य की आंखें धोखा खा सकती है, आत्मा नहीं।

६०४ स्वयं का प्रमाद ही व्यक्ति को धोखा देता है।

६०५ मन में किंचित् भी उत्साह न हो और साधना के लिए इच्छा व्यक्त करे, वह मात्र धोखा है, प्रवंचना है।

६०६ वृत्तियों में संयम नहीं तो घर छोड़कर संन्यासी बनना स्वयं को और समाज को धोखा देना है।

ध्याता

६०७ जो कषायी नही है, आवेग और आवेश से दूर है, पूर्व धारणाओं और आसक्तियों से खाली है, वही ध्यान के योग्य है।

६०८ जो प्रतिक्रियाओं से अप्रभावित रहना सीख लेता है, वह सही अर्थ में ध्यान का अधिकारी होता है।

६०९ ध्यान के लिए वह प्रत्येक व्यक्ति अधिकृत है, जिसकी अन्तश्चेतना उद्‌बुद्ध हो उठी हो, भले फिर वह किसी भी परम्परा का अनुगामी हो।

६१० जिस व्यक्ति का व्यवहार निश्छल नही होता, वह ध्यान का अधिकारी नही हो सकता।

६११ ध्यान का अभ्यास करने वाला व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है।

६१२ पानी दूध में मिलकर जैसे अपना अस्तित्व खो देता है, वैसे ही ध्यान की उत्कृष्ट स्थिति मे ध्याता ध्येय मे इतना तन्मय हो जाता है कि उसे अपने भिन्न अस्तित्व का बोध ही नही रहता।

ध्यान

६१३ शरीर की शिथिलता, वाणी का मौन और मन का अंतर में विलीन होना ही ध्यान है।

६१४ एक विचार में दूसरे विचार का हस्तक्षेप न हो, उस अवस्था का नाम ध्यान है।

६१५ ध्यान के बिना न तो व्यक्तित्व की परिभाषा ज्ञात हो सकती है और न ही व्यक्तित्व-निर्माण के सूत्र हाथ लग सकते हैं।

६१६ ध्यान जागरूक चेतना का प्रतीक है।

६१७ संसार में रहते हुए भी अकेलेपन का अनुभव करना ही ध्यान है।

६१८ ध्यान अनुभव की वह भूमिका है, जहा सम्प्रदाय या परम्परा का भेद नहीं रहता।

६१९ जब तक विकृति का उपशम या विलय नहीं होता, ध्यान की स्थिति नही बनती।

६२० मानसिक सन्तुलन के अभाव में ध्यान की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

६२१ किसी शिल्प या कला की साधना भी इतनी सरल नही, फिर ध्यान की साधना इतनी सरल कैसे हो सकती है ?

६२२ ध्यान हमे उस परम आनंद का रसास्वादन कराता है जहां दु:ख प्रवेश ही नहीं कर सकता।

६२३ ध्यान अपने आप में शक्ति है, विद्युत् है। विद्युत् को आप चाहे तो प्रकाश के रूप में काम में ले सकते हैं और चाहे तो आग के रूप में काम में ले सकते हैं।

६२४ ध्यान के प्रारम्भिक काल मे जो मन की चंचलता बढ़ती है, वह ध्यान की दिशा में उठने वाला पहला चरण है।

६२५ प्रत्येक क्रिया को ध्यान बनाया जा सकता है।

६२६ ध्यान ही एक ऐसा प्रयोग है, जो मानव मन को संत्रास, भय, घुटन व तनाव से मुक्ति दे सकता है।

६२७ ध्यान की शक्ति इतनी विस्फोटक होती है कि वह मानव-चेतना में छिपी हुई अनेक विशिष्ट शक्तियों का जागरण कर मनुष्य को कहां से कहां पहुंचा देती है !

६२८ मन की रिक्तता ही ध्यान है।

६२९ जब तक ध्याता और ध्येय एकीभूत न हो जाएं, ध्यान में सफलता नहीं मिलती।

६३० चेतना का वह क्षण ध्यान है, जिसमें प्रियता और अप्रियता का भाव समाप्त हो जाता है।

६३१ हिंसा और घृणा के लिए प्रायोगिक समाधान है—ध्यान।

६३२ ध्यान वह ऊर्जा है, जो आदमी के जीवन को ज्योतिर्मय बना देती है।

६३३ केवल जानने और देखने का अभ्यास जितना पुष्ट होता है, ध्यान की स्थिति उतनी ही सुदृढ़ हो जाती है।

६३४ एकाग्रे मनः सन्निवेशन योगनिरोधो वा ध्यानम् ।
(एक आलम्बन पर मन को टिकाना अथवा मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति का निरोध करना ध्यान है।)

६३५ ध्यान अपने आप में विनम्रता और अनाग्रह का प्रयोग है ।

६३६ ध्यान से हमारा व्यक्तित्व चट्टान-सा अडोल और निष्प्रकंप बन जाता है ।

६३७ ध्यान के फलित है—
१ बुद्धि का परिष्कार
२. मानसिक शांति
३. सात्त्विकता का विस्तार ।

६३८ मैं उस ध्यान को आंखे बंद कर बैठने से अधिक नहीं मानता, जिसमें हृदय की एकरसता न हो ।

६३९ ज्ञान और दर्शन के आवरण जहां समाप्त हो जाते है, वहां ध्यान की निष्पत्ति होती है ।

६४० ध्यान आत्मानुशासन को उजागर करने का एकमात्र साधन है।

६४१ मेरे अनुभव से ध्यान से कर्म में अल्पता तो अवश्य आती है, पर उससे उसका वेग बहुत अधिक बढ जाता है ।

६४२ जो व्यक्ति ध्यान में तल्लीन हो जाता है, उसे अपने-पराए का वोध नहीं रहता, वह आत्मरमण में लीन रहता है।

६४३ अहंकार ममकार भी, जब हो जाए चूर्ण ।
पूर्व भूमिका ध्यान की, तब हो पाए पूर्ण ।।

६४४ जिसे ध्यान में मस्ती आती है, उसे मादक द्रव्यों की कोई जरूरत नही रहती ।

६४५ जो ध्यान अकर्मण्यता को बढ़ाता है, मैं उसे ध्यान मानने के लिए तैयार नही हूं।

६४६ सत्य के साक्षात्कार की प्रक्रिया का नाम ध्यान है ।

६४७ ध्यानशून्य शिक्षा जीवनस्पर्शी, दृष्टिकोण को बदलने वाली और आचरण को जीवन में स्थिर करने वाली नहीं हो सकती ।

६४८ ध्यान की गहराई के विना पदार्थ-निरपेक्ष सुख का अनुभव नहीं हो सकता।

६४९ जिस प्रकार बीज बोने से पहले ऊबड़-खाबड़ भूमि को सम बनाया जाता है, उसी प्रकार ध्यान का बीज-वपन करने के लिए व्यवहार की विषम भूमि को व्रत-संयम की आराधना द्वारा सम किया जाता है।

६५० अतिभोजन ध्यान की सबसे बड़ी बाधा है।

६५१ संकल्प-विकल्पों मे उलझा हुआ मन ध्यान के योग्य नहीं होता।

६५२ ध्यानाग्निनेरितो नित्यं, निर्मलो भासते गणः।
परं मलापनोदाय, नौषध ध्यानसन्निभम् ॥
(ध्यान रूपी अग्नि से प्रेरित संघ निर्मल होता है क्योंकि मल-दोष को दूर करने के लिए ध्यान के समान कोई दूसरी औषधि नही है।)

६५३ ध्यान के क्षणों में ऐसी प्रतीति होती है कि जीवन का कण-कण संगीतमय हो रहा है।

६५४ ध्यान चित्त की उच्छृंखलता पर एक अंकुश है।

६५५ विचारशून्यता को ध्यान की कोटि में लिया जा सकता है किंतु उन्मत्त आदमी की शून्यता ध्यान की कोटि में नहीं आती।

६५६ ध्यान की गहराई के क्षणों में हमारे भीतर का परमात्मा जाग जाता है, इतना ही नहीं हम स्वयं परमात्मा बन जाते हैं।

६५७ ध्यान है—चैतन्य का सहज बोध और सहज अनुभूति।

६५८ ध्यान अतीत को पढने का सक्षम माध्यम है।

६५९ ध्यान का विकास होता है, तब जीवन में सहज रूप से व्रतों का अवतरण हो जाता है।

६६० जागरूकता से खड़े रहना भी ध्यान है।

६६१ ध्यान केवल पढने, सुनने, लिखने व बोलने की वस्तु नहीं, वह प्रयोग में लाने की वस्तु है।

६६२ ध्यान योगियों के लिए ही नहीं, जनसाधारण के लिए भी उपयोगी है।

६६३ सूक्ष्मक्रिया मात्र का निरोध ध्यान का अन्तिम बिन्दु है।

६६४ शांति के दूसरे साधन क्षणिक शांति दे सकते हैं। केवल ध्यान ही एक ऐसा तत्त्व है, जिससे स्थायी शांति प्राप्त होती है।

६६५ मन जब आत्म-केन्द्रित होता है, तब बिना किए ही ध्यान हो जाता है।

६६६ मनुष्य चलता-फिरता हो या मृत्यु-शय्या पर स्थित, स्वस्थ हो या अस्वस्थ, यदि वह ध्यान का अभ्यासी है तो उसके जीवन में शान्ति सहज ही घटित हो जाती है।

६६७ ध्यान करते समय साधक जिस आलम्बन को सामने रखता है, उसी में लीन हो जाता है। यह तन्मयता ही ध्यान की पूर्णता है।

६६८ ध्यान वैराग्य तक पहुंचने का एक साधन है।

६६९ जीवन में प्रत्येक क्षेत्र की सफलता के लिए ध्यान आवश्यक है।

६७० ध्यान संस्कारों की समाप्ति का त्वरित मार्ग है।

६७१ ध्यान आत्मदर्शन की प्रक्रिया है। इस तक पहुंचने के लिए 'संपिक्खए अप्पगमप्पएण'—अपने द्वारा अपने आपको देखो, इसे आलम्बन सूत्र बनाना होगा।

६७२ आंखे मूंद लेना ही ध्यान नहीं है। ध्यान है आत्मशोधन की सूक्ष्म प्रक्रिया, अनुद्घाटित रहस्यों का उद्घाटन।

६७३ ध्यान की सर्वप्रमुख उपलब्धि है—आत्मा के आनंदघन स्वरूप की अभिव्यक्ति, अन्तः परितोष।

६७४ ध्यान परम पुरुषार्थ है।

६७५ ध्यान शक्ति को अर्जित करने का अनुपम खजाना है। उस अर्जित शक्ति से महान् व्यक्तित्व का निर्माण संभव है।

ध्यान और स्वाध्याय

६७६ स्वाध्याय करते-करते जब साधक की मानसिक एकाग्रता एक सीमा तक सध जाती है तो फिर उसे ध्यान में प्रवेश करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

६७७ स्वाध्याय का चरम बिन्दु ध्यान का प्रथम बिन्दु है।

ध्येय

६७८ ध्येय की अवधारणा के बिना कोई भी व्यक्ति या वर्ग काम नहीं कर सकता।

६७९ मानव जीवन का ध्येय संयम की साधना है।

६८० ध्येय के प्रति समर्पित व्यक्ति के सामने कितने ही निमित्त उपस्थित हों, पर वह अपने सिद्धांत से विचलित नहीं हो सकता।

ध्वंस

६८१ ध्वंस के बिना सृजन चमक नहीं सकता।

६८२ करने वाला अगर विवेक से करता है तो ध्वंस में भी निर्माण हो सकता है।

६८३ दूसरों को ध्वस्त करने वाला स्वयं भी नहीं बच सकता।

६८४ ध्वंस की बात छोड़कर केवल निर्माण के संबंध में ही सोचें, ध्वंस स्वतः ध्वस्त हो जाएगा।

ध्वंस और निर्माण

६८५ निर्माण और ध्वंस के संस्कार मनुष्य के भीतर होते है।

६८६ वास्तव में ध्वंस क्रिया नही, प्रतिक्रिया है। उपेक्षित, आहत, प्रताड़ित और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति खुले रूप में ध्वंस के मैदान में उतर जाता है।

६८७ किसी भी वस्तु का निर्माण करने में लम्बा समय चाहिए पर ध्वंस मिनटों मे किया जा सकता है।

६८८ ध्वंस के साथ-साथ निर्माण नहीं होगा तो दुनिया नरक बन जाएगी ।

६८९ सृष्टि को देखने की उत्सुकता है तो हमें प्रलय को भी देखना होगा।

६९० ध्वंस और निर्माण—ये दो विरोधी दिशाएं है, फिर भी सापेक्ष हैं।

६९१ जहां कुछ टूटता है, वहां कुछ नया निष्पन्न भी होता है। बीज टूटता है, अपने अस्तित्व को समाप्त करता है, तब अंकुर निकलता है।

परिशिष्ट

प्रयुक्त पुस्तक सूची

[आचार्यश्री तुलसी के साहित्य को भाषा की दृष्टि से तीन भागो मे बांटा जा सकता है—(१) हिन्दी साहित्य, (२) राजस्थानी साहित्य और (३) संस्कृत साहित्य।

इस संग्रह को और अधिक समृद्ध बनाने के लिए आचार्यश्री के साहित्य के अतिरिक्त अन्य लेखको की रचनाओ में जहां भी आचार्यवर के वाक्यों का या प्रवचनों का उद्धरण है, उनमें से भी संकलन का कार्य किया गया है, जैसे आचार्यश्री तुलसी का यात्रा-साहित्य, उनका जीवनी और संस्मरण-साहित्य आदि। उन पुस्तकों की सूची भी अन्त में दी गई है।

इसके अतिरिक्त 'चेतना का ऊर्ध्वारोहण', 'अमूर्त्त चिंतन', 'संबोधि', 'तेरापंथ का इतिहास', 'इतस्ततः', 'दस्तक शब्दो की' आदि शताधिक पुस्तको के आशीर्वचनो से तथा व्यक्तिगत रूप से दिए गए सैकड़ों संदेशो एवं पत्रों से भी सूक्ति-संकलन किया गया है।

संघीय पत्र-पत्रिकाओ में दिए गए सामयिक लेखो संदेशो, सम्मेलन-संदेशो से भी सुभाषित संकलित है, जो इस संग्रह में समाविष्ट है।

इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स आदि राष्ट्रीय पत्रो एवं राजस्थान पत्रिका, नई दुनिया, अमर उजाला आदि सैकडो प्रादेशिक समाचार-पत्रो में आए लेखों एवं समाचार-बुलेटिनों का उपयोग भी इस संकलन में किया गया है।

पुस्तक-सूची की पाद टिप्पणी में द्वितीय आवृत्ति मे पुस्तक के परिवर्तित नाम का उल्लेख भी कर दिया गया है।]

हिंदी साहित्य

१. अग्नि परीक्षा (काव्य) (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं, सन् १९७२)
२. अणुव्रत आन्दोलन (अणुव्रत समिति, दिल्ली)
३. अणुव्रत आन्दोलन : एक दृष्टि (वही, बम्बई)
४. अणुव्रत आन्दोलन का प्रवेश द्वार (आदर्श साहित्य संघ, अप्रैल १९५१)
५. अणुव्रत के आलोक में (वही, द्वितीय सं, सन् १९८६)
६. अणुव्रत के संदर्भ में (वही, प्रथम स, सन् १९७१)

७. अणुव्रत गति : प्रगति (आदर्श साहित्य संघ, तृतीय सं, सन् १९७६)
८. अणुव्रत गीत (काव्य) (वही, द्वितीय सं, सन् १९८०)
९. अणुव्रत नैतिक विकास की आचार-संहिता (वही)
१०. अणुव्रती क्यों बनें ? (अणुव्रत समिति, कलकत्ता)
११. अणुव्रती संघ (वही)
१२. अणुव्रती संघ और अणुव्रत (वही)
१३. अणुव्रत संदेश[1] (श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा, कलकत्ता)
१४. अतीत का अनावरण (भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम सस्करण)
१५. अतीत का विसर्जन : अनागत का स्वागत (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं, सन् १९८५)
१६. अनमोल बोल आचार्य श्री तुलसी के[2] (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, लाडनूं)
१७. अनैतिकता की धूप : अणुव्रत की छतरी (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं, सन् १९८७)
१८. अमृत संदेश (वही, प्रथम स, सन् १९८६)
१९. अशांत विश्व को शांति का संदेश[3] (श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा, कलकत्ता)
२०. अहिंसा और विश्व शांति (वही)
२१. आचार बोध[4] (काव्य) (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं, सन् १९८९)
२२. आचार्य तुलसी के अमर संदेश (वही, प्रथम सं, वि सं. २००८)
२३. आत्मनिर्माण के इकतीस सूत्र (वही)
२४. आदर्श कार्यकर्ता : एक मापदण्ड (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्)
२५. आषाढभूति[5] (आदर्श साहित्य संघ, सरदारशहर)
२६. आह्वान (जैन विश्व भारती, लाडनूं)
२७. उद्बोधन[6] (वही, द्वितीय सं, सन् १९८७)

---

१. अणुव्रती संघ के प्रथम अधिवेशन पर प्रदत्त उद्घाटन-भाषण ।

२. मुनि मधुकरजी द्वारा चयनित आचार्य श्री तुलसी के वचनो का लघु सूक्ति सकलन ।

३. लंदन मे आयोजित विश्व-धर्मसम्मेलन के अवसर पर लिखित भाषण ।

४. अमृत कलश द्वितीय भाग मे प्रकाशित ।

५. द्वितीय आवृत्ति मे यह पुस्तक "पानी मे मीन पियासी" नाम से प्रकाशित है ।

६. द्वितीय आवृत्ति मे यह पुस्तक "समता की आंख : चरित्र की पांख" नाम से छपी है ।

२८. उपासक संघ के विधान और नियम (चंदनलाल मेहता, उपासक संघ)
२९. कुहासे में उगता सूरज (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं. १९८८)
३०. क्या खोया : क्या पाया[1] (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
३१. क्या धर्म बुद्धिगम्य है ? (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं. १९८८)
३२. क्रान्तिकारी दिशा : अणुव्रत आंदोलन[2] (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
३३. खोए सो पाए (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं. १९८१)
३४. गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का[3] (वही, द्वितीय सं. १९८८)
३५. जन जन से (अणुव्रत समिति, कलकत्ता)
३६. जब जागे तभी सवेरा (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम स. १९९०)
३७. जरूरत है उन युवकों की (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्)
३८. जैन एकता : कुछ बिंदु[4] (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
३९. जैन तत्त्व प्रवेश भाग १,२ (आदर्श साहित्य संघ, सरदारशहर)
४०. जैन तत्त्व विद्या (वही)
४१. जैन दीक्षा (वही, सरदारशहर)
४२. ज्योति के कण (अखिल भारतीय अणुव्रत समिति, प्रथम सं. १९५८)
४३. ज्योति से ज्योति जले (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, लाडनूं प्रथम स, १९७७)
४४. तत्त्व क्या है ? (आदर्श साहित्य सघ, सरदारशहर)
४५. तत्त्वचर्चा[5] (वही)
४६. तीन संदेश (आदर्श साहित्य सघ, द्वितीय सं. १९५३)
४७. तुलसी-वाणी[6] (आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम सं. १९६२)
४८. दायित्व का दर्पण : आस्था का प्रतिबिम्ब (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, प्रथम सं. १९७६)
४९. दोनों हाथ : एक साथ (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं. १९८८)
५०. धर्मः एक कसौटीः एक रेखा (वही, प्रथम सं. १९६६)
५१. धर्म और भारतीय दर्शन[7] (श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा कलकत्ता)

१,२,४. अमृत-महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित परिपत्र ।
३. यह पुस्तक प्रथम आवृत्ति में 'मुक्तिपथ' नाम से प्रकाशित है ।
५ के. जी रामाराव तथा हर्बर्ट टी. सी के प्रश्न तथा आचार्य श्री तुलसी के उत्तर ।
६. मुनि दिनकरजी द्वारा संकलित आचार्यश्री के विचारों का लघु संकलन ।
७ भारतीय दर्शन परिषद् के रजत जयंती समारोह के अवसर पर कलकत्ते मे पठित प्रवचन ।

५२. धर्म सब कुछ है, कुछ भी नहीं[1] (श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता)
५३. धर्म सहिष्णुता (गुजरात राज्य अणुव्रत समिति, अहमदाबाद)
५४. धवल समारोह[2] (आचार्य तुलसी धवल समारोह समिति, दिल्ली)
५५. नया मोड़ (श्री गुलाबचन्द धनराज, कलकत्ता)
५६. नयी पीढी : नए संकेत (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, प्रथम स., १९७६)
५७ नव निर्माण की पुकार[3] (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९५७)
५८. नैतिकता के नए चरण (अखिल भारतीय अणुव्रत समिति, दिल्ली)
५९. नैतिक संजीवन, भाग १ (आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली)
६०. पथ और पाथेय[4] (अजंता प्रिंटर्स, जयपुर)
६१ पानी में मीन पियासी[5] (काव्य) (आदर्श साहित्य सघ प्रथम सं., १९८०)
६२. प्रगति की पगडंडियां (अणुव्रत समिति, कलकत्ता)
६३. प्रज्ञापुरुष जयाचार्य (जैन विश्व भारती प्रथम स., १९८१)
६४. प्रवचन डायरी[6], भाग १ से ३ (श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता)
६५. प्रवचन पाथेय, भाग १ से १० (जैन विश्व भारती लाडनूं)
६६. प्रेक्षा : अनुप्रेक्षा (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९८३)
६७. प्रेक्षाध्यान : प्राणविज्ञान (जैन विश्व भारती, लाडनूं द्वितीय सं , १९८५)
६८. बीती ताहि विसारि दे (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं., १९८६)
६९. बुराइयों की जड़ : मद्यपान (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
७०. बूंद बूंद से घट भरे, भाग १ (जैन विश्व भारती, लाडनूं प्रथम सं., १९८५)
७१. बूंद बूंद से घट भरे,[7] भाग २ (वही)
७२ बूंद भी लहर भी (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं., १९८६)
७३ भगवान् महावीर (जैन विश्व भारती, लाडनूं, १९७४)
७४. भरतमुक्ति (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं., १९८०)

---

१. सन् १९५० के दिल्ली सर्वधर्मसम्मेलन के अवसर पर प्रदत्त भाषण।
२. धवल समारोह पर आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रदत्त प्रवचन।
३. इस पुस्तक मे केवल प्रवचन ही नही साथ-साथ प्रतिदिन की यात्रा एवं कार्यक्रमों का वर्णन भी है।
४. मुनि श्रीचंद 'कमल' द्वारा संकलित लघुसूक्ति संकलन।
५. इस पुस्तक की प्रथम आवृत्ति 'आषाढभूति' के नाम से छपी हुई है।
६. सन् १९५३ से १९५७ तक के प्रवचनो का संकलन।
७ ये दोनो पुस्तकें 'प्रवचन पाथेय', भाग-१ और २ के नाम से प्रसिद्ध हैं।

७५. भावात्मक एकता[1] (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
७६. भ्रष्टाचार की आधारशिलाएं (अखिल भारतीय अणुव्रत समिति, दिल्ली)
७७. मंगल संदेश[2] (अणुव्रत स्वागत समिति, बीदासर)
७८. मंजिल की ओर,[3] भाग १ (जैन विश्व भारती, लाडनूं, प्रथम सं., १९८६)
७९. मंजिल की ओर,[4] भाग २ (वही, प्रथम सं., १९८८)
८०. महामनस्वी आचार्यश्री कालूगणी जीवनवृत्त (श्री कालूगणी जन्म शताब्दी समारोह समिति, छापर, प्रथम सं., १९७७)
८१. मुक्ति इसी क्षण में (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद् लाडनूं, प्रथम सं. १९७८)
८२. मुक्तिपथ[5] (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९७८)
८३. मुखड़ा क्या देखे दर्पण में (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९८९)
८४. मेरा धर्म : केन्द्र और परिधि (वही, प्रथम सं., १९६७)
८५. युग की चुनौती और अहिंसा की शक्ति (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
८६. युवा शक्ति से अपेक्षा (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, लाडनूं)
८७. राजधानी में आचार्य श्री तुलसी के संदेश (मारवाड़ी प्रकाशन, दिल्ली)
८८. राजपथ की खोज[6] (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९८७)
८९. विचार दीर्घा (वही, प्रथम सं., १९८०)
९०. विचार वीथ[7] (काव्य) (वही, द्वितीय सं., १९८९)
९१. विचार वीथी (वही)
९२. विश्व शांति और उसका मार्ग[8] (श्री जैन श्वेताम्वर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता)
९३. व्यवसाय जगत् की बीमारी मिलावट[9] (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)

१. अमृत महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित परिपत्र ।
२. अणुव्रत के सतरहवें अधिवेशन पर पठित भाषण ।
३. यह पुस्तक 'प्रवचन पाथेय', भाग-३ के नाम से प्रसिद्ध है ।
४. यह पुस्तक 'प्रवचन पाथेय', भाग-७ के नाम से प्रसिद्ध है ।
५. यह पुस्तक द्वितीय आवृत्ति में 'गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का' नाम से छपी है ।
६. यह पुस्तक प्रथम आवृत्ति में 'विचार दीर्घा' और 'विचार वीथी' के नाम से प्रकाशित है ।
७. अमृत कलश, भाग-२ के अन्तर्गत प्रकाशित ।
८. शांति-निकेतन में होने वाले विश्वशांति सम्मेलन के अवसर पर प्रदत्त भाषण ।
९. अमृत महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित ।

९४. व्रत-दीक्षा (वही)
९५. शांति के पथ पर (दूसरी मंजिल) (आदर्श साहित्य सघ, वि. सं., २०११)
९६. शिक्षा के संदर्भ में अणुव्रत[1] (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
९७. श्रावक-आत्मचिंतन (जुहारमल उत्तमचंद बरड़िया, सरदारशहर)
९८. श्रावक जन्म से या कर्म से ? (अखिल भारतीय तेरापथ युवक परिषद्)
९९. श्रावक प्रतिक्रमण (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम स., १९७६)
१००. संदेश (आदर्श साहित्य सघ, सरदारशहर)
१०१. सप्त व्यसन (वही)
१०२. सफर आधी शताब्दी का (आदर्श साहित्य संघ)
१०३. समणदीक्षा (पारमार्थिक शिक्षण संस्था, लाडनूं)
१०४. समता की आंख : चरित्र की पांख[2] (वही, प्रथम सं., १९९१)
१०५. समाधान की ओर (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, लाडनू)
१०६. सर्वधर्म सद्भाव[3] (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
१०७. साधना (काव्य) (जैन श्वेताम्बर तेरापथ युवक परिषद्, जयपुर)
१०८. साधु जीवन की उपयोगिता (जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता)
१०९. सीपी सूक्त[4] (चुन्नीलाल भोमलाल, वोथरा)
११०. सोचो ! समझो[5] !, भाग-१ (जैन विश्व भारती, द्वितीय संस्करण)
१११. सोचो ! समझो[6] !, भाग २-३ (वही)
११२. हस्ताक्षर[7] (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९८७)

राजस्थानी साहित्य—

११३. अतिमुक्तक व्याख्यान (अप्रकाशित)
११४. कालू उपदेश वाटिका[8] (आत्माराम एण्ड सस, प्रथम सं., १९८६)
११५. कालूयशोविलास (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं., १९८४)
११६. चंदन की चुटकी भली (वही, द्वितीय संस्करण)
११७. चंदनबाला व्याख्यान (अप्रकाशित)
११८. जागरण (अखिल भारतीय अणुव्रत समिति, प्रथम सं., १९५९)

---

१. अमृत महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित परिपत्र ।
२. प्रथम आवृत्ति में यह पुस्तक 'उद्बोधन' के नाम से प्रकाशित है ।
३. अमृत महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित परिपत्र ।
४. आचार्य श्री तुलसी का लघु सूक्ति-संकलन ।
५-६. द्वितीय आवृत्ति मे ये तीनो भाग 'प्रवचन पाथेय', भाग-४-५ और ६ के नाम से छपे हैं ।
७. आचार्य श्री द्वारा लिखे गए प्रतिदिन के सक्षिप्त विचारो का सकलन ।
८. द्वितीय आवृत्ति मे यह पुस्तक 'सोमरस' के नाम से छपी है ।

११९. जालिम चरित्र (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९७५)
१२०. थावच्चापुत्र व्याख्यान (अप्रकाशित)
१२१. नंदन निकुंज (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं., १९८२)
१२२. भाईजी महाराज का व्याख्यान (अप्रकाशित)
१२३. मगन चरित्र (वही, द्वितीय सं., १९८५)
१२४. मां वदना (वही, प्रथम सं., १९८१)
१२५. माणक-महिमा (वही, द्वितीय सं., १९८५)
१२६. योगक्षेम वर्ष व्याख्यान (अप्रकाशित)
१२७. शासन संगीत (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम स., १९७५)
१२८. शैक्ष-शिक्षा (अप्रकाशित)
१२९. श्रद्धेय के प्रति (आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली)
१३०. सोमरस (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं., १९८३)

संस्कृत साहित्य

१३१. कर्त्तव्यषट्त्रिंशिका (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९५१)
१३२. जैन सिद्धांत दीपिका (वही, तृतीय सं., १९८२)
१३३. पञ्चसूत्रम् (वही, द्वितीय सं., १९७६)
१३४. भिक्षु न्याय कर्णिका (वही प्रथम सं., १९७०)
१३५. मनोनुशासनम् (वही, चतुर्थ संस्करण, १९८६)
१३६. शिक्षाषण्णवति (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं, १९५१)

अन्य साहित्य

१. अमरित बरसा अरावली में—(ले० साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, प्र० आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९८९।)
२. आचार्य श्री तुलसी : जीवन पर एक दृष्टि—(ले० मुनि नथमल, प्र० वही, सरदारशहर)
३. आचार्यश्री तुलसी : जैसा मैंने समझा—(ले० सीताशरण शर्मा, प्र० दक्षिण प्रादेशिक अणुव्रत समिति, बेंगलूर, प्रथम सं., १९६९)
४. जन-जन के बीच भाग १—(ले० मुनि सुखलाल, प्र० अणुव्रत समिति, प्रथम सं., १९५८)
५. जन-जन के बीच भाग २—(ले० मुनि सुखलाल, प्र० मेघराज सचियालाल नाहटा, प्रथम सं., वि. सं. २०२१।)
६. जनपद-विहार—(आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम सं., सन् १९५१)
७. जब महक उठी मरुधर माटी—(ले० साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, प्र० आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९८४)

८ जोगी तो रमता भला—(ले० मुनि सुखलाल, प्र० आदर्श साहित्य संघ प्रथम स., १९८८)
९. तेरापंथ दिग्दर्शन[1]—(सपा. मुनि सुमेरमल, प्र० जैन विश्व भारती, लाडनू)
१०. दक्षिण के अंचल में—(ले० साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, प्र० आदर्श साहित्य सघ, प्रथम सं०)
११. धर्मचक्र का प्रवर्त्तन—(ले० युवाचार्य महाप्रज्ञ, प्र० अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति, प्रथम स०, १९८६)
१२. परमार्थ—(स. मुमुक्षु शान्ता, प्र० पारमार्थिक शिक्षण संस्था, लाडनू)
१३. परस पांव मुसकाई घाटी—(ले० साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, प्र० आदर्श साहित्य सघ)
१४. पांव-पांव चलने वाला सूरज—(वही, प्रथम स., १९८२)
१५. प्रश्न और समाधान[2] (सं० मुनि सुखलाल, प्र० आतमाराम एण्ड संस, दिल्ली)
१६. बढ़ते चरण—(ले० मुनि श्रीचंद 'कमल', प्र० आदर्श साहित्य संघ, प्रथम स, १९७३)
१७. वहता पानी निरमला—(ले० साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, प्र० आदर्श साहित्य सघ, प्रथम सं १९८४)
१८. बोलते चित्र—(ले० मुनि गुलावचन्द, प्र० अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, प्रथम सं १९८०)
१९. रश्मियां—(ले० मुनि श्रीचद 'कमल', प्र० आदर्श साहित्य संघ, प्रथम स १९८२)
२०. संस्मरणों का वातायन (ले० साध्वी कल्पलताजी, प्र० आदर्श साहित्य संघ)

पत्र-पत्रिकाएं एवं अभिनन्दन ग्रन्थ

१. अणुविभा[3]—(अणुव्रत विश्वभारती, राजसमद, १९८९)
२. अणुव्रत—(पाक्षिक पत्र सन् १९५५ से १९९० तक के)
३. अमृत महोत्सव[4]—(स० महेन्द्र कर्णावट, प्र० अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)

---

१. यह पुस्तक चार भागो मे प्रकाशित है। इनमे सन् १९८४-८७—इन चार वर्षो का वार्षिक विवरण है।
२. इस पुस्तक में मुनि सुखलालजी के प्रश्न एव आचार्यश्री तुलसी के उत्तर संकलित है।
३. अन्तर्राष्ट्रीय शाति एवं अहिंसक उपक्रम की पत्रिका।

४. आचार्य तुलसी अभिनंदन ग्रंथ—(श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, प्रथम सं., १९६२)
५. आचार्य भिक्षु अभिनंदन ग्रंथ—(वही, प्रथम सं, २०१८)
६. जनपथ—(संपा० देवेन्द्र कुमार कर्णावट)
७. जैन भारती—(मासिक पत्रिका, सन् १९४७ से १९९१ तक की, संपा० श्रीचंद रामपुरिया)
८. तुलसी प्रज्ञा (शोध त्रैमासिकी, जैन विश्व भारती, लाडनूं)
९. पाक्षिक विज्ञप्ति—(सं० पन्नालाल भंसाली, आदर्श साहित्य संघ)
१०. प्रेक्षाध्यान (मासिक पत्रिका, तुलसी अध्यात्म नीडम्, लाडनूं)
११. युवादृष्टि—(मासिक पत्रिका, संपा० कमलेश चतुर्वेदी, सन् १९७२ से १९९०)
१२. विज्ञप्ति—(क्रमांक १ से १०६४ तक, संपा० कमलेश चतुर्वेदी)
१३. विवरण पत्रिकाएं